लेखक का परिचय

लेखक का जन्म १ अक्तूबर १८८७ तदनुसार १६ आश्विन १९४४ विक्रमी को पञ्जाब प्रदेश के गुरदासपुर जिला के पकीवां नामक ग्राम में हुआ। यह ग्राम डेरा बाबा नानक से ६ मील तथा कलानौर से ४ मील के अन्तर पर रावी नदी के तट पर है और इस समय भारत की सीमा है।

आपने १९०४ में गुरदासपुर हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास की और आर्थिक दशा कमजोर होने के कारण कालिज शिक्षा का विचार त्याग कर नौकरी के लिये यत्न प्रारम्भ कर दिया। कुछ इधर-उधर यत्न करने के पश्चात एकाउन्टेन्ट जनरल लाहौर के दफ्तर में १९०७ में क्लर्क हो गए। इसी दफ्तर में १९१९ में एस०ए० एस० की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर सुपरिन्टेन्डेंट बन गए। १९२३ में महाराजा साहिब नाभा ने रियासत की गद्दी त्यागी और प्रबन्ध अङ्गरेज शासक के सुपुर्द हुआ, तो रियासत के हिसाब ठीक करने के लिये आपको एकाउन्टेंट जनरल बनाकर वहां भेजा गया। मिस्टर विल्सन जान्सटन रियासत के ऐडमिनिस्ट्रेटर अर्थात् शासक थे। उन्होंने रियासत की आय-व्यय का बजट तैय्यार करने का आदेश दिया। पुरातन हिसाब कई वर्षों से बने न थे इस कारण नये वर्ष का बजट बनाना असंभव दीख पड़ता था। पर येन-केन-प्रकारेण ऐसा किया तो ज्ञात हुआ कि

वार्षिक आय वार्षिक व्यय की अपेक्षा ४ लाख कम है और रियासत के जिम्मे ८० लाख रुपये भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का देना निकलता है। इस भयानक अवस्था का ज्ञान हुआ तो रियासत तथा भारत सरकार के पोलिटिकल विभाग के कान खड़े हो गए।

फ़रीदकोट रियासत से १५ लाख रुपया ६ प्रतिशत प्रतिवर्ष के हिसाब से उधार लिया गया जो वार्षिक किस्त के हिसाब से ५ वर्ष में देना था। इस उधार से व्यय में ३,६०,००० की वार्षिक वृद्धि हो गई।

वह समय मिस्टर विल्सन जान्सटन के बुद्धि-बल तथा पंडित जी की आर्थिक विद्या की परीक्षा का समय था। पंडित जी की कार्य-कुशलता, अनथक परिश्रम, सूझ-बूझ और कड़े नियंत्रण का यह परिणाम हुआ कि फ़रीदकोट का ऋण जो पांच वर्षों में दिया जाना था एक ही वर्ष में चुका दिया गया। १९३१ में जब आपने रियासत को छोड़ा तो न केवल ८० लाख का सारे का सारा ऋण उतर चुका था वरन् ३० लाख रुपया सरकारी कफ़ालतों में लगा हुआ था और सरकारी नौकरों के वेतन बढ़ चुके थे। इस सेवा के पुरस्कार में सरकार ने आपको "राय साहिब" की उपाधि दी। तत्पश्चात आपको असिस्टेंट एकान्टट्स आफ़ीसर पद पर नियुक्त किया गया, जहां से १५ सितम्बर १९४२ को आप रिटायर हुए।

नौकरी के दिनों में भी आपका खाली समय साहित्य-सेवा में व्यतीत होता था। यह आपकी हॉबी (Hobby) थी। पैन्शन

होने पर आपको हर्ष था कि अब इस कार्य के लिये पूर्ण अवकाश मिलेगा, पर कुछ दिन पहले आपके पुराने अफ़सर सर गङ्गाराम कौला जीन्द रियासत के प्रधान-मंत्री नियुक्त हो चुके थे। उन्होंने आपसे आग्रह किया कि जींद रियासत के हिसाब-किताब पर एक दृष्टि डाल दें कि उन्हें विश्वास हो जाय कि कार्य ठीक हो रहा है। पंडित जी इन्कार न कर सके और जींद रियासत के स्पैशल ऑडिट आफ़ीसर नियुक्त हो गए। अभी यह कार्य चल ही रहा था कि १ मार्च १९४२ को उन्हें रियासत का एकाउन्टैंट जनरल तथा अर्थ सैक्रेटरी (Financial Secretary) बना दिया गया। आपने इस पद पर लगभग २ वर्ष कार्य किया और इस बीच में १५ लाख रुपये से अधिक रक़म बचाकर भिन्न-भिन्न बैंकों में रियासत के हिसाब में जमा करवा कर अपनी आर्थिक निपुणता का प्रमाण दिया।

साहित्य-सेवा

१९०७ में जब आप लाहौर आए तो उसी समय साहित्य-सेवा का कार्य्य भी आरम्भ हो गया। आपके कई लेख लाहौर के साप्ताहिक पत्र "सेवक" में प्रकाशित हुए। फिर आप श्रीमद्दयानन्द ट्रैक्ट सोसाइटी लाहौर के मासिक पत्र "बृहस्पति" का अवैतनिक सम्पादन करते रहे। १९१० के अप्रैल मास में उस पत्र का "एप्रिल फूल" अंक निकाला गया। उसमें एक कहानी "अल्लामियां की कचहरी और बहिश्त का ठेका" शीर्षक से छपी। उस चुभती हुई कहानी के छपने पर "बृहस्पति" जी से १ सहस्र

रुपये की जमानत मांगी गई। उस पत्र का वार्षिक मूल्य केवल ॥) प्रतिवर्ष था। इतना निर्धन पत्र जो केवल प्रचारार्थ कुछ मित्रों ने निकाल रखा था, एक सहस्र रुपया कैसे दे सकता था ? इस कारण उसे बन्द कर देना पड़ा।

"बृहस्पति" के लोप होने पर पंडित जी ने नवम्बर १६१० में अपना निजी मासिक पत्र "नावलिस्ट" उर्दू भाषा में प्रकाशित किया। उस पत्र में ठोस साहित्य तथा कहानियां छपती थीं। उस समय वह अपने ढंग का प्रथम पत्र था। कहानी के सब पत्र "नावलिस्ट" के पश्चात निकले। उसके मई, जून १६११ के अंकों को एकत्र करके "महकमा इस्मत" नामक उपन्यास छापा गया और जुलाई १६११ में मैगस्थनीज की अमूल्य पुस्तक "इंडीका" (Indica) का अनुवाद १२० पृष्ठों में किया गया। इन पुस्तकों के साथ "नावलिस्ट" के जीवन का प्रथम चरण समाप्त हुआ।

द्वितीय चरण में ३ वर्ष के परिश्रम के पश्चात् अङ्गरेजी भाषा में नवीन प्रकाशित पुस्तक "स्टोर्या-डो-मोगर" का अनुवाद "नावलिस्ट" में छपा। यह एक विख्यात ऐतिहासिक पुस्तक है। इसके ५ भाग हैं। प्रति भाग पत्र के ५ नम्बरों में समाप्त होता था।

"नावलिस्ट" के जीवन के तृतीय चरण में उसने "वीर-वृषल" और "देश-भक्त श्याम, प्रथम भाग" को पाठकों के सन्मुख रखा। इसके अतिरिक्त विलायत की जगद्-विख्यात उपन्यास-लेखिका मेरी कुरैली के "ज़िस्का" नामक उपन्यास का अनुवाद किया।

इसी अन्तर में आपने उर्दू में एक और मासिक पत्र "जार्ज" नाम से और दूसरा "धर्मवीर" नाम से निकाला।

आप दीर्घकाल तक अवैतनिक रूप से लाहौर के साप्ताहिक पत्र "ब्राह्मण" का सम्पादन भी करते रहे।

सरदार वल्लभ भाई पटेल के ज्येष्ठ भ्राता विट्ठल भाई पटेल ने जिन दिनों अपना "अन्तरजातीय विवाह बिल" कौंसिल में पेश किया तो पञ्जाब प्रदेश में उनके बिल के समर्थन में लेख लिखने वाले केवल दो ही व्यक्ति थे। एक तो "प्रकाश" के सम्पादक महाशय कृष्ण, दूसरे पंडित जी, सम्पादक "आर्य-पत्रिका" लाहौर। आर्य-पत्रिका के लेखों तथा कहानियों को जिन लोगों ने पढ़ा वे अब भी उन्हें भूले नहीं हैं। आपकी दो कहानियां "नाजाइज़ बीबी" तथा "हरामी बच्चा" तत्पश्चात् भी कई बार पत्रों में छप चुकी हैं।

नाभा रियासत में जाने के कारण साहित्य-कार्य कुछ रुक गया, पर उन दिनों में "वीर-वृषल" तथा "देश-भक्त श्याम प्रथम भाग" के हिन्दी संस्करण प्रकाशित हो गए।

१६३१ में नाभा से लौटने पर "देश-भक्त श्याम" का द्वितीय और तत्पश्चात् तृतीय भाग प्रकाशित हुए। १६४५ में जींद रियासत से लौटने पर "धनुर्धारी राम" छपा तथा "वैवस्वत मनु और श्रद्धा" आरम्भ हुआ।

पञ्जाब विभाजन के पश्चात् आपने जिस अवस्था में लाहौर छोड़ा, उसके वर्णन की आवश्यकता नहीं, इतना ही पर्याप्त है कि

आपके पैन्शन के पत्र भी पाकिस्तान ही में रह गए और बड़े यत्न से एक वर्ष के पश्चात मिले।

अमृतसर, धारीवाल, धामपुर इत्यादि स्थानों में भ्रमण करने के पश्चात् मार्च १६४८ में आप दिल्ली पहुंचे। यहां पहुंच कर आप को ज्ञात हुआ कि "वीर वृषल" का एक हिन्दी संस्करण दिल्ली में छप गया है। उसके प्रकाशक महाशय ने आपको कुछ रुपया रायलटी (Royalty) के तौर पर अर्पण किया। इस रुपये से "वैवस्वत मनु और श्रद्धा" के छपने के लिये काग़ज़ खरीदा गया। तत्पश्चात् आपने पैन्शन का एक भाग कम्यूट (Commute) कराके कुछ पुस्तकों के मुद्रण का कार्य आरम्भ किया।

दिल्ली में रहते हुए आपने यत्न किया कि राजधानी में कार्य करने के लिये कोई स्थान मिल जाए, पर "पगड़ी" के प्रश्न का हल नहीं था। सरकार से याचना की, Rehabilitation Minister से प्रार्थना की पर इस बात का क्या उपाय कि "तुम १० दिसम्बर १६४७ के पश्चात दिल्ली आये हो तथा दिल्ली में रजिस्टर नहीं हुए"।

बिजनौर —सुमित्रा शर्मा

११-२-१६५१

देश-भक्त श्याम
तृतीय भाग

नरक विजय

आज से चार शत वर्ष पूर्व भारतवर्ष में आने वाला एतालवी यात्री निकोलास मनूची (Nicholas Manucci) अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "स्टोरिया डोमोगर" (Storia-do-Mogor) में अराकान राज्य का वर्णन करता हुआ लिखता है :—

"अराकान राज्य पूर्व की ओर बंगाल से मिलता है, जहां पर उसकी नाविक सीमा चटागांग से मिलती है। उस स्थान पर किसी समय विभिन्न जातियां, विशेषतः पुर्तगाल के फिरंगी और बहुत से आदिम निवासी वास करते थे, जो सब के सब ईसाई थे। यह लोग बंग प्रदेश को बहुत हानि पहुँचाते थे। अपनी नावों में सवार होकर वह उस प्रान्त के प्रत्येक ओर से पुरुष, स्त्रियां, धन, दौलत, माल, असबाब जो कुछ मिलता, बल्कि जब कभी अवसर पाते तो स्त्रियों को उन के दूध पीते बालकों सहित, उठा कर ले भागते; यदि बच्चे रोने लगते तो उन्हें माताओं की गोद से छीन कर सागर में फेंक देते।

यह लोग ऐसा जीवन व्यतीत करते थे कि यदि मैं केवल उन की करतूतों का ही वर्णन करने लगूँ तो उसके लिये बहुत सा समय और स्थान चाहिये। एक शब्द में यह, कि वह न केवल ईसाई बल्कि मनुष्य कहलाने के भी अधिकारी नहीं थे। अराकान नरेश उन लोगों पर बहुत विश्वास रखता था। वह उनकी वीरता और अपने देश की परिस्थिति पर विश्वास करके आस-पास के किसी राजा का भय नहीं मानता था। "उस प्रदेश में कोई मनुष्य सेना लेकर नहीं घुस सकता, क्योंकि भूमि दलदली है और चप्पे चप्पे पर सघन वन हैं, नदियाँ मगर और घड़ियालों से भरपूर हैं।"

यह उस समय का वर्णन है जबकि भारतवर्ष मुग़ल सम्राटों के आधीन एक शताब्दी पर्य्यन्त रह चुका था, परन्तु जिस समय की वार्ता हम लिख रहे हैं उस समय उपरोक्त प्रान्त की दशा इससे भी अधिक भयावह थी, क्योंकि यवन समुद्री डाकुओं ने जिनका नेता अपने आपको "भूमि-पुत्र" कहता था उसको अपनी राजधानी बनाकर दूर-दूर तक लूट-मार का बाज़ार गर्म कर रखा था। आस-पास के लोग उनकी बर्बरता से इतने तङ्ग आ गये थे कि यदि उनका वश चलता तो कभी के देश छोड़ कर किसी और स्थान को प्रस्थान कर गये होते, परन्तु उन बेचारों के लिये सब मार्ग बन्द थे क्योंकि "भूमि-पुत्र" की नौकाएँ यहाँ-वहाँ सब स्थानों पर उपस्थित थीं और प्रत्येक स्थान से स्वर्ण, चाँदी, बहुमूल्य रत्न, स्त्रियाँ, बालक जो कुछ भी मिलता, छीन झपट कर उसके पर्वतीय दुर्ग में जो "प्रागज्योतिष" के स्थान पर स्थित था

एकत्र कर रही थीं। कहा जाता है कि हमारी कथा के समय सोलह सहस्र एक सौ कुमारी कन्याएँ उसकी बन्दिनी थीं। उसके अत्याचार यहाँ तक बढ़े कि एक समय "भूमि-पुत्र" के कप्तानों ने पड़ोसी देश के राजा इन्द्र[1] की एक नाव पर आक्रमण करके उसे लूट लिया। उस नौका में राजमाता जलविहार के लिये जा रही थीं। दुष्ट डाकुओं ने अन्य वस्तुओं सहित उनके शरीर के समस्त आभूषण उतार कर बड़ी कठिनतापूर्वक उन्हें प्राण लेकर जाने की आज्ञा दी।

इस घटना की सूचना राजा इन्द्र को मिली तो स्वभावतया उसके मन में क्रोधाग्नि भड़क उठी, परन्तु उसके पास इतनी जल-शक्ति नहीं थी कि वह भूमि-पुत्र या उसके कप्तानों को उचित दण्ड दे सकता। बहुत सोच-विचार के पश्चात् उसकी दृष्टि श्याम जी पर पड़ी, जिनके बेड़े ने कालयवन की शक्ति को नष्ट-भ्रष्ट किया था। उसने बहुत से बहुमूल्य उपहार देकर एक दूत को यादव दरबार में भेजा कि उनसे सहायता की याचना करे। इस सम्बन्ध में वह देखिये इस विषय पर श्याम और उनके नावाध्यक्ष में वार्त्तालाप हो रहा है।

श्याम—कालीय जी! आपको अपनी नाव-सेना अब अन्य

---

1. राजा इन्द्र का देश कौनसा था? इस विषय पर, कुछ कहना अभी दुस्तर है, क्योंकि प्राचीन भारत के सम्बन्ध में सारे विषयों पर अभी प्रकाश नहीं पड़ा। हमारा विचार है कि यह देश बर्मा या स्याम का देश था।

महासागरों में भी भेजनी पड़ेगी।

कालीय—मैं तो पूर्व भी कथन कर चुका हूँ कि यवन डाकुओं ने प्राग्ज्योतिष के प्रदेश में ऊधम मचा रखा है। उस प्रदेश के लोग त्राहि-त्राहि पुकार रहे हैं। वह स्थान उनके अत्याचार के कारण "नरक" नाम से विख्यात हो गया है।

श्याम—उन लोगों के प्रतिनिधि महाराज जी की सेवा में उपस्थित होकर अपनी दुःख-कथा सुना चुके हैं। प्रतीत होता है कि राक्षसों के विनाश का समय निकट आ गया है। ज्ञात हुआ है कि इस समय तक १६१०० कुमारियाँ उनके हाथों में पड़ चुकी हैं। अन्तिम समाचार यह है कि राजा इन्द्र की माता के कर्ण-कुण्डल भी उन पापियों ने उतार लिये हैं।

कालीय—तो क्या इन्द्र यह सहन कर लेंगे ?

श्याम—उनकी इच्छा है कि भूमि-पुत्र को ऐसा दण्ड दें कि कभी भूले नहीं। उन्होंने इस विषय में उस से शिकायत की थी परन्तु उत्तर ऐसा मिला जो उनकी आशा के विरुद्ध था।

कालीय—तो फिर ?

श्याम—कठिनाई यह है कि उनके पास जल-सेना न होने के बराबर है।

कालीय—ओ३म् !

श्याम—उन्होंने महाराज उग्रसेन के पास पत्र भेज कर याचना की है और महाराज ने उसे स्वीकार करके मुझे आज्ञा दी है कि जिस प्रकार भी हो सके जल-सेना से उन्हें सहायता दी जाय।

कालीय—तो क्या आज्ञा है ?

श्याम—मेरा विचार है कि अकेली जल-सेना ही इस कार्य्य के लिये पर्य्याप्त नहीं होगी। उस के साथ ही हमें वायुयान भी वर्त्तने पड़ेंगे। उनके अतिरिक्त महाराज इन्द्र की सेना हमारी सहायता करेगी। इसलिये आप अपने बेड़े को लेकर प्रस्थान करें, हम गरुड़ जी के साथ आकाश से आपके सहायक होंगे।

कालीय—जो आज्ञा।

× × ×

कालीय का जंगी बेड़ा द्वारवति से चला। कालयवन के आक्रमण में उसे इच्छानुसार वीरता प्रदर्शन का अवसर नहीं मिला था क्योंकि श्यामजी की नीति मुचकंद की सेना की वीरता के साथ मिलकर यवनों को नष्ट-भ्रष्ट करने में सफल हुई थी। इसलिए वह चाहता था कि इस बार भूमिपुत्र के ध्वंस का यश उसे प्राप्त हो। इसलिये उसकी नावें पूरी चाल से कूच करती हुई खाड़ी बङ्गाल को पार करके गंगा के डेल्टा में प्रविष्ट हो गयीं। सौभाग्यवश मार्ग में उनकी मुठभेड़ किसी यवन नौका से नहीं हुई। इसीलिए उसने सेना को दो दिन तक एक सुरक्षित स्थान पर विश्राम दे और आवश्यक सामग्री की त्रुटि को पूर्ण करके डाकुओं के निवास-स्थान पर इस प्रकार सहसा आक्रमण किया कि प्रतिपक्षी स्तंभित रह गये। उसने अराकान बन्दरगाह में घुसते ही चारों ओर रक्त की नदियाँ बहा दीं, यद्यपि भूमिपुत्र के सैनिकों निसंध और हैग्रीव ने जी तोड़कर सामना किया परन्तु यादव बेड़े के सन्मुख उनकी

एक न चली। विवश होकर द्रुतगामी दूतों के द्वारा उन्होंने राज्य से सहायता की प्रार्थना की परन्तु राजधानी स्वयं श्याम के वायुयानों की मार से विध्वंस हो रही थी। तीसरी ओर इन्द्र की सेना तीव्र गति से चली आ रही थी। परिणाम यह हुआ कि भूमिपुत्र को पृथ्वी, आकाश, सागर किसी ओर से भी सहायता प्राप्त करने का अवसर न रहा। उसने स्वयं जी तोड़ कर वीरता के जौहर दिखाये परन्तु श्याम के सुदर्शन चक्र और शारंग धनुष से बच निकलना कठिन था। श्याम शूरवीरता की साक्षात् मूर्त्ति बने हुए चारों ओर प्रलय मचा रहे थे। शारङ्ग धनुष से निकले हुए बाण और सुदर्शन के प्रहार इतनी शीघ्रता से हो रहे थे कि ऐसा प्रतीत होता था कि दो के स्थान पर चार हाथ काम कर रहे हैं। इसलिये भूमिपुत्र की सेना घबरा कर भागी। परन्तु भागते हुओं को इन्द्र के वीर सैनिकों ने घेर लिया। श्याम वायुयान को छोड़कर रथारूढ़ होकर शत्रु की खोज में प्राग्ज्योतिप का कोना-कोना छान रहे थे, भूमिपुत्र ने उन्हें ताक कर शक्ति का ऐसा प्रबल प्रहार किया कि यदि उस समय श्याम की गृद्ध दृष्टि इस बात को भांप न लेती तो परिणाम न जाने क्या होता। परन्तु श्याम ने अपने बाणों की मार से शक्ति को काट गिराया और दूसरे ही क्षण में सुदर्शन चक्र शत्रु के हृदय को बेंध गया।

भूमिपुत्र के पतन के पश्चात् सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं को स्वतन्त्र कर दिया गया, परन्तु वह अबलाएं विस्मित थीं कि कहाँ जायें ? श्याम ने उन्हें वस्त्राभूषणों से मालामाल करके उनके

देशों में भेज दिया। डाकू नेताओं के गुप्त कोषों की तलाशी ली गई, उनमें न जाने कितने बहुमूल्य रत्न, मोती, हीरे, लाल इत्यादि भरे पड़े थे जो सब यादव सेना के हाथ आये। प्राग्ज्योतिष राज्य उसके प्राचीन राजा भगदत्त को सौंप दिया गया, जो भूमि-पुत्र के बन्दीगृह में पड़ा सड़ रहा था।

श्याम ने महाराज इन्द्र की माता के कुण्डल तथा अन्य बहु-मूल्य वस्तुएं स्वयं उनके देश में पहुँच कर राजमाता के चरणों में रखीं, तो माता का दिल भर आया और उसने उन्हें हृदय से लगाकर रुंधी हुई वाणी में कहा :—

"बेटा! आज से मैं तुम्हें इन्द्र का कनिष्ठ भ्राता समझूंगी। जो कार्य्य उससे न हो सका वह तुमने कर दिखाया। परमात्मा तुम्हें शक्ति दें कि तुम इसी भांति निस्सहाय मनुष्यों के सहायक होकर अपने देश में धर्मराज्य स्थापन कर सको।"

यादव बेड़ा धन राशि से भरपूर होकर द्वारका को वापिस लौटा। अब उसकी धाक केवल अरब सागर तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि बङ्ग खाड़ी से आगे चीन अथवा चीन सागरों तक पहुँच गई, क्योंकि इन सारे समुद्रों को अल्पकाल में ही उसने डाकुओं से हीन कर दिया। श्याम के अपने देश में आने के उपलक्ष्य में महाराज इन्द्र ने लौटते समय उन्हें पारिजात वृक्ष भेंट किया, जिसके पुष्पों की सुगन्धि इर्द-गिर्द मीलों तक फैल कर उस स्थान को सुवासित रखती थी।

परन्तु अराकान आक्रमण के समय यादव वायु-सेना और

जल-सेना तथा श्याम की अनुपस्थिति में शिशुपाल ने जिसके गुप्तचर चारों ओर घूम कर यादव लोगों के विषय में पूरी रिपोर्ट उसे भेज रहे थे, द्वारका पर आक्रमण कर दिया। परन्तु संकर्षण के बुद्धि बल, और प्रद्युम्न इत्यादि शूरवीरों के साहस के सन्मुख कोई पेश न गई। द्वारका को आग लगाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु यह नारकीय इच्छा भी पूरी न हुई, और शिशुपाल को अपनी सेना का बहुत सा भाग कटवा कर वापिस चेदी (चंदोसी) को लौटना पड़ा।

कृष्णा स्वयंवर

"कृष्णा सूत पुत्र से विवाह नहीं करेगी !"

यह शब्द वायुमंडल में गूँजे और साथ ही सभा में निस्तब्धता छा गयी। देश-देश के राजा, शूरवीर, योद्धा सुन्दरी द्रुपद-कुमारी के स्वयंवर का दृश्य देखने के लिये सभा में उपस्थित थे। नगर-नगर से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र पांचाल कुमारी की पसन्द के निरीक्षण के लिये यहाँ पहुँच कर सभा की शोभा बढ़ा रहे थे। इन शब्दों को सुनकर उन सब का चलता श्वास रुक गया! क्योंकि यह शब्द जिसे सम्बोधित करके कहे गये थे वह भारत भर के वीरत्व की मूर्त्ति था, जो राजा द्रुपद की धनुष को उठाकर स्वयंवर की कड़ी शर्त पूर्ण करने के लिये प्रत्यञ्चा चढ़ाने को ही था—

पांचालीके वाक्य ने उस नवयुवक के हृदय की गति को एक क्षण के लिये स्थगित कर दिया। उसने धनुष को हाथ से रख दिया, आकाश की ओर दृष्टि की, और फीकी सी मुस्कराहट के साथ पग पीछे हटा लिये। लोगों ने देखा कि वह सभा मण्डप से बाहर निकल कर अपने विश्राम-स्थल की ओर चला गया।

कुछ क्षणों तक चारों ओर नीरवता का साम्राज्य रहा, इतनी नीरवता कि शूचि भी गिरे तो शब्द सुनाई दे जाय। फिर सहसा

उच्च स्वर में सुन पड़ा "क्या देश में से धनुर्विद्या समाप्त हो गई ? क्या इतने आचार्य्यों, शूरवीरों और योधाओं में कोई भी ऐसा नहीं रहा जो स्वयंवर की शर्त पूर्ण कर सके ?" यह द्रुपद कुमारी का भ्राता था जो क्षत्रियों को सम्बोधन करके कह रहा था "ज्ञात होता है भारत धनुर्धारियों से शून्य हो गया !"

राजाओं को पंक्ति में कुछ हलचल हुई, परन्तु फिर निस्तब्धता छा गई, क्योंकि स्वयंवर की शर्त को पूरा करना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं था। अब द्रुपद कुमार ने ब्राह्मण लोगों की ओर मुख फेर कर कहा "क्या इतने आचार्य्यों में कोई भी ऐसा नहीं जो धनुर्विद्या के कौशल दिखा कर संसार को बता दे कि भारत अभी नपुन्सकों का देश नहीं बना ?"

शब्द अत्यन्त कठोर थे, जिन्हें श्रवण करके राजाओं और क्षत्रियों में फिर हलचल हुई, परन्तु दूसरे ही क्षण में लोगों ने देखा कि ब्राह्मणों की पंक्ति में से एक नवयुवक आगे बढ़कर महाराज द्रुपद के धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा रहा है। अभी किसी को यह भी ज्ञात न हो सका था कि वह कौन है, कि उसके धनुष से निकला हुआ बाण उसके सिर पर चक्कर खाते हुये चक्कर में से होकर ऊपर टँगी हुई मछली की आँख को छेद कर उसे नीचे गिरा गया। नवयुवक की दृष्टि उस समय पृथ्वी पर रक्खे हुये जल के तलाओ में थी जिसमें मछली की छाया पड़ रही थी।

"साधुः ! साधुः" के शब्द सब ओर गूँजने लगे और दूसरे क्षण में राजकुमारी के हाथों की जयमाला उस नवयुवक के

कण्ठ की शोभा हो गई। ठीक उसी समय सभा के एक कोने में हल्की सी गति उत्पन्न हुई और ब्राह्मणों की ओर से एक सुन्दर नवयुवक और उसके दो साथी सभा मण्डप से बाहर जाते दिखाई दिये।

महाराज यज्ञसेन के आग्रह पर श्याम और संकर्षण प्रिय सम्बन्धी तथा अतिथियों के रूप में स्वयंवर का दृश्य देखने के लिये पांचाल राजधानी में पधारे थे। उन्हें विवाह की लालसा नहीं थी क्योंकि दोनों विवाहित थे, परन्तु महाराज यज्ञसेन उनके बिना स्वयंवर को फीका समझते थे, इसलिये उन्हें महाराज के विशेष मित्रों और सम्बन्धियों में स्थान दिया गया था। देश की राजनैतिक अवस्था उस समय कुछ अद्भुत सी थी, क्योंकि एक ओर महाराज जरासन्ध, विवाह, मित्रता और सन्धियों से अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे, दूसरी ओर श्याम और उनके सहकारी नवीन ज्योति स्तम्भ बन रहे थे। तीसरी ओर कुरु पांचालों की प्राचीन शत्रुता कई बार फूट फूट कर अपना प्रदर्शन करा चुकी थी। इसलिये ऐसे अवसर राजनैतिक लोगों के लिये विशेष आकर्षण रखते थे। और श्याम तो इस अवसर को विशेष महत्व देते हुए भारत के नवयुवक क्षत्रियों और राजाओं की मुखाकृतियों को ध्यानपूर्वक निरीक्षण कर रहे थे, कि सहसा उनकी दृष्टि सभा-मण्डप के उस भाग की ओर गई जिधर से उपरोक्त तीनों नवयुवक बाहर निकले थे, और उन्होंने पास बैठे हुये संकर्षण जी से चुटकी लेते हुए कहा "वह देखिये।"

संकर्षण जी की गृद्ध दृष्टि अभी उधर मुड़ी ही थी कि सभा में कोलाहल सुनाई दिया, मानो भूकम्प आ गया हो !

"पकड़ो, पकड़ो यज्ञसेन को, इसने क्षत्रियों का अपमान कर दिया" इन शब्दों के साथ कई राजा अपने स्थान से उठे। उनके उठते ही एक भारी जन-समूह महाराज यज्ञसेन की ओर झुका, जो उस समय नितान्त शस्त्रहीन, वेदी के निकट खड़े थे।

कोलाहल का उद्देश्य और कारण महाराज समझ भी न पाये थे कि एक ओर से एक बड़ा सा ढेला उनके सिर पर आकर लगा।

फिर क्या था ? वह सभा जो कुछ समय पहिले भारत के सभ्य राजाओं की सभा थी एक अनुशासन-हीन भीड़ का दृश्य दिखलाती हुई ज्ञात हुई।

चोट खाकर महाराज यज्ञसेन अपने स्थान से पीछे हटे और भीड़ "पकड़ लो !" "मार दो !" का घोष करती हुई आगे बढ़ी। उस सयय ज्ञात नहीं क्या हो जाता यदि स्वयंवर की शर्त पूर्ण करने वाला नवयुवक, जो उस समय तक शान्तिपूर्वक यह दृश्य देख रहा था, धनुष तान कर वाण वर्षा की धमकी देता हुआ यह न कह उठता "सावधान ! जो आगे वढ़ा उसका शीश धड़ पर नही रहेगा !"

जन-समूह एक क्षण के लिये रुका, परन्तु दूसरे ही क्षण में आवेशपूर्वक फिर वढ़ गया। सहसा एक ओर से एक भीमकाय पुरुष एक भारी वृक्ष को हाथ में थामे आगे बढ़ कर गरजा "मत

समझो महाराज यज्ञसेन अकेले हैं।"

इस दानव आकृति को देखकर भीड़ का कोलाहल फिर रुका। उसे रुकते देखकर उस पुरुष ने गरजते हुए कहा "भारत के क्षत्रिय नपुन्सक हो गये हैं! वह एक शस्त्रहीन मनुष्य को कुचलना चाहते हैं, क्योंकि स्वयं धनुर्विद्या की परीक्षा में सफल नहीं हो सके! परन्तु वह याद रक्खें इस प्रकार शस्त्र के बिना भी उनके सिर तोड़े जा सकते हैं" इसके साथ ही उसके हाथ का वृक्ष चंवर की भाँति चारों ओर चक्कर खाता हुआ दिखाई दिया।

भीड़ में फिर ध्वनि हुई "पकड़ लो, चीर दो इस भूत को", और जन-समूह फिर आगे बढ़ा।

मामला बेढब हो गया, परन्तु ठीक उस समय श्याम की प्रभावशाली वाणी यह कहती हुई सुनाई दी "क्षत्रियो! शूरवीरो! लज्जा का स्थान है! डूब मरने की बात है! कि इतनी महान् सभा में यह अधर्म हो रहा है। क्या तुम में कोई है जो कह सके कि उसने स्वयंवर की शर्त को पूर्ण किया और उसके साथ अन्याय किया गया है? यदि नहीं तो फिर यह कोलाहल कैसा? परन्तु भूल न जाओ कि यदि राजाओं की सभा में भी गुण्डेशाही का राज्य होना है तो तुम्हें श्याम से भी निपटना पड़ेगा, क्योंकि जहाँ धर्म है वहाँ श्याम है"—

"जहाँ श्याम है वहाँ संकर्षण है" दूसरी ओर से आवाज़ आई"—"जहाँ यह दोनों भ्राता हैं विजय वहाँ हाथ बाँधे खड़ी है" एक अन्य भाग से सुनाई दिया।

राजाओं ने देखा कि बात बिगड़ गई, इसलिये उन्होंने एक-एक करके खिसकना आरम्भ कर दिया और कुछ ही समय में सभा-मण्डप में फिर से शान्ति का साम्राज्य हो गया। उस समय श्याम ने फिर संकर्षण के कान में कहा "भ्राता! स्वयंवर की शर्ते पूर्ण करने वाले युवक को तनिक ध्यानपूर्वक देखिये।"

शर्त पूर्ण हुई

पांचाल नगर की राजधानी में यदि कोई चर्चा है, यदि कोई विषय है, जिस पर चारों ओर गर्मागर्म अफ़वाह उड़ रही है जिस पर कोने-कोने में वार्त्तालाप और चर्चा हो रही है तो वह पांचाल-कुमारी का स्वयंवर है। महीनों से इस शुभ अवसर के लिये प्रबन्ध हो रहा था। नगर के चारों ओर बाहर से आने वाले महमानों के विश्राम के लिये अतिथि-शालायें बन रही थीं, जिनमें लाखोंपति ठेकेदारों से लेकर कुछ पैसे प्रतिदिन कमाने वाले मज़-दूर तक कार्य कर रहे थे। नगर का प्रत्येक भाग राज्य-कर्मचारियों के ध्यान का केन्द्र था, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जानता था कि कृष्णा का सौंदर्य्य, और उससे भी बढ़कर स्वयंवर की शर्त, जो भारत भर के पौरुष का परीक्षा-पत्र था देश-देश से साहसी नव-युवकों, राजकुमारों और कुशल धनुर्धारियों को पांचाल नगरी में खींच लायेगी और नगर का एक-एक नागरिक यह अनुभव करता था कि यदि निमन्त्रितों में से किसी को भी नगर की शुद्धता इत्यादि के विषय में कोई त्रुटि दीख पड़ी, तो उनका देश सारे भारतवर्ष में लांछित हो जायेगा, इसलिये प्रत्येक नागरिक अपने अपने स्थान पर इस अवसर के लिये तैय्यार हो रहा था। आज प्रातः से लोग झुण्डों के झुण्ड स्वयंवर-स्थल में एकत्रित हो रहे थे, उन में

पुरुष भी थे, स्त्रियाँ भी थीं, और बालक भी थे। जो अल्प संख्या नगर के भीतर रह गयी थी उसका ध्यान भी इसी मैदान की सूचनाओं की ओर लग रहा था, और जब भी कोई उधर से नगर की ओर आता तो सर्वप्रथम प्रश्न जो उससे किया जाता वह स्वयंवर के विषय में होता। तदनुसार वह देखिये भार्गव मुहल्ले में अभी-अभी एक नवयुवक किसी आवश्यक कार्य के लिये घुसा है, कि स्त्रियों ने घेरा डाल दिया और एक-एक ने उससे पूछना प्रारम्भ कर दिया कि स्वयंवर की अन्तिम सूचना क्या है ?

आगन्तुक के लिये इतने प्रश्नों का उत्तर देना कठिन हो गया और जब कुछ काल पश्चात् प्रश्न कर्त्ता शान्त हुए तो सब के उत्तर में वह कठिनतापूर्वक केवल यह कह पाया था कि "स्वयंवर की शर्त पूर्ण होगई" कि चारों ओर से फिर प्रश्नों की झड़ी लग गई "किसने शर्त को पूर्ण किया ?" "कौन राजकुमार हमारी राजकुमारी का पति बनेगा ?" "क्या वह कुछ सुन्दर भी है ?" "हमारी कृष्णा तो सौंदर्य की मूर्ति है, क्या पति उसे अपने जैसा मिला या नहीं ?.................."

नवागन्तुक—इतना ही सुन पाया हूँ कि स्वयंवर की शर्त राजकुमारों से पूरी न हो सकी और ब्राह्मणों ने उसे पूरा करके राजकुमारी को जीत लिया, इस पर स्वयंवर में दङ्गा हो गया।"

"दङ्गा हो गया ?" 'झगड़ा हो गया ?" "किसी को चोट तो नहीं लगी ?" "हमारी राजकुमारी तो कुशलता से हैं ?" "महाराज पर तो आपत्ति नहीं आई ?" जितने मुख उतने ही प्रश्न। बेचारा

नवागन्तुक उन में से किसी एक का भी उत्तर नहीं दे सकता था, इसलिये शीघ्रता से पिण्ड छुड़ाकर गृह के भीतर घुस गया।

कुछ काल और व्यतीत हुआ और उस मुहल्ले के एक और गृह में किवाड़ खटखटाया गया। द्वार खुला और उसके साथ ही यह प्रश्न गूँजा "कहो बेटा! क्या स्वयंवर से आये हो, वहाँ क्या हुआ?"

"माता भीतर चलो, वहाँ निश्चिन्तता-पूर्वक सब कुछ बताऊँगा" आने वाले नवयुवकों में से एक ने, जो सबसे बड़ा प्रतीत होता था, हँसते हुए कहा।

"पुत्र! अभी-अभी गली में कोई कह रहा था कि स्वयंवर ब्राह्मणों ने जीत लिया, और वहाँ पर झगड़ा हो गया। मेरे तो यह सुनकर प्राण ही उड़ गये। कहो वत्स! वहाँ पर क्या हुआ?"

"माता घबराओ नहीं, स्वयंवर की शर्त..............."

"हाँ हाँ बताओ न किसने पूरी की?"

"माताजी! आप अत्यन्त व्याकुल हैं मुझे कह लेने दीजिये, स्वयंवर की शर्त............"

"तुम्हारे दोनों छोटे भ्राता कहाँ हैं? तुम आ गये और वह क्यों नहीं आये?

"माता! स्वयंवर की शर्त अर्जुन ने पूरी करदी।"

"क्या सत्य? तुम्हारे मुख में घी शक्कर! क्या यह सत्य है?"

"जिस समय अर्जुन ने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर मछली को बेंधा और पृथ्वी पर गिराया, तो हम तीनों भ्राता स्वयंवर से चल दिये कि आप को यह शुभ समाचार सुनायें और दूसरे इस

कारण कि सुयोधन आदि हम पाँचों भ्राताओं को इकट्ठे देखकर पहचान न जायँ। पर यह आपने क्या बताया कि स्वयंवर में झगड़ा हो गया ? सहदेव ! जाओ तो वास्तविकता का पता लगाकर शीघ्र लौटो। ताकि यदि आवश्यकता हो तो हम भी वहाँ पहुँच सकें।"

अन्वेषण

"क्यों सात्यकि तुम्हारे गुप्तचर क्या समाचार लाये ?" अपने शिविर में बैठे हुए श्याम ने अपने मित्र से पूछा—

सात्यकि—भगवन् ! पांचाल नगर की राजनीति आज सन्ध्या समय से भार्गव मुहल्ले के आस-पास चक्कर काट रही है, जो कृष्णा के चरण-रज से पवित्र हो रहा है। स्वयंवर से निपट कर दोनों ब्राह्मण कृष्णा को साथ लिये हुये उस मुहल्ले की ओर गये। लोगों की भीड़ उनके सहित थी। राजकुमारी की रक्षा के लिये राज्य-कर्मचारी भी सेवा में थे। भीड़ ज्यों-ज्यों आगे जा रही थी उसमें वढ़ती होती जा रही थी। स्वयं राजकुमार धृष्टद्युम्न अपनी भगिनी के साथ-साथ जा रहे थे। भार्गव मुहल्ले तक पहुँचते-पहुँचते अच्छा खासा अँधेरा हो गया, और जब उस गृह तक पहुँचे जो उन ब्राह्मणों का निवास-स्थान था, तो भीतर से एक स्त्री ने जिसके पीछे तीन नवयुवक खड़े थे बाहर आकर उनका स्वागत किया। कृष्णा और वह ब्राह्मण भीतर चले गये और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का वह समूह वापिस लौटा। अब राज्य की ओर से गुप्तचर उस गृह के आस-पास के स्थानों पर गुप्त रीति से उपस्थित हैं, जिससे कि कल स्वयंवर में जो झगड़ा हुआ था वह फिर से न उठ खड़ा हो।

"अच्छा सात्यकि ! तुम विश्राम करो, मैं और भ्राता संकर्षण भोजनोपरान्त नगर भ्रमणार्थ जायँगे। हमारी प्रतीक्षा करना।"

× × ×

रात्रि का एक पहर व्यतीत हो चुका था, परन्तु भार्गव मुहल्ले में उस समय तक भी स्थान-स्थान पर लोग एकत्र हो होकर स्वयंवर के विषय पर वार्त्तालाप कर रहे थे। एक स्थान पर एक कह रहा था "देखा जो कार्य क्षत्रियों से न हो सका वह ब्राह्मणों ने कर दिखाया। क्यों न हो ब्रह्मा का मुख जो हुए।"

दूसरा—भाई ! क्षत्रियों में भोगविलास का चाव बढ़ रहा है इसी कारण उन्हें धनुर्विद्या में वह हस्तलाघव प्राप्त नहीं।

तीसरा—और यही तो अधोगति के कारण हैं। यदि आज देश पर कोई आपत्ति आ जाये तो ज्ञात नहीं क्या हो ?

चौथा—धन्य हैं परमात्मा ! अभी देश से वीरता का नाश नहीं हुआ यह ब्राह्मणों ने आज सिद्ध कर दिया।

इस प्रकार का वार्त्तालाप सुनते और उससे मनोरंजन करते हुए श्याम और संकर्षण भार्गव मुहल्ले के उस गृह की ओर बढ़ रहे थे जो आज समस्त पांचाल देश के आकर्षण का केन्द्र था और इसी कारण सुगमता-पूर्वक ढूँढा जा सकता था। द्वार पर पहुँच कर श्याम ने किवाड़ खटखटाया तो सहदेव ने उसे खोलते हुये कहा, "कौन ?"

"क्या श्याम और संकर्षण भीतर आ सकते हैं ?" श्याम ने उत्तर में पूछा।

"एक क्षण ठहरिये" कह कर सहदेव भीतर गये और दूसरे क्षण में स्वयं महाराज युधिष्ठिर उन के स्वागत के लिये द्वार पर विराजमान थे। दोनों भ्राताओं ने उनकी चरण-वन्दना की और वह दोनों को हृदय से लगा कर भीतर ले गये।

भीतर जाते हुए श्याम ने पूछा—"बूआजी कहाँ हैं ?"

"माताजी उधर हैं" कहकर युधिष्ठिर ने उन्हें आदरपूर्वक बैठाया।

श्याम और संकर्षण ने अपनी बूआ को इतने वर्षों के पश्चात् आज प्रथम बार देखा था, उन्हें देखकर देवी कुन्ती के नेत्रों में अश्रु भर आए और उन्हें हृदय से लगाते हुए उसने कहा—"कृष्णा ही नहीं मेरी राम-लक्ष्मण की जोड़ी भी आज मेरे गृह को पवित्र कर रही है। क्या वास्तव में राज्य-लक्ष्मी का ध्यान इस ओर हुआ है ?"

युधिष्ठिर—श्याम जी ! हम प्रथम बार मिले हैं, आपने हमें कैसे पहचाना ?

श्याम—अग्नि को लाख छिपाओ वह छिपी नहीं रह सकती ! और आज का कार्य देखकर तो कोई अन्धा ही धोखे में रह सकता था, क्योंकि भारत भर में पाण्डवों के अतिरिक्त कौन ऐसा अपूर्व साहस कर सकता था ? सौभाग्यवान हैं हम कि शत्रुदमन पाण्डव अग्नि की गोदी से बचकर जीवित जाग्रत उपस्थित हैं। धन्य है परमात्मा कि दुरात्मा सुयोधन की इच्छा पूर्ण नहीं हुई। परन्तु आप लोगों के अभ्युदय के दिवस अभी तक समय की

कन्दरा में छिपे हुए हैं। अभी आवश्यकता है कि कोई आपको इतनी शीघ्र पहचान न सके, इस कारण आज्ञा दीजिये हम दोनों भ्राता फिर उपस्थित होंगे।

पांचों भाइयों और माता कुन्ती के मनोभाव इस अकस्मात मिलन से कुछ ऐसे उभर आये थे कि वह उन्हें जाने देने की आज्ञा देने के इच्छुक न थे, परन्तु समय का अनुरोध यही था, इसीलिए उन्हें विदा करना ही पड़ा।

× × ×

रात्रि बीत गई, वह रात्रि जो पाण्डु पुत्रों के लिये इतनी प्रसन्नता की रात्रि थी, वह रात्रि जो सहस्रों राजाओं के लिये लज्जा और शोक की रात्रि थी, वह रात्रि जो पांचाल राजधानी के लिये आवेश की रात्रि थी, हां वह रात्रि व्यतीत हो गई जिसे महाराज यज्ञसेन ने आँखों में काटा था, वह शैय्या पर पड़े थे, परन्तु शैय्या कांटों की शैय्या प्रतीत होती थी। धृष्टद्युम्न उन से प्रतिज्ञा करके गये थे कि वह प्रातः तक इस रहस्य का उद्घाटन करेंगे कि कृष्णा को विजय करने वाला कौन है? परन्तु प्रातःकाल होने में इतना समय था कि व्यतीत होने ही में न आता था। वह बारबार उठते थे और तनिक सी आहट पर चारों ओर देखने लग जाते थे, परन्तु राजकुमार का कोई पता न था। भांति-भांति के विचार उनके मन में चक्कर काटने लगते थे। कहीं स्वयम्वर से निराश हुआ कोई राजा उनकी ताक में न रहा हो? कहीं वह शत्रु के हत्थे न चढ़ गये हों? इस प्रकार के कुविचार मन में उत्पन्न हो-

हो कर उन्हें व्याकुल कर रहे थे, परन्तु धृष्टद्युम्न शूरवीर हैं, नीति-कुशल हैं, राजधानी अपनी है, देश अपना है, सेना अपनी है, इस लिये इस भान्ति की घटना नहीं हो सकती यह विचार धीरज बंधाता था।

ईश्वर ईश्वर करके रात्रि समाप्त हुई, मनमोहक उषा काल आ पहुंचा, महाराज शैय्या से उठे, और अभी कठिनता से नित्य कर्म से निपटे थे कि धृष्टद्युम्न ने उपस्थित होकर चरण वन्दना की।

महाराज—कहो वत्स! क्या समाचार लाये? कृष्णा को ले जाने वाला कौन है? वह कहां गई? क्या किसी नीच ने तो हमारे शिर पर लात नहीं मारी? सुगन्धित माला कहीं श्मशान में तो नहीं फेंकी गई? आह स्वयम्वर! तेरी प्रथा ने हम लोगों को कितना विवश कर दिया है। हा! यदि पाण्डु-पुत्र आज जीवित होते तो मेरी हार्दिक इच्छा पूर्ण हो जाती!

धृष्टद्युम्न—पिता जी! आप घबराइये नहीं, ईश्वर चाहेंगे तो आपकी इच्छा पूर्ण होकर रहेगी। मैंने इस समय पर्य्यन्त जो कुछ देखा है उससे तो मैं इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ कि कृष्णा को ले जाने वाले क्षत्रिय के अतिरिक्त और कोई नहीं, और कौन जाने अधिक ज्ञात होने पर वह पाण्डु-पुत्र ही सिद्ध हों।

महाराज—क्या सत्य? तो मुझे सारी कथा सुनाओ, तुमने किस प्रकार यह निश्चय किया?

धृष्टद्युम्न—वह शूरवीर जिसने लक्ष्यवेध कर स्वयम्वर की शर्त

को पूर्ण किया था मार्ग में किसी से नहीं बोला। वह स्वयम्वर से कृष्णा को लेकर ब्राह्मणों सहित चल दिया। कृष्णा उसके काले मृगचर्म का आंचल पकड़े हुए पीछे-पीछे थी। यह देखकर राजा लोग रह न सके, वह क्रुद्ध होकर उस पर टूट पड़े। उस समय एक और शूरवीर एक बड़ा सा वृक्ष उठाकर उन राजा लोगों को इस प्रकार मारने लगा जैसे यमराज अपने दण्ड से प्राणियों को मारते हैं। यह देखकर राजा लोग चकरा गये। उधर श्याम और संकर्षण ने उन्हें रोका और वह दोनों शूरवीर कृष्णा को साथ लेकर भार्गव मुहल्ले में जा घुसे। वहाँ एक गृह में अग्नि की ज्योति के समान तेजस्वी एक वृद्धा स्त्री बैठी थी। उन दोनों शूरवीरों ने उस माता के समीप पहुँच कर उसके चरणों में प्रणाम किया और यह कह कर कि "माता जी! आज की भिक्षा यह है।" कृष्णा को उसके पास बैठा दिया। फिर वह दोनों शूरवीर और उस स्त्री के पास बैठे हुए दो अन्य शूरवीर भिक्षा मांगने के लिए नगर में आये। लौटने पर कृष्णा ने उस स्त्री की आज्ञानुसार भिक्षा की सामग्री में से कुछ अन्न लेकर देवताओं का पूजन किया, ब्राह्मणों को भिक्षा देकर अतिथि सत्कार किया, फिर जितना अन्न बचा उसमें से सब को भोजन करवा कर स्वयं भोजन किया। उसके पश्चात पृथ्वी पर कुशासन और मृगचर्म फैला कर सब लोग लेट रहे। कृष्णा भी उनके चरणों की ओर लेट रही। तब वह शूरवीर काले मेघों के समान गम्भीर स्वर से परस्पर नाना प्रकार के वार्त्तालाप करने लगे। वह बातचीत न तो वैश्यों

की थी, न ब्राह्मणों की, न शूद्रों की, क्योंकि वह तो युद्ध और शस्त्रों का वार्त्तालाप करते रहे। इससे ज्ञात होता है कि वह कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं। जिस प्रकार उस शूरवीर ने धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ाई थी और जिस प्रकार की उनकी बातचीत होती रही है उससे मुझे तो यही ज्ञात होता है, कि वह पांचों पाण्डव हैं और वह स्त्री उनकी माता कुन्ती है। आगे ईश्वर जाने।"

महाराज—धन्य हो परमात्मा! तुम धन्य हो! बेटा तुम सारी रात कहां रहे?

धृष्टद्युम्न--मैं उसी गृह में एक कोने में पड़ा सब कुछ देख और सुन रहा था। गृहस्वामी को मैंने कह रक्खा था कि वह अपने अतिथियों को इसकी सूचना न दे, इससे मुझे यह देखने और श्रवण करने का अवसर मिल गया। मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि मेरे अतिरिक्त और भी कोई महापुरुष थे जो उन शूरवीरों की वास्तविकता जानने के इच्छुक थे।

महाराज—कौन ?

धृष्टद्युम्न—राजेन्द्र श्याम और उनके ज्येष्ठ भ्राता संकर्षण। मेरे गुप्तचर बताते हैं कि वह भी उस गृह में अल्प-काल के लिये पधारे थे। इससे मेरा अनुमान और भी दृढ़ हुआ जाता है।

महाराज—जो भगवान् की इच्छा!

कर्ण का क्रोध

"माता वसुन्धरा फट जा कि कर्ण तुझ में समा जाय! वह अब किसी मनुष्य को मुख दिखाने योग्य नहीं है। उफ़! भरी सभा में यह अपमान! एक स्त्री के द्वारा। इससे प्रथम भी इसी प्रकार की बात एक पुरुष के मुख से सुन चुका हूँ, उसे उसका फल भोगना होगा और वह उसे भोगेगा! परन्तु आज इतने राजाओं के सन्मुख, इतने शूरवीरों की उपस्थिति में निरादर! सूर्य देव! (आकाश की ओर देखकर) आपने अपनी तीव्र किरणों से क्यों न कर्ण को जला डाला! वह जिधर जाता है, जिस ओर मुख करता है "सूतपुत्र" यह शब्द आकाश में गूंजता हुआ सुनाई देता है, भारत का बच्चा-बच्चा जिस समय उसके मुख की ओर निहारता है तो जिह्वा से नहीं, तो मुख से, वही शब्द कहता हुआ प्रतीत होता है। (फिर संभलकर) तो क्या सूतपुत्र होना पाप है? क्या सूतपुत्र ऐसा जीवन व्यतीत करते हैं जिस के लिये उन्हें नेत्र झुकाने पड़ें! नहीं-नहीं मैं जानता हूं कि मेरा जन्म ऐसे वंश में हुआ है जो पाप रहित है। मेरे माता पिता निर्धन हों, धनहीन हों, परन्तु पापी नहीं, तो मुझे हृदय छोटा करने की क्या आवश्यकता है? मुझे लज्जित होने का क्या कारण है? इसकी आवश्यकता यदि किसी को है तो उन्हें जो जन्म

अभिमानी हैं। महाराज यज्ञसेन एक बार इसी अभिमान का फल भोग चुके हैं, परन्तु यह रोग उन के वंश से नहीं गया। आज उन की कन्या ने इस पैतृक रोग का प्रमाण दिया है, परन्तु यदि कर्ण जीवित रहा तो वह इस अभिमानिनी कन्या का अभिमान तोड़ कर चकनाचूर कर देगा ! वह स्त्री है, इसलिये मैंने उस समय क्रोध को शर्बत के घूंट की भांति पी लिया, परन्तु समय दिखायेगा कि अस्त्र-शस्त्र से भी बढ़कर और बहुत से उपाय हैं जिन से अभिमानी का अभिमान चकनाचूर किया जा सकता है······

"अंगेश महाराज क्या विचार कर रहे हैं ?"

"अंगेश नहीं सूत-पुत्र सोच रहा है कि क्या जन्म इतना बलवान है कि कर्म को सदैव के लिये मिटाये रख सके ?"

"असम्भव ! शूरवीरों और नदियों का जन्म पूछने वाला मूर्ख है ! निर्बुद्धि है !"

"ठीक ! किन्तु आज भारत में जन्म प्रधान हो रहा है। भैय्या सुयोधन ! क्या आपको स्मरण नहीं, गुरुदेव ने उस दिन किरात पुत्र का अंगूठा कटवा लिया, इसलिये नहीं कि उन्होंने उसके दाहिने हाथ के अंगूठे को दक्षिणा में लेकर उससे कोई विशेष कार्य लेना था, वरञ्च इसलिये कि अधम जाति में जन्म लेकर कोई मनुष्य क्षत्रिय कुल की समानता न कर सके। और उस दिन जब आप लोगों की परीक्षा हो रही थी और जब मैंने अर्जुन को प्रतिपक्ष में ललकारा था मुझे क्या शब्द कहे गये थे ? और आज··········उफ़ ! आज के शब्द जो एक पुरुष नहीं एक स्त्री

के मुख से निकले हैं तप्त लोह की गर्म-गर्म और रक्तवर्ण शलाखा की भाँति मेरे हृदय पर लगकर जलता हुआ चिन्ह छोड़ गये हैं। क्या मैं उन्हें कभी भूल सकता हूँ ? कदापि नहीं ! कदाचित नहीं !!

सुयोधन—कृष्णा ने आज जो शब्द कहे हैं वह भारत के विध्वंस का कारण होंगे। कोई शूरवीर जिसके शरीर में गर्म रक्त बहता हो उन शब्दों को शीतल हृदय से नहीं सुन सकता। सत्य पूछो तो यदि आपका संकेत होता तो आज सुयोधन स्वयम्वर स्थल में ही रक्त की नदियाँ बहा देता पूर्व इसके कि उन शब्दों की गुंजार वायुमण्डल से लुप्त होती। परन्तु मुझे भूला नहीं था कि कर्ण जिसके समान शूरवीर आज भारत ने उत्पन्न नहीं किया, इस बात को सहन नहीं करेगा कि भारत की मिट्टी एक स्त्री के रक्त से लाल हो......... ।"

कर्ण (कांपकर) त्राहिमाम् ! त्राहिमाम् !! भ्राता सुयोधन ! यह तुमने क्या कह दिया ? कर्ण निर्धन कुल में उत्पन्न हुआ है, वह राज्यवंश में नहीं जन्मा, तो भी इतना नीच नहीं कि स्त्री पर वार सहन कर सके। परन्तु कृष्णा ने जो बर्छी चलाई है, मैं इन्कार नहीं कर सकता मेरे हृदय को चीरकर दो कर गई है। इसलिये उसका अभिमान तोड़ना है और वह तोड़ा जायेगा।

सुयोधन—यह दास प्रत्येक सेवा के लिये तत्पर है।

कर्ण—(बात को सुनी-अनसुनी करके) कृष्णा किसी भिखमंगे ब्राह्मण से विवाह करे, या गगन-चुम्बी प्रासादों वाले राजा से,

मुझे इस बात की परवाह नहीं, न ही मैं इस इच्छा से यहां आया था क्योंकि मुझे भूला नहीं कि मैंने यदि विवाह करना है तो किसी राजपुत्री से नहीं बल्कि उस स्त्री से, चाहे वह निर्धन हो या धनवान पिता की पुत्री, जो कर्ण से कर्ण के लिये प्रेम कर सके और इस जीवन यात्रा में उसकी सहायक हो सके, न कि उससे जो जन्म-अभिमानिनी हो। हां, हां मेरे यहां आने का यदि कोई प्रयोजन था तो केवल यही कि अर्जुन के न होने के कारण कोई यह न कह सके कि राजा यज्ञसेन की पुत्री के स्वयम्वर की शर्त पूरी न हो सकी।

सुयोधन—कृष्णा के लिये यह क्या थोड़ा दण्ड है कि वह अंगेश को छोड़कर भिक्षा मांगने वाले ब्राह्मण से विवाह करने पर विवश हुई है।

कर्ण—कर्ण ऐसा नहीं कहेगा। स्वयंवर की शर्त को पूरा करने वाला कोई भी हो, शूरवीर है, और उसने आज उस शर्त को पूरा करके तुम लोगों की नाक रखली है। नहीं तो जगत के राजदूत, जो इस विवाह में सम्मिलित थे, क्या कहते? भाई! वह भीखमंगा हो परन्तु शूरवीर है, जिस ने आज इतने राजाओं का अभिमान चकनाचूर कर दिया है और यदि कर्ण को सुयोधन जैसा दानवीर मिल सकता है जो उसे मिट्टी से उठा कर राजगद्दी पर[1] बैठा दे, तो कोई कारण नहीं कि वह इस जीवन यात्रा में सदैव के लिये भीख ही मांगता रहे।

---

1 कर्ण को सूत ने अपना पुत्र बना कर पालन किया था इसलिये

सुयोधन—भ्राता! क्यों काँटों पर घसीटते हो? क्या मुझे ज्ञात नहीं कि यदि आज मैं समस्त संसार को ललकारने की सामर्थ्य रखता हूं तो केवल कर्ण के बल पर!

कर्ण—यह वास्तविकता है जिसे मैं अपने शब्दों में कह रहा हूं। परन्तु कृष्णा ने आज कहा है कि वह सूतपुत्र से विवाह नहीं करेगी और उसने उस सूतपुत्र को विश्व को यह दिखाने का अवसर भी नहीं दिया कि सूत पुत्र होने पर भी वह क्षत्रिय शूरवीरों को पछाड़ सकता है। हाँ हाँ उसने उसके मन की समस्त उमंगों, समस्त आशाओं और सर्व कल्पनाओं को उन थोड़े से शब्दों के साथ पृथ्वी पर पटक कर पांओं से मसल दिया है, उसके उस जातीय अभिमान को तोड़ कर जगत को यह दिखाना है कि शौर्य, वीर्य्य क्षत्रिय माता पिता के पुत्रों की ही पैतृक सम्पत्ति नहीं।

सुयोधन—और सुयोधन इस पवित्र कार्य्य में प्राणपन से तुम्हारा सहायक होगा। परमात्मा तुम्हारी इस शुभ इच्छा को पूर्ण करें।

वह "सूतपुत्र" प्रसिद्ध था। वह किस का पुत्र था? और कहाँ से आया था? इसके ज्ञाता बहुत कम थे। राजकुमार सुयोधन ने उसकी वीरता, बल और बुद्धि तथा अन्य गुणों के कारण उसे अंग देश का राज्य सौंप दिया था। इस वार्त्तालाप में वह इसी घटना की ओर संकेत कर रहा था।

विवाह किस से हो ?

"भाई अर्जुन ! राजकुमारी कृष्णा को तुमने अपने बाहुबल से प्राप्त किया है, तुम्हीं से उसकी शोभा होगी, इस कारण अग्नि प्रज्वलित करके विधि पूर्वक उसका पाणिग्रहण करो।"

अर्जुन—नरेन्द्र ! आप मुझे अधर्म में क्यों डालते हैं ? जब तक आप अविवाहित हैं मैं ऐसा करने में असमर्थ हूं।

युधिष्ठिर—परन्तु कृष्णा को तुमने अपने बाहुबल से प्राप्त किया है।

अर्जुन—यह नवीन बात नहीं। क्या आज पर्य्यन्त हम पांचों भाई एक शरीर के समान नहीं रहे ? क्या आज तक हमने कभी यह विचार भी किया है कि हम में से कोई अपने लिये कोई वस्तु विशेष प्राप्त कर रहा है ?

युधिष्ठिर—अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में तो यह ठीक हो सकता है परन्तु स्त्री रत्न के सम्बन्ध में नहीं।

अर्जुन—भ्राता ! मुझे कांटों की शैय्या पर न घसीटिये। मैंने स्वयंवर की शर्त को व्यक्तिगत रूप में पूर्ण नहीं किया, बल्कि आपके प्रतिनिधि के रूप में। जिस प्रकार आप सब कार्यों में आज पर्य्यन्त हम सबके प्रतिनिधि हैं और उनमें से अपने लिये कोई

वस्तु अलग धारण नहीं करते, इसी प्रकार इस कार्य्य में मैंने आपके प्रतिनिधि का कार्य्य पूर्ण किया है, क्योंकि धनुष खींचना मेरा कार्य्य था।

युधिष्ठिर—अन्य वस्तुएँ साझी धारण की जा सकती हैं, परन्तु स्त्री नहीं।

अर्जुन—भगवन! यह आप क्या कह रहे हैं? कृष्णा महाराज द्रुपद की कन्या है वह महाराज को ही शोभा देगी। हम चारों भ्राता आप की आज्ञा पर चलने वाले हैं, कृष्णा आप के साथ विवाहित होने से हमारे लिये समान आदर का स्थान होगी और हम सब आप की और उसकी सेवा करते हुए सुख को भोगेंगे। कृष्णा इस प्रकार हम सबके सुख और आनन्द का कारण होगी, अन्य रूप में नहीं।

युधिष्ठिर—स्वयंवर की शर्त को पूर्ण करने वाले तुम हो और महाराज यज्ञसेन की भी यही इच्छा होगी कि विवाह तुम्हारे साथ ही हो।

अर्जुन—पितामह भीष्म ने काशीराज की कन्याओं को स्वयंवर में जीता और हमारे पितामह के साथ उनका विवाह किया, क्या यह ऐतिहासिक घटना नहीं? इसी प्रकार पांडवों ने कुमारी कृष्णा को स्वयंवर में जीता और यह उन्होंने सोचना है कि इस रत्न को किस प्रकार धारण करें। रहे महाराज यज्ञसेन, उनके सम्बन्ध में जहां तक मैं कह सकता हूँ वह अपनी पुत्री के द्वारा पांडवों से सम्बन्ध स्थापन करना चाहते थे और उनकी यह

इच्छा पूर्ण हो गई है।

युधिष्ठिर—तुम्हारे विवाह से इन्कार करने से समस्या कठिन हो रही है, माताजी तथा अन्य भाइयों को बिठा कर इसका उपाय सोचना होगा।

"क्यों माताजी आपकी सम्मति क्या है ?"

कुन्ती—वत्स ! मैं तो यह जानती हूं कि तुम सब भ्राता, जिस प्रकार आज पर्य्यन्त एक शरीर के रूप में चले आ रहे हो, मैं अपने जीवन में तुम्हें इसी प्रकार देखूँ।

वृकोदर भीम—अर्जुन पांडव रूपी शरीर का धनुषधारी और वृकोदर गदाधारी हाथ है, सहदेव और नकुल उसकी जांघें हैं, और आप सबके मुकुट शिरोमणी मस्तिष्क हैं।

नकुल—हमारा धर्म यह है कि अपने अपने कार्य को पूर्ण करते हुये जो कुछ ग्रहण करें उसे आप के चरणों में अर्पण करें।

सहदेव—अर्जुन ने अपना धर्म पालन करते हुये कृष्णा को जीत कर आप के चरणों में अर्पण किया है, यदि आप उसे ग्रहण करेंगे तो माता जी के कथनानुसार सारा शरीर सुखी होगा।

अर्जुन—निस्सन्देह महाराज यज्ञसेन पांडव-पुत्रों से सम्बन्ध स्थापित करके अपनी शक्ति को बढ़ाना चाहते हैं, और यह तभी हो सकता है यदि राजकुमारी कृष्णा हम लोगों की महारानी बने, और यह हो नहीं सकता यदि आप उसे ठुकराकर अपने कनिष्ठ भ्राता के गले मढ़ दें।

कुन्ती—वत्स ! तुम्हारे भ्राता श्याम आये थे उनसे सम्मति ले लेते, उनकी बुद्धि अति तीव्र है वह इस प्रश्न का हल सुगमता से कर देंगे। सहदेव ! जाओ तो उन्हें आने का संदेश दे आओ।

× × × ×

"श्याम भ्राता ! हो तो तुम आयु में हम से छोटे, परन्तु समस्त भारत तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करता है, आज हमारे सम्मुख एक जटिल प्रश्न उपस्थित है और हम चाहते हैं कि तुम हमें उसके हल करने में सहायता दो"—युधिष्ठिर ने कहा।

श्याम—मैं क्या और मेरी बुद्धि क्या ? तो भी जो विचार होंगे, आप महानुभावों तथा बुआजी के सन्मुख रख दूंगा। आज्ञा कीजिए क्या विषय है ?

युधिष्ठिर—अर्जुन ने कुमारी कृष्णा को स्वयंवर में जीता है। मैंने उनसे कहा है कि विधिपूर्वक उसका पाणिग्रहण करें, परन्तु वह इसमें सहमत नहीं।

श्याम—कहो अर्जुन ! इस विषय में तुम क्या कहते हो ?

अर्जुन—मुझे केवल यह कहना है कि हम सब भाई आज पर्य्यन्त एक शरीर के रूप में कार्य करते रहे हैं जिसमें महाराज युधिष्ठिर आत्मा के रूप में विराजमान रहे हैं। वृकोदर इस शरीर का गदाधारी हाथ है और अर्जुन धनुषधारी, नकुल और सहदेव इसकी टांगें हैं। हम में से जो कोई भी जो कर्म करता है वह अपने लिये नहीं वरञ्च सारे शरीर के लिए करता है। जिस समय वृकोदर हमें और माता जी को लाक्षागृह से निकाल कर बाहर

लाये थे उन्होंने हम से उसका पुरस्कार नहीं मांगा था। इसी प्रकार जब स्वयंवर में महाराज यज्ञसेन ने धनुष विद्या की परीक्षा के लिये धनुष बाण ला कर रक्खे तो निस्संदेह उन्हें खींचना मेरा काम था, परन्तु उसके फल को ग्रहण करना मेरा काम नहीं है।

श्याम—बुआ जी ! आपकी इसमें क्या सम्मति है ?

कुन्ती—बेटा ! मैं तो कह चुकी हूँ कि ऐसा कार्य्य करो जिससे कृष्णा के सुख को यह सब भोग सकें।

श्याम—भ्राता वृकोदर ! आप क्या कहते हैं ?

वृकोदर—जिस समय वनों में विचरते हुये मैंने हिडम्ब राक्षस का वध किया था तो उसकी भगिनी हिडम्बा ने माता जी और भ्राता जी से प्रार्थना की थी और उन्होंने मुझे इस बात पर विवश किया था कि मैं हिडम्बा के साथ विवाह करूँ। मैंने यह सम्मति रखते हुए भी कि भ्राता को मारकर उसकी भगिनी को अपने कुल में लेना अच्छा नहीं, उनकी आज्ञा के सन्मुख शीश झुका दिया था। मेरे सन्मुख उस समय भी यह प्रश्न था कि विवाह पहिले हम में से सब से बड़े भ्राता का होना चाहिये, परन्तु हिडम्बा का कुल और प्रकृति ऐसी नहीं थी कि हम उसे अपनी महारानी बनाते। इस कारण मैंने इस बात पर आग्रह नहीं किया। परन्तु इस समय मेरे विचार में जो कुछ अर्जुन कथन कर रहे हैं वही होना चाहिए।

श्याम—नकुल और सहदेव ! आपकी सम्मति ?

नकुल और सहदेव—हम भी अर्जुन और वृकोदर से सहमत हैं।

श्याम—तो मैं क्या सम्मति दूं? यहाँ तो आप लोग प्रथम ही इस समस्या को सुलझा चुके हैं।

युधिष्ठिर—आपको अपनी स्वतन्त्र सम्मति देनी होगी।

श्याम—(गम्भीरतापूर्वक) इस प्रश्न के कई अंग हैं और उन सब को सन्मुख रखते हुए दो टूक निर्णय करना होगा। बुआ जी चाहती हैं कि कृष्णा का सुख तुम सब भोगो, महाराज यज्ञसेन चाहते हैं कि उनकी पुत्री कुरु राज्य की महारानी होकर उनकी शक्ति बढ़ाने का कारण बने। आपके चारों भाइयों की इच्छा है कि कृष्णा का पाणिग्रहण आप करें। परन्तु स्वयं कृष्णा क्या कहती है?

कुन्ती—उसे हम सब का निर्णय स्वीकार होगा।

श्याम—साधारण दृष्टि से देखा जाय तो महाराज युधिष्ठिर जो कुछ कथन कर रहे हैं वह ठीक दीख पड़ता है, क्योंकि स्वयंवर की शर्त को अर्जुन ने पूर्ण किया है। परन्तु इतिहास में, नहीं नहीं कुरुवंश में ही ऐसी घटनाएँ हो चुकी हैं जब कि स्त्री को जीतने वाला कोई और था और विवाह किसी और के साथ हुआ, जैसे भीष्मजी ने आयु पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करते हुए भी काशीराज की कन्याओं को स्वयंवर में जीता और अपने भ्राता विचित्रवीर्य्य से उनका विवाह किया। इस कारण यह युक्ति ऐसी प्रबल नहीं रहती, विशेषकर इसलिए कि कृष्णा को इस

पर आग्रह नहीं। दूसरी बात नीति की है। निस्सन्देह इस समय जब कि आप लोग सुयोधन के अत्याचार से दुखित हो रहे हैं, आप लोगों को एक शक्तिशाली सहायक की आवश्यकता है जिसे दैव ने महाराज यज्ञसेन के रूप में आपके समीप भेज दिया है। अब देखना यह है कि अर्जुन के साथ कृष्णा का विवाह उनकी सहानुभूति प्राप्त करने में कहाँ तक सहायता दे सकता है? निस्सन्देह जब राज्य-लक्ष्मी आपकी ओर दृष्टि करेगी, और उस में अब अधिक विलम्ब दीख नहीं पड़ता, तो महाराज युधिष्ठिर कुरुप्रदेश के महाराज होंगे और आप चारों भ्राता उनके अङ्ग। उस समय यदि कृष्णा की स्थिति एक मन्त्री या सेनापति की स्त्री की हुई, तो चाहे वह महामन्त्री ही क्यों न हो, तो भी महाराज यज्ञसेन इसे अच्छा नहीं समझेंगे और न ही युद्ध में वह महाराज युधिष्ठिर के पूर्ण रूपेण सहायक हो सकेंगे। दूसरी ओर यदि कृष्णा महाराज युधिष्ठिर के साथ राजगद्दी को सुशोभित करेगी तो महाराज यज्ञसेन का धर्म होगा कि वह आप लोगों को पूर्ण सहायता दें और उनके ऐसा करने पर उनके अन्य सम्बन्धी राजा भी आपके साथ होंगे। तीसरी बात बुआ जी का कथन है। सो वह भी इसी प्रकार पूर्ण हो सकता है कि कृष्णा आप सब की महारानी हो, और अपनी बुद्धि और चातुर्य्य से आप सब को एकत्र रखने का कारण बने (युधिष्ठिर की ओर देखकर) यह मेरी स्वतन्त्र सम्मति है।

सबके सब भाई—साधुः! साधुः!

श्याम—तो आपके इस निर्णय को मैं महाराज यज्ञसेन के चरणों में रख दूंगा। मुझे आशा ही नहीं विश्वास है कि वह इसे सुनकर हर्ष से फूले नहीं समायेंगे।

कर्ण और सुयोधन

"सुयोधन ! सुना आज गुप्तचर क्या समाचार लाये हैं ?" घबराए हुए कर्ण ने कहा।

सुयोधन - नहीं तो ! क्या समाचार है ?

कर्ण—यह कि स्वयंवर की शर्त पूरी करने वाला अर्जुन था !

सुयोधन—क्या सत्य ?

कर्ण—मुझे तो उसी समय यह सन्देह हो गया था, और बात सत्य ही हुई। अर्जुन के अतिरिक्त स्वयंवर की शर्त को पूरा करने वाला भारत भर के क्षत्रिय-मंडल में दूसरा नहीं है।

सुयोधन—तो अब ?

कर्ण—दूसरा समाचार इससे भी अधिक विस्मयजनक है !

सुयोधन—वह क्या ?

कर्ण—कृष्णा का विवाह युधिष्ठिर से होगा। वह महात्मा दूसरे का मारा हुआ शिकार खायेंगे !

सुयोधन—तो इसका अर्थ यह है कि युधिष्ठिर पांचाल नरेश के साथ सम्बन्ध करके हमको राज्य से निकालने का साहस करेगा !

कर्ण—यह भी ज्ञात हुआ है कि श्याम और संकर्षण इस विवाह में देने के लिये भारी संख्या में हस्ति, घोड़े और अन्य वस्तु मंगा रहे हैं।

सुयोधन—दूसरे शब्दों में यह कि यादव सेना की शक्ति भी युधिष्ठिर की पीठ पर रहेगी !

कर्ण—यह प्रत्यक्ष है !

सुयोधन—और यदि हम यहाँ पर रहे तो, हृदय से नहीं तो लोकाचार के लिये, हमें इस विवाह में सम्मिलित होकर वर और वधु को कुछ न कुछ देना और उसकी शक्ति को बढ़ाना होगा। आह ! यदि प्रोचन तनिक भी बुद्धि से काम लेता और लाक्षागृह में उसके स्थान में यह पाँच भाई जल कर भस्म हो जाते तो न रहता बाँस न बजती बाँसुरी ! परन्तु यह कटु वेल दिन-दिन पर्वान ही चढ़ रही है।

कर्ण—फटे दूध पर रोना बुद्धिमानों का काम नहीं। नीतिमान भविष्य को संभालने का यत्न किया करते हैं। तुम्हें यदि अब कोई बात सोचनी है तो यह कि भविष्य में क्या करना चाहिये जिससे यह उदय हुई अग्नि प्रचण्ड न होने पाये।

सुयोधन—आपका क्या विचार है ?

कर्ण—मेरा विचार यह है कि प्रथम इसके कि गुप्तचरों का लाया हुआ समाचार सर्वसाधारण में फैले, हमें यहां से चल देना चाहिये। हस्तिनापुर चलकर इस विषय पर भली प्रकार विचार किया जा सकता है।

सुयोधन—ऐसा ही होगा।

कुरुसभा का निर्णय

"पिताजी ! सुना ! युधिष्ठिर का पांचाली कृष्णा से विवाह हो गया ! महाराज यज्ञसेन ने पाण्डवों को पृथक् प्रासाद रहने के लिये दे दिये !! दहेज में स्वर्ण के साजों से सुसज्जित घोड़े, हाथी, रथ सहस्रों की संख्या में देकर उसने उन्हें सोने, चाँदी से लाद दिया है !! इसी सम्बन्ध में श्याम ने यादवों की ओर से रत्न-जड़ित स्वर्ण अलंकार, बहुमूल्य वस्त्र, अनेक देशों के बने हुए कोमल कम्बल और दुशाले, नाना प्रकार के आसन, कई प्रकार के बर्तन, सुन्दर सधाये हुए आभूषणों से भरे हुए गजराज, उत्तम घोड़े, रथ, करोड़ों मुद्रा और खान से निकाला हुआ शुद्ध स्वर्ण और अन्य बहुत सी वस्तुएं देकर उन्हें भरपूर कर दिया है।"

सुयोधन ने नेत्रहीन राजा धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित होकर कहा।

धृतराष्ट्र—यह तो बड़े हर्ष की बात है। अब हमें भी उन्हें इसी प्रकार की अनेक वस्तुएं भेजनी होंगी।

सुयोधन—आप सारा राज्य और सारा कोष उन्हें दे दें, हम वनों को चले जाते हैं !

धृतराष्ट्र—क्यों ?

सुयोधन—शत्रु की शक्ति इतनी बढ़ गई ! वह जो पूर्व ही

हमें कुछ न समझते थे अब महाराज यज्ञसेन और धृष्टद्युम्न जैसे सम्बन्धियों और श्याम जैसे शक्तिशालि सहायकों को पाकर हमें क्या इस राज्य में रहने देंगे ? और आप उन्हें और कुछ भी भेजने की चिन्ता में हैं।

धृतराष्ट्र—(गम्भीरतापूर्वक बात तो ठीक प्रतीत होती है। फिर तुम्हारी सम्मति क्या है ?

सुयोधन—मैं तो यह चाहता हूं कि हम भेदनीति* से काम लेकर राजा यज्ञसेन और उनके नये सम्बन्धियों में फूट डलवा दें, या चतुर वेश्याओं आदि को आगे करके कृष्णा को युधिष्ठर से विमुख करवा दें, अथवा हमारे लोग गुप्त रीति से पाण्डवों के समीप रहते हुए उनमें झगड़ा करवा कर उनकी शक्ति को घटा दें। यदि और कुछ न हो सके तो वृकोदर को ही किसी उपाय से मरवा दिया जाय, उसी के बल पर पांडव बहुत अकड़ रहे हैं। उसके न रहने पर अर्जुन को तो कर्ण सुगमता से पिछाड़ सकते हैं।

धृतराष्ट्र—कर्ण का इस विषय में क्या मत है ?

कर्ण--महाराज ! मैं तो भेदनीति से कार्य लेने के पक्ष में नहीं हूँ। यदि मेरी सुनो तो अपना तो यह मत है कि शत्रुओं की शक्ति अभी तुच्छ है। यदि हम इस समय पाँचाल देश पर आक्रमण कर दें तो न केवल पाण्डवों को ही मलियामेट कर सकते हैं बल्कि राजा यज्ञसेन को भी नाकों चने चबवा सकते हैं;

---

* भेदनीति जिसे अंग्रेज़ी में Divide & Conquer अथवा शत्रु में फूट डाल कर उन्हें जीत लेना कहते हैं।

परन्तु इसके पश्चात् यदि उन्हें यादव सेना की सहायता मिल गई और शत्रु को पूर्णतया सुसज्जित हो जाने का अवसर मिल गया तो यह रोग असाध्य हो जायेगा।

धृतराष्ट्र—अच्छा! मन्त्रि परिषद् को बुलाओ। भीष्म, द्रोण आदि इस विषय में क्या कहते हैं?

× × ×

मन्त्रि मण्डल की बैठक प्रारम्भ हुई, महाराज ने सारी समस्या उनके सन्मुख रखकर सुयोधन और कर्ण का आशय समझा कर शेष मन्त्रियों की सम्मति पूछी। उसके उत्तर में भीष्म ने कहा:—

भीष्म—मेरी बुद्धि में अभी तक यह नहीं आया कि हम पाण्डवों से युद्ध किस बहाने को सन्मुख रखकर आरम्भ कर सकते हैं? निस्सन्देह प्रजा और अन्य जगत के लोग सुयोधन और युधिष्ठिर को भ्राता समझते हैं। इसमें सन्देह नहीं जतुग्रह के विषय में लोग यह कहते सुने गये हैं कि कुरु लोगों ने लाख का गृह बनवा कर पाण्डवों को जलाने का यत्न किया था जिसमें से वह किसी प्रकार जीवित बच निकले, परन्तु इसके लिये किसी के पास कोई प्रमाण नहीं। पांचाल राज्य के साथ भी हमें इस समय कोई शत्रुता नहीं। यज्ञसेन ने यदि अपनी कन्या का विवाह किया है तो यह कोई अनोखी बात नहीं, जिस कारण उसके साथ झगड़ा आरम्भ किया जाय। मेरे विचार में तो यदि इस समय पाण्डव लोगों के साथ मित्रता बढ़ाई जा सके, तो लोग जतुगृह की बात को भूल जायेंगे। अकारण उनके साथ युद्ध करके हम

जगत को यह दिखायेंगे कि हमारे भाव उनके सम्बन्ध में प्रथम से ही बिगड़े हुए थे। इस प्रकार लोकमत का अपने विरुद्ध करने के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं होगा। (सुयोधन को सम्बोधन करके) बेटा! जैसे तुम इस राज्य को अपने पिता पितामह की सम्पत्ति समझते हो उसी प्रकार पाण्डव भी इसे अपने पूर्व-पुरुषाओं से प्राप्त समझते हैं, यदि इसे वह नहीं पा सकते तो तुम्हारा या और किसी भरतवंशी का भी इस पर कोई अधिकार नहीं। तुम ने तो इसे उनके यहां से जाने के पश्चात् प्राप्त किया है, परन्तु वह पूर्व से इसके अधिकारी हैं। इस कारण उत्तम यह होगा कि इस राज्य के दो भाग करके आधा राज्य पाण्डवों को दे दो। इस से सारे झगड़े सदैव के लिये मिट जायेंगे।

द्रोण—राजन्! वह मन्त्रि मन्त्रि नहीं जो केवल इसलिये कि एक बलवान पुरुष ने अपनी सम्मति दे दी है अपने मत को बतलाने से झिझकता है, विशेषकर जबकि वह समझता है कि उसकी सम्मति ठीक और राज्य के लिए हितकारक है। इसलिये चाहे कोई अच्छा समझे या बुरा, मुझे तो यह कहना है कि मैं भीष्मजी के साथ सोलह आने सहमत हूँ। इस समय आवश्यकता इस बात की है कि किसी मीठी वाणीवाले मनुष्य को द्रुपद के पास भेजकर पाण्डवों को भेंट आदि देकर अपना बनाया जाये। कृष्णा भी आपकी वैसी ही बहू है जैसी कि महाराज सुयोधन की रानी। इस कारण आपको उसके साथ वही बर्त्ताव करना चाहिये जैसा कि आप महाराज सुयोधन की रानी से करते हैं, बल्कि अच्छा

होता यदि महाराज सुयोधन महाराज युधिष्ठिर की बरात में सम्मिलित होकर उसकी शोभा को बढ़ाते। निस्सन्देह कुरु लोगों के लिये यह लज्जा का स्थान है कि पांचों पाण्डव और कदाचित श्याम संकर्षण बरात में यज्ञसेन के यहां उसकी पुत्री को ब्याहने के लिये गये और पाण्डव लोगों का कोई निकट सम्बन्धी उसमें सम्मिलित न हुआ। महाराज यज्ञसेन मेरे सहपाठी हैं और मैं उन्हें भली प्रकार जानते हुए यह कह सकता हूँ कि यदि वह प्रथम अवसर गँवाकर यह द्वितीय अवसर भी उसी प्रकार गँवा दिया गया, तो वह अपने अपमान को आयु-पर्य्यन्त नहीं भूलेंगे। इस कारण मेरी समझ में तो यह आता है कि यहां से कृष्णा के लिये वस्त्राभूषण और पाण्डु-पुत्रों के लिये बहुमूल्य भेंट देकर किसी योग्य पुरुष को महाराज यज्ञसेन के पास भेजा जाय। जो अपनी ओर से उनसे क्षमा मांगकर पाण्डवों को यहां लिवा लाने के लिये आग्रह करे। जब वह यहां आ जायें तो उनका भली प्रकार शुभागमन करके उनका राज्य उनके सुपुर्द कर दिया जाये।

कर्ण—(बात काटकर) आप महाराज को यह सम्मति क्यों नहीं देते कि वह अपने पुत्रों को देश से निर्वासित कर दें! और स्वयं स्मरणी लेकर गङ्गा तट पर भजन में दिन बिताएं!! निस्सन्देह आप जैसे मन्त्रियों के होते हुए शत्रुओं की आवश्यकता नहीं है जो महाराज का अन्न खाकर उन्हीं के पुत्रों के विरुद्ध सम्मति दें!! (महाराज को सम्बोधन करके) मेरे विचार

में तो यह दर्शाने के लिये कि महाराज का हितचिन्तक कौन है और पाण्डवों का हितैषी कौन ? इतनी सी वार्त्तालाप ही पर्य्याप्त है । निश्चय यदि महाराज इस समय पर्य्यन्त राज्य करते रहे हैं तो इन मन्त्रियों के कारण नहीं बल्कि अपनी राज्यलक्ष्मी के सहारे ।

विदुर—मित्र, बन्धु, और सम्मति देने वाला यदि निर्भय होकर मित्र को सम्मति नहीं देता तो अपने कर्त्तव्य से पतित होता है । भीष्मजी ने इस समय जो कुछ कहा है उससे बढ़कर आप के हित की बात नहीं कही जा सकती, परन्तु शोक-स्थान है कि कुरु श्रेष्ठ होने पर भी उनकी नीयत पर सन्देह किया जाता है । आचार्य्यजी ने जो कथन किया है समस्या के प्रत्येक अङ्ग पर विचार करके किया है, परन्तु इसलिये कि उनका कथन सुयोधन और कर्ण को रुचिकर नहीं उन्हें महाराज का शत्रु कहा जाता है, इसे मैं कुरुवंश के अभाग्य के अतिरिक्त और क्या नाम दूं !! निस्सन्देह भीष्म और आचार्य्य जी से बढ़कर कौरव और पाण्डव दोनों का शुभचिन्तक और कोई नहीं हो सकता । वह अवस्था, बुद्धि और शास्त्रज्ञान में बड़े हैं । आपको, आपके पुत्रों को, और पाण्डु-पुत्रों को समान दृष्टि से देखते हैं । धर्म और सत्य में दशरथ-पुत्र राम से कम नहीं, उन्हें आप के विरुद्ध सम्मति देने में कोई लाभ नहीं, आपने उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचाई, फिर वह आप को बुरी सलाह क्यों देंगे ? महाराज ! सुयोधन की भान्ति युधिष्ठिर और अन्य पाण्डव भी आपके पुत्र हैं, जो मन्त्री

इस बात को विस्मरण करके आप को कोई सम्मति देते हैं वह मन्त्री कहाने के योग्य ही नहीं !! और यह तो अवश्य कहा जा सकता है कि वह आपके हित की सम्मति नहीं दे रहे। यदि सत्य ही आपके हृदय में अपने पुत्रों के लिये कुछ पक्षपात हो तो भी उसे सर्वसाधारण के सम्मुख रखने वाले आपके हितैषी नहीं कहे जा सकते !!!

जो पुरुष सव्यसाची अर्जुन को जानता है, जिसने वृकोदर भीम की गदा को चलते देखा है, जो धैर्यवान् सत्यस्वरूप धर्मात्मा युधिष्ठिर के पराक्रम से परिचित है, और जो नकुल और सहदेव की वीरता के साथ ही द्रुपद और धृष्टद्युम्न के शौर्य्य को समझता है, वह यह कहने का साहस नहीं कर सकता कि पाण्डव मुँह का कौर हैं कि श्याम संकर्षण और सात्यकि आदि की सहायता होते हुए भी उन्हें चुपके से निगला जा सकता है। इसलिये कोई नया क्लेश खड़ा करने के स्थान पर अच्छा होगा यदि पांडवों के साथ अच्छा व्यवहार करके उन्हें अपना बना लिया जाये। लोग इस समय तक स्पष्ट शब्दों में लाक्षागृह के विषय में प्रोचन को नहीं, सुयोधन को अपराधी बताते हैं। आप इस कलंक को इस समय मिटा सकते हैं, यदि संसार को यह बता दिया जाये कि आप पांडवों को अपने रक्त का रक्त समझते हैं। विचार करो यदि आज पाँडव पिछली बातों को भूल कर अपने हो जाएँ तो पाँचाल नरेश की सहायता के साथ आप की शक्ति कितनी महान् हो सकती है। कुन्ती के पुत्र जीवित

हैं, इस समाचार को सुनकर प्रजागण कितने प्रसन्न हो रहे हैं। आप उनसे युद्ध सहेड़ कर लोकमत को अपने विरुद्ध न कीजिये। इसमें अपना भला है। युद्ध प्रारम्भ कर लेना सुगम है, परन्तु उसका परिणाम क्या होगा? इसे कहने वाला इस समय तक उत्पन्न नहीं हुआ।"

मन्त्रिगण की वक्तृताएँ समाप्त हुईं तो अन्त में महाराज धृतराष्ट्र ने कहा—

धृतराष्ट्र—भीष्म विद्वान हैं, द्रोण प्रतिभाशाली हैं, विदुर हितचिन्तक हैं। उन्होंने जो कुछ कथन किया हम उससे सहमत हैं। पाँडव जैसे पाण्डु के पुत्र हैं वैसे ही हमारे, वह हमें अपने पुत्रों से न्यून नहीं। जैसे हमारे पुत्र राज्य के अधिकारी हैं वैसे ही वह भी हैं इसमें कोई सन्देह नहीं। इस कारण विदुर! तुम जाओ और विशेष सत्कार के साथ कुन्ती को, पाँडवों को और कृष्णा को यहां ले आओ। यह सौभाग्य है कि वह लोग जीवित जाग्रत हैं और हमें यज्ञसेन जैसे सम्बन्धी मिले हैं।

पाण्डवों की हस्तिनापुर को वापिसी

"युधिष्ठिर! यह क्या मामला है? महाराज धृतराष्ट्र के प्रेम का स्रोत अब तो बेतरह उबल रहा है। उन्होंने तुम्हारे लिये बहुमूल्य भेंट और कृष्णा के लिये बहुमूल्य आभूषण देकर विदुर को भेजा है और वह अपने स्वामी से अधिक बातें अपनी ओर से कह रहे हैं" महाराज युधिष्ठिर को सम्बोधन करके हँसते हुये राजा यज्ञसेन ने कहा।

युधिष्ठिर—भगवान सब कुछ जानते हैं।

यज्ञसेन—मुझे तो यह व्याघ्र का प्रेम दीख पड़ता है जो मार्ग चलते हुये ब्राह्मण को अमूल्य आभूषण दिखाकर अपने फंदे में फंसाने में सफल हुआ था। कहिये राजेन्द्र श्याम! आपकी इस विषय में क्या सम्मति है? विदुरजी यह सन्देश लेकर आये हैं कि पांडवों और कृष्णा को हस्तिनापुर भेज दिया जाये।

श्याम—तो उनके वहाँ गमन में हानि ही क्या है?

यज्ञसेन—जिसकी एक बार परीक्षा कर ली उस पर फिर विश्वास करना मूर्खता है।

श्याम—सत्य है, परन्तु नीतिकार को कई बार ऐसी बातें कहनी और करनी पड़ती हैं जिन्हें साधारण मनुष्य ही नहीं इतिहासवेत्ता भी मूर्खता का नाम देते हैं।

यज्ञसेन—तो आप की सम्मति क्या है?

श्याम—जहाँ तक सुयोधन की बात है उसके आन्तरिक भाव तो उसी दिन ज्ञात हो गये थे जिस दिन स्वयंवर में पांडवों की सफलता का समाचार पाते ही उसने यहाँ से कूच बोल दिया था। शेष रहे महाराज धृतराष्ट्र, सम्भव है उनके विचार कुछ और हों।

यज्ञसेन—मैं आपसे सहमत नहीं हूं। मेरे विचार में तो यह नीति की चाल है।

श्याम—मुझे इसके विरुद्ध कुछ नहीं कहना। सम्भव है ऐसा ही हो। परन्तु नीति शतरंज का खेल है, इसमें सावधानी से चाल चलने की आवश्यकता है।

यज्ञसेन—आप अपने विचार विस्तार से कहिये।

श्याम—ज्ञात हुआ है कि हस्तिनापुर की प्रजा पांडवों के जीवित होने का समाचार सुनकर हर्षित चित्त से उस दिन की प्रतीक्षा कर रही है जब वह उस नगर में पधारेंगे। लोग उन्हें अपना वास्तविक राजा समझते हैं इसलिये उनके आपके साथ सम्बन्ध के समाचार ने उन्हें अति प्रसन्न किया है। महाराज धृतराष्ट्र के राज्य-कर्मचारियों और उन्हें यह बात विस्मरण नहीं और इसी कारण यदि वह पाँडवों को निमन्त्रण भेज कर प्रजा के नेत्रों में धूलि भी झोंकना चाहते हों तो हमें अपनी ओर से इस संदेश को ठुकराना नहीं चाहिये। संदेह नहीं कि बारनावट में लाक्षा गृह बनवा कर सुयोधन ने पाँडवों को जलाने का यत्न

किया था, परन्तु वह पुरुष जो इस विषय में सत्य बात कहकर उसे प्रमाणित कर सकता था इस जगत में नहीं, क्योंकि प्रोचन स्वयं ही उस गृह में जल कर भस्म हो गया। इस कारण हमारे हाथों में कोई प्रमाण नहीं जो यह बता सके कि उस कुकर्म में किसका हाथ था? हमें निश्चय है कि प्रजागण इस बात को जानते हैं, परन्तु महाराज धृतराष्ट्र जी का इस समय इन्हें बुला भेजना यह भी तो प्रमाणित कर सकता है कि वह इस विषय में निरापराध हैं और पाँडवों को अपने पुत्रों के समान प्रेम करते हैं। इसलिये यदि इस समय इधर से हस्तिनापुर जाने से इन्कार किया गया तो यह लोकमत को अपने विरुद्ध करने का कारण होगा। इसके विपरीत पांडवों का वहां जाना प्रजा को यह बता देगा कि उनपर अत्याचार किये जाने पर भी वह महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों का उसी प्रकार आदर करते हैं जिस प्रकार पहिले करते थे और स्यात महाराज धृतराष्ट्र के मन्त्रिमंडल ने उन्हें शुभ सम्मति देकर सीधा मार्ग दर्शा दिया हो और इस प्रकार भावी रक्तपात को रोकने का कारण बने हों।

युधिष्ठिर—पिता जी! श्याम जी सत्य कहते हैं, हमें हस्तिनापुर जाने को मना नहीं करना चाहिये। सम्भव है इसमें भी कोई भलाई ही निकले।

यज्ञसेन—जब आप दोनों एक मत हैं तो मुझे इसके विरुद्ध कुछ नहीं कहना। परन्तु मेरी इच्छा है कि इस अवसर पर श्याम जी भी हस्तिनापुर का भ्रमण कर आयें। कदाचित् इनके जाने से

कोई भलाई का मार्ग निकल आये।

× × ×

पांडवों का पुनः हस्तिनापुर में आना ऐसा था जैसे किसी मनुष्य का स्वर्गलोक से इस मृत्युलोक में लौट आना। प्रजागण उन्हें लाक्षागृह का ग्रास विचार कर यह समझ बैठे थे कि वह अब जीवितों के लोक में नहीं रहे। इसलिये उनका फिर से लौटना सबके लिये अचम्भा था और आज तो उनकी सहायता में भारतवर्ष के नेत्रों का तारा, मातृभूमि का प्रिय सपूत श्याम उस भूमि को अपने चरणों से पवित्र करने के लिये आ रहा था, इसलिए लोगों की प्रसन्नता का पारावार न था। न केवल उच्च पदाधिकारी तथा राजधानी के प्रजागण ही, बल्कि जहां भी यह समाचार पहुंचा, लोग गाड़ियों, रथों, घोड़ों और अन्य प्राप्त सवारियों में राजधानी की ओर भागे। नगर में चारों ओर कन्धे से कन्धा भिड़ने लगा। ऐसा प्रतीत होता था कोई भारी त्योहार है जिसके उपलक्ष में उत्सव मनाया जा रहा है। महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से द्रोण, कृपा, विकर्ण, चित्रसेन और अन्य सेनापतियों और मन्त्रियों ने नगर से कई मील के अन्तर पर आगन्तुकों का स्वागत करके उन्हें राज्य-भवन में चलने का अनुरोध किया, परन्तु अति उत्तम प्रबन्ध के होते हुए भी जनता का अथाह सागर जलूस को कठिनता से मार्ग दे रहा था। मार्ग के चारों ओर "देश-भक्त श्याम की जय" "धर्मराज युधिष्ठिर की जय" "कुन्ती-पुत्र भीम की जय" "महारानी कृष्णा की जय" के नारे वायु में गूंज रहे

थे। श्याम और युधिष्ठिर दो रथों में प्रजा की भक्ति के उत्तर में कर जोड़े खड़े थे और उनके रथ पुष्प-वर्षा में इस प्रकार लद चुके थे कि कठिनतापूर्वक उनके मुख दिखाई दे रहे थे। लोगों के प्रेम का यह दृश्य धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भाइयों ने प्रथम बार देखा था और वह उससे प्रभावित होकर मन ही मन सर्व-शक्तिमान परमात्मा से, जो पतितों को उठाने वाले हैं, यह प्रार्थना कर रहे थे कि वह उन्हें शक्ति दे जिससे वह प्रजा के प्रेम का उत्तर उनकी भलाई के रूप में दे सकें।

राज्य-भवन के समीप पहुंच कर उन लोगों ने पहिले तो पितामह भीष्म जी को प्रणाम किया, फिर अन्य कुरु वृद्धों के चरणों में शीश झुका और उनसे आशीर्वाद ले कर विश्राम-गृह की ओर चले।

भोजन करने और कुछ समय विश्राम के पश्चात् महाराज धृतराष्ट्र के दरबार में उपस्थित होने का अवसर प्राप्त हुआ। आज्ञाकारी भतीजों ने बारी बारी ताऊ जी को सन्मुख देखकर उनके चरणों में शिर रख दिये और उन्होंने अति प्रेम से उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया। उस समय ईर्षा, द्वेष, वैर-विरोध बोरी-बिस्तर बांध कर विदा हो गये। दोनों ओर प्रेम का साम्राज्य फैल गया और महाराज धृतराष्ट्र के अन्ध नेत्र अश्रु-वर्षा करने लगे। कठिनतापूर्वक अपने को संभाल कर उन्होंने रुँधी वाणी में कहा।

धृतराष्ट्र—बेटा युधिष्ठिर! पुत्र वृकोदर! अर्जुन, नकुल और

सहदेव ! मुझे भाइयों-भाइयों को परस्पर झगड़ते देखकर जो दुख होता है उसे वर्णन करने की शक्ति नहीं। जिस समय मैं तुम्हें और सुयोधन को एक दूसरे के सहायक होने के स्थान पर एक दूसरे के विपरीत देखता हूँ तो हृदय में विचार आता है कि परमात्मा हमें यह राज्य न ही देते तो अच्छा था। (कुछ देर रुक कर) इस कारण मैं इस सदैव के झगड़े को मिटाना चाहता हूँ .....

युधिष्ठिर कुछ बोलने लगे परन्तु महाराज धृतराष्ट्र ने हाथ के संकेत से रोकते हुये कहा "बेटा ! मैं तुम्हारे हृदय को जानता हूँ, परन्तु नहीं चाहता कि तुम कोई महान् त्याग करके अपने और अपने भ्राताओं के भविष्य को दुखमय बनाओ। मेरी इस समय यही इच्छा है कि इस राज्य के दो भाग कर दिये जायें जिनमें से एक भाग पर सुयोधन और उसके भाई राज्य करें, दूसरा भाग तुम सम्भालो।"

"साधु" "साधु" के शब्द भीष्म, श्याम और अन्य सुनने वालों के मुख से निकले जिनके शान्त होने पर महाराज धृतराष्ट्र ने अपनी वक्तृता को जारी रखते हुये कहा—'हस्तिनापुर प्राचीन नगर है, सुयोधन इस समय यहाँ राज्य कर रहे हैं, प्रजा भी उन्हें अपना राजा समझती है, इस लिये यह देश उनके पास रहे। खांडव वन का सारा प्रदेश खुला पड़ा है मैं उसे तुम्हें देता हूं। यह न विचार करना कि मैंने अपने पुत्रों के साथ अधिक प्रेम प्रदर्शित किया है। नहीं नहीं मैं वृकोदर के बल को जानता हूं, अर्जुन की शक्ति से परिचित हूँ, नकुल और सहदेव की बुद्धिमत्ता को भूला

नहीं, तुम लोग जहाँ भी जाओगे लक्ष्मी तुम्हारे पांवों को चूमेगी। राजेन्द्र श्याम तुम्हारी पृष्ठ पर हैं, महाराज यज्ञसेन अपने पुत्रों से अधिक तुम्हें प्रेम करते हैं, मेरा आशीर्वाद प्रति समय तुम्हारे सहित होगा, जाओ उस निर्जन देश को बसाओ। यमुना उसके समीप बह रही है, धन-धान्य की वहाँ त्रुटि नहीं रहेगी। वहाँ जाकर अपने भ्राताओं को जिन्हें यहाँ छोड़े जा रहे हो विस्मरण न कर देना, उन्हें जब भी आवश्यकता होगी प्रत्येक सेवा के लिये उद्यत पाओगे।"

खांडव वन की सफाई

जहां तक दृष्टि जाती घने वन, ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, जिनके ऊपर से सूई गिराओ तो भूमि तक न पहुंचने दें, सिंह, चीते, व्याघ्र, पाढे, हस्ति तथा अन्य वन्य-जीवों का गृह, चोर, तस्कर और डाकुओं का निवासस्थान, सर्पों और अन्य अनेक विषैले जीवों का घर, यह कुछ शब्द हैं जो उस खांडव वन की प्रशंसा में कहे जा सकते हैं जो महाराज धृतराष्ट्र की विशेष कृपा से पांडवों को दिया गया। महाराज युधिष्ठिर ने उसे देखा, भीम, अर्जुन और नकुल सहदेव ने उसका निरीक्षण किया, तो प्राण मुँह को आते हुये दीख पड़े। उस वन का राज्य उन्हें सौंपा गया था, उस वन को अपने बाहुबल से उन्होंने सुन्दर राज्य में परिवर्तित करना था, इस विचार ने उन्हें चकरा दिया।

रथ उसमें नहीं घुस सकते थे, घोड़े भी कुछ दूर जा कर विवश हो गये, क्योंकि कई स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता था कि मनुष्य का पद अभी तक पहुँचा ही नहीं। हरी-हरी बेलें चहुँ-ओर के नाके रोक रही थीं।

पैदल भीतर जाने का प्रयत्न किया गया परन्तु सरसराते हुये फणयुक्त सर्प और भयानक अजगर टांगों में से निकले जा रहे थे। एक दो स्थानों पर सरसराते हुये बाण वृक्षों के पत्तों में से

निकलते हुये प्रतीत हुए, पर चारों ओर घूमने पर भी उन्हें चलाने वाले का कोई चिन्ह नहीं मिला। इस समस्या पर विचार करने के लिये युद्ध-समिति की बैठक हुई, जिसे सम्बोधन करके भीम ने कहा—

भीम—अन्धे ने हमें विचित्र इन्द्रजाल में फंसा दिया है, जिस में न आगे जाने का मार्ग है न पीछे हटने का।

अर्जुन—सरल ही तो है. आप वृक्ष उठा-उठा कर योद्धाओं से युद्ध किया करते हैं, इस वन में आप को दिल की भड़ास निकालने का खूब अवसर मिलेगा।

भीम—(हँस कर) आयु भर वृक्ष ही उखाड़ा करेंगे। देखा अन्धे की अन्ध नीति का फल !

नकुल—अन्ध नीति क्या ? अन्धे ने तो नेत्र वालों के भी कान काट दिये। अपने पुत्रों के लिये बसे बसाये नगर और ग्राम और हमारे लिए यह[1] !!

सहदेव—बिचारे अन्धे को क्या ज्ञात वन क्या होते हैं ? और नगर किसे कहते हैं ? उसने उन्हें देखा थोड़े ही है !

युधिष्ठिर—जो कुछ भी हो पीछे तो हटना नहीं। इस वन को मुस्कराते हुये नगर में बदलना है इसी वन में गगन चुम्बी अट्टालिकाएँ बनानी हैं और इसी वन में राजधानी की नींव डालनी है।

---

1. जाम भर कर ग़ैर को देना हमें खाली गिलास।
   तेरी मदहोशी के सदके जाऊं मतवाले मिरे।

भीम—तो इसका उपाय केवल श्यामजी ही बता सकते हैं।

श्याम—उपाय सुगम भी है और कठिन भी।

अर्जुन—क्या ?

श्याम—यदि आप अन्ध महाराज धृतराष्ट्र को इसी भांति कोसते रहे तो इस वन पर विजय असम्भव है। उन्होंने आप को आधा राज्य दे दिया, अब उसे बनाना अथवा बिगाड़ना आप का काम है।

भीम—तो फिर उपाय बताइये।

श्याम—उपाय एक है। अग्नि देव चिरकाल से भूखे हैं, खांडव वन को उनके अर्पण करके उनकी क्षुधा निवारण कीजिये। इस वन पर इन्द्रदेव की सदैव कृपा रहती है इस कारण अग्नि देवता को जो सदैव किसी न किसी वन को अपना ग्रास बनाया करते हैं इसे अपना ग्रास बनाने का अवसर अभी तक नहीं मिला। यदि हम लोग उनकी सहायता करेंगे तो वह अवश्य इसे हमारे लिये साफ कर देंगे।

अर्जुन—(कुछ सोच कर) बात तो ठीक है, हम लोग अपने सहायकों को साथ लेकर इस वन के चारों ओर फैल जायें और अग्नि के प्रज्वलित होने के पश्चात् जो भी हिंसक जीव, चोर, डाकू, तस्कर आदि यहां से भागने का यत्न करें उन्हें मार कर अग्नि देवता की भेंट कर दें। इस प्रकार से न केवल वन के मार्ग खुल जायेंगे प्रत्युत् चोर, तस्कर, पिशाच आदि से भी इसकी सफाई हो जायेगी।

उपाय लाभदायक और सुगम था। इसलिये उसका पालन प्रारम्भ हो गया और अल्पकाल में ही खाँडव वन को दग्ध करने वाली असीम अग्नि का धूम्र वायु में उड़ने लगा। वन-वासियों ने प्रथम तो उसे बुझाने का प्रयास किया परन्तु सर्प और अन्य विषैले जीव अग्नि के ताप से व्याकुल होकर इतनी बड़ी संख्या में चारों ओर भागे कि अग्नि तक पहुंचने का यत्न असम्भव हो गया, इसलिये प्रत्येक ने जिधर सींग समाये उधर भागने में ही कुशल समझी, परंतु बाहर निकलते ही पांडव शूरवीरों से दो दो हाथ करने पड़े जिनसे बच कर निकल जाना सुगम नहीं था। इसलिये अग्नि देवता से जो बचा यदि उन वीरों ने उसे स्वयं नहीं छोड़ दिया तो उनके शस्त्रों की भेंट हो गया।

इस भगदड़ और हुल्लड़ में श्याम जी की दृष्टि एक ओर गई तो एक परदेशी भागा जा रहा था। इस विचार से कि वह कोई डाकू होगा उन्होंने धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई तो भागने वाला प्राण-रक्षा के लिये दूसरी ओर मुड़ा, परन्तु उधर अर्जुन धनुष हाथ में लिये खड़े थे, उनका रूप यमराज से भी अधिक भयानक दिखाई दिया।

"त्राहि माम्! त्राहि माम्!" कहता हुआ विदेशी दोनों कर जोड़े अर्जुन के चरणों में गिर पड़ा जिसने उसे इस असहाय अवस्था में देखकर प्राण भिक्षा देते हुए कहा "तुम कौन हो? और इस वन में कैसे आये?"

विदेशी—मैं असुर वंश का इंजिनीयर हूँ मेरा नाम मय है।

इस वन में काष्ठ और अन्य सामग्री का निरीक्षण कर रहा था, आपने जीवन-दान देकर मुझे मृतकों से जीवितों में स्थान दिया, अब इस शरीर को आप अपना दास समझें और जो उचित समझें आज्ञा दें।

पन्द्रह दिवस तक अग्नि देवता ने खांडव वन को अपना खाद्य बनाया। तत्पश्चात् चारों ओर जिधर दृष्टि डाली सुलगते हुए कोयलों के ढेर के अतिरिक्त कुछ न था। वह वन जहाँ सिंहों की दहाड़ और हाथियों की चिंघाड़ कर्ण-कुहरों को फाड़ती थी अब सुनसान दृष्टिगोचर होता था, वह स्थान जहाँ सर्प, छिपकली, और अन्य जीव सरसराते दीख पड़ते थे, अब खाली मैदान था जिसमें सुगमता पूर्वक विचरण किया जा सकता था। दावानल बुझने के पश्चात् असुर इंजिनियर ने फिर अर्जुन की सेवा में प्रार्थना की—

मय—आप ने मुझे मृतक से जीवित किया है। क्या आप मुझे कोई आज्ञा नहीं दे सकते जिसे मैं पूर्ण करूँ?

अर्जुन—मैंने जो कुछ किया लाभ की इच्छा से प्रेरित होकर नहीं किया।

मय—परन्तु मैं कोई न कोई सेवा अवश्य करना चाहता हूं।

अर्जुन—यदि तुम्हारा यही आग्रह है तो श्याम जी की सेवा में जाओ, जो आज्ञा वह दें उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करो।

आज्ञा-पालन में मय श्याम जी की सेवा में उपस्थित हुआ, जिन्होंने उसकी प्रार्थना पर विचार करते हुये कहा—

श्याम—मय! तुम असुरों के विश्व कर्मा हो, यदि तुम अपनी

विद्या के चमत्कार दिखाना चाहते हो तो महाराज युधिष्ठिर के लिये निवास-स्थान और सभाभवन का वह नक्शा तैयार करो जिसे भारत के लोगों ने आज पर्य्यन्त न देखा हो। हम तुम्हें महाराज की राजधानी के निर्माण का कार्य सौंपते हैं।

मय दानव—मैं इससे प्रथम अपने महाराज वृषपरवा का सभा भवन बना चुका हूं, उसके लिये मैंने कैलाश पर्वत के उत्तर में मेनाक पर्वत के निकट बिन्दुसरोवर के समीप बहुत सी सामग्री एकत्र की थी, यदि आज्ञा हो तो जाऊँ और उसे लेता आऊँ। उस बिन्दुसरोवर में एक बड़ी भारी गदा भी पड़ी है जिस से वृष-परवा ने अपने शत्रु का संहार कर के उसे वहीं गाड़ दिया था। वह गदा इतनी भारी है कि कदाचित ही कोई दूसरा उसे उठा सके। मेरे विचार में वृकोदर भीम ही उसे चलाने के योग्य हैं। इस के अतिरिक्त उस सरोवर में एक दृढ़ शंख भी है उसे मैं महाराज अर्जुन के लिये लाऊंगा।

श्याम—जैसे तुम्हारी इच्छा! परन्तु हम चाहते हैं कि प्रथम इसके कि सामग्री जुटाओ हमें नक़शा तैयार करके दिखा दो।

मय—वह कुछ ही दिनों में तैयार हो जायेगा।

× × ×

मय ने पांडव-सभा-भवन का निर्माण कार्य आरम्भ कर दिया। महाराज युधिष्ठिर अपने नव-प्राप्त राज्य के प्रबन्ध में लीन हो गये। अब श्याम जी के खांडवप्रस्थ में ठहरने की आवश्य-कता न थी, इसलिए उन्होंने द्वारका लौटने का विचार किया

जहाँ से अनुपस्थित हुये उन्हें कई मास व्यतीत हो गये थे। विदा के समय का दृश्य दर्शनीय था, क्योंकि महाराज युधिष्ठिर धीरे-धीरे रथ हांक रहे थे, भीम और अर्जुन रथ के दोनों ओर खड़े चंवर हिला रहे थे, नकुल और सहदेव घुड़वानों के स्थान पर खड़े थे, इन्द्रप्रस्थ की प्रजा अपने अतिथि को विदा देने के लिये झुण्ड के झुण्ड बांध कर नगर के बाहर आ गई थी, मीलों तक जन समूह के सिवा और कुछ दृष्टिगोचर न होता था। नगर के आस-पास स्थित पहाड़ियों से उतर कर श्याम जी ने ज्येष्ठ भ्राता के चरण स्पर्श किये, और उन्होंने उठा कर उन्हें हृदय से लगा लिया। महाराज युधिष्ठिर का कोमल मन उस समय हिल चुका था और उनके नेत्रों से अश्रु-धारा बह रही थी। जब श्याम ने वृकोदर भीम के चरण छूए तो वह दानव मूर्ति जो रण भूमि में लाखों शत्रुओं को सन्मुख देख कर नहीं पसीजते थे विदा की घड़ी को सन्मुख देख कर बालकों की भांति नेत्रों में जल भर कर अवरुद्ध कंठ से उन्हें विदा करने को थे कि अर्जुन नकुल और सहदेव ने आगे बढ़कर श्याम का चरण चुम्बन किया। भ्राताओं को हृदय से लगाते हुये श्याम जी ने कहा "मन तो आप को छोड़ कर जाने को नहीं चाहता परन्तु समय कठिन है, इतने काल से द्वारावती से अनुपस्थित हूं, वहाँ के समाचार प्राप्त हुये भी चिरकाल हो गया" यह कह कर रथारूढ़ हुये, दारुक ने घोड़ों की बागें उठाई और वह कुछ क्षणों में ही वायु से बातें करने लगे। पांचों पांडव और उनके मंत्री और पुरोहित मूर्तिवत खड़े थे, और जब तक श्याम जी के रथ का कलश दृष्टि से ओझल न हो गया उसी स्थान पर खड़े रहे। तत्पश्चात् दुःखी हृदय के साथ राजधानी को लौटे।

अर्जुन का भारत भ्रमण

भारतवर्ष का राजनैतिक आकाश अंधकारमय था और कोई नीतिज्ञ कह नहीं सकता था कि भविष्य अपने भीतर क्या कुछ छिपाए बैठा है। पूर्व में जरासन्ध अपनी शक्ति को सुदृढ़ बनाने की धुन में श्याम से टक्कर खाने के उपरान्त भी दूर और निकटस्थ राजाओं को अपने साथ मिलाने में हर समय तत्पर था। पश्चिम में सुयोधन और कर्ण अवसर की गम्भीरता को समझते हुये यद्यपि शान्त थे परन्तु पाण्डवों का राज्य (यद्यपि वह बन का ही क्यों न था) उनकी दृष्टि में कंटक के समान खटकता था क्योंकि उन्हें भूला नहीं था कि पांचाल राज्य से सम्बन्ध और श्याम से मित्रता ने उनकी भुजाओं में वह बल उत्पन्न कर दिया है जो सम्भव है कभी कष्ट का कारण बने। इसलिये वह राजनीति के शतरंज की प्रत्येक चाल को समझ कर समान चालें चल रहे थे। महाराज युधिष्ठिर को यद्यपि महाराज यज्ञसेन के साथ सम्बन्ध से पर्याप्त सहायता मिली थी, परन्तु उसी के बल पर वह भावी संघर्ष में सफलतापूर्वक भाग नहीं ले सकते थे, और यद्यपि श्याम जी के व्यक्तिगत प्रेम और संकर्षण जी के सद्‌व्यवहार से उन्हें बहुत आशा थी परन्तु जाति के तौर पर यादव लोगों के साथ सम्बन्ध इतने घनिष्ठ नहीं हुये थे कि समय पड़ने पर

सहायता की प्रार्थना की जा सके। इसलिये खाण्डव वन को विजय करने और खाण्डवप्रस्थ की राजधानी इन्द्रप्रस्थ की नींव डालने के पश्चात् उन के ध्यान का केन्द्र भारत की राजनैतिक अवस्था थी, जिसे स्वयं अपने नेत्रों से देखने के लिये अर्जुन ने कुछ सहायकों और सेवकों के साथ भारत भ्रमण की ठानी और उत्तरीय भारत का भ्रमण करते हुये, हरिद्वार, ऋषिकेश इत्यादि तीर्थों की यात्रा से निश्चिन्त हो, और वहां के निवासी नाग लोगों से व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित करते हुये नैमशारण्य, गया इत्यादि पवित्र स्थानों को देखते और महानदि, गोदावरी, कौशकी, नन्दा, अमरनन्दा इत्यादि को पार करते ऋषि-महर्षियों के आश्रम अवलोकन करते और उन की पवित्र वाणी को श्रवण करते हुये अंग, वंग, कलिंग देशों में से होते हुये समुद्र के किनारे किनारे मुड़ कर मेनपुरी पहुंचे और वहां के राजा महाराज चित्रवाहन से परिचय प्राप्त किया। उन महाराज के एक ही कन्या थी जो अपने अद्वितीय सौंदर्य के लिये दूर दूर तक विख्यात थी। महाराज उस के लिये किसी योग्य वर की खोज में थे। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि पाण्डुपुत्र अर्जुन उन के राज्य में पधारे हैं तो उन्हों ने उस के साथ लिखा-पढ़ी आरम्भ की, परन्तु इस सम्बन्ध में एक बाधा मेनपुरी के सामाजिक व्यवहार थे जिन के अनुसार कन्या श्वशुर-गृह के स्थान पर पितृगृह में ही निवास करती थी और ज्येष्ठ कन्या का ज्येष्ठ बालक राज्यसिंहासन का अधिकारी होता था।

इस समस्या का हल यह सोचा गया कि अर्जुन ने विवाह के

पश्चात् उस समय तक मीनपुरी में निवास स्वीकार कर लिया जब तक कि राज्य का उत्तराधिकारी उत्पन्न न हो। तदनुसार चित्रांगदा का विवाह अर्जुन से हो गया और अल्पकाल में ही परमात्मा ने महाराज चित्रवाहन की मनोकामना पूर्ण कर दी। एक वर्ष के भीतर ही राजकुमारी की गोद में एक नन्हा-सा राजकुमार खेलने लग गया जिसे बभ्रुवाहन का नाम दिया गया।

प्रतिज्ञा पूर्ति के पश्चात् अर्जुन मीनपुरी से विदा हुये और सागर तीर के देशों, वनों, स्थलों, को देखते हुये प्रभास तीर्थ पर पहुंचे जो द्वारका से अधिक अन्तर पर नहीं था। श्याम जी को इस की सूचना प्रथम ही मिल चुकी थी और वह स्वागत के लिये उस स्थान पर उपस्थित थे। दीर्घ काल के पश्चात् दोनों मित्र पुनः मिले और अर्जुन को यादवों का आतिथ्य स्वीकार करके द्वारका आना पड़ा। द्वारवती ने अपने राजकीय अतिथि के स्वागत में अपने समस्त द्वार खोल दिये। भोज, वृष्णि, अन्धक और यादव उसके स्वागत में एकत्र हो गये। द्वारका-निवासी नर-नारियां सहस्त्रों की संख्या में उनकी बाट जाह रहे थे जबकि श्याम पांडु-पुत्र को नगर-भ्रमण करवाते हुये राज्य भवनों में ले गये।

× × × ×

द्रौपदी स्वयंवर में भारत भर के वीरों को नीचा दिखाने वाला वीर द्वारवती का अतिथि था और यादव लोग उसके आतिथ्य में बढ़-चढ़ कर भाग ले रहे थे। अर्जुन श्याम का मित्र था और श्याम यादवों के हृदय-सम्राट थे इसलिये उसके द्वारका पधारने के

उपलक्ष में एक महोत्सव मनाया गया। श्याम जो बाल्यकाल में गोवर्धन की गोदी में खेले थे द्वारवती में आकर पर्वतों के प्रेम को कैसे भूल सकते थे? यहाँ गोवर्धन का स्थान रैवतक ने ले लिया था, जिसे आज के महोत्सव के लिये खूब सजाया गया। उसमें स्थान-स्थान पर कहीं संगीत का प्रबन्ध था, कहीं नृत्य का, कहीं क्षत्रिय-कुमार अपने भुजबल के चमत्कार दिखाते थे, तो कहीं यादव-कुमारियां यौवन के मद में मत्त क्रीड़ाओं में लीन थीं। एक ओर वारुणी के नशे में मस्त होकर संकर्षण झूमते हुए सैर कर रहे थे, तो दूसरी ओर महाराज उग्रसेन अपने मन्त्रियों सहित आनन्द-मग्न थे। कहीं श्याम जी के सुपुत्र प्रद्युम्न कुमार, जो अपनी सुन्दरता के लिए द्वितीय कामदेव माने गये थे जाते हुए दिखाई देते थे, तो कहीं संकर्षण नन्दन अपने शौर्य्य से देवताओं को मात कर रहे थे। सारांश सौंदर्य, यौवन, वीरता और धीरता का सागर था जो ज्वार में आया हुआ था। जबकि श्याम अपने प्रिय अतिथि का कर पकड़े, चारों ओर का दृश्य देखते और गप्प-शप्प करते हुए उसे उधर ले गये जिधर राजकुमारियां खेल में मग्न थीं। वहाँ का दृश्य देखकर अर्जुन खड़े के खड़े रह गये, मानो पृथ्वी ने पांव पकड़ लिये हों। क्योंकि सौंदर्य प्रत्येक ओर अपनी चिनगारियां फेंक रहा था। श्याम जी ने यह अवस्था देखी तो हँस कर बोले—

श्याम—क्या वनवासी कामदेव के बाण का लक्ष्य हो गया?

अर्जुन—(एक ओर संकेत करके) भ्राता! इस प्रकार का

नैसर्गिक सौंदर्य्य इस से प्रथम मुझे दृष्टिगोचार नहीं हुआ।

श्याम—(उच्च स्वर से) सुभद्रा !

सुभद्रा ने मुड़ कर देखा तो भ्राता नाम ले कर पुकार रहे थे। उत्तर में आगे बढ़ी और प्रणाम करके सखियों के झुण्ड में लुप्त हो गई। अर्जुन की दृष्टि के सन्मुख दामिनी दमक गई और वह व्याकुलता से श्याम की ओर मुड़ा।

श्याम—(मुस्करा कर) यह मेरी भगिनी सुभद्रा है।

दोनों मित्र आगे बढ़े, परन्तु अर्जुन के लिये उत्सव फीका हो गया। उस की दृष्टि रह रह कर किसी न किसी बहाने उधर देख रही थी जिधर सुभद्रा लोप हुई थी, परन्तु वह वहां कहां थी ?

उत्सव कई दिन पर्य्यन्त रहा जिस में संगीत और नृत्य के विशेषज्ञों ने भाग लिया, नट और नटियों ने अपने कौशल दिखाए, सुन्दरता और प्रेम ने भी अपना रंग जमाया. नाना प्रकार के भोजनों के प्रीति भोजन हुये, सहस्रों ब्राह्मणों को दान दिया गया, परन्तु अर्जुन का मन उन में से किसी में भी नहीं था और वह प्रयत्नपूर्वक अपने मनोभावों को छिपा रहा था। परन्तु श्याम की दृष्टि उस के भावों को इस प्रकार पढ़ रही थी जिस प्रकार एक खुली पुस्तक को। उत्सव की समाप्ति पर उन्होंने उससे कहा—

श्याम—अर्जुन ! सत्य बताओ तो एक बात पूछूं ?

इस प्रश्न को सुन कर अर्जुन का माथा ठनका, मुंह का रंग उड़ गया, परन्तु धैर्य पूर्वक बोला "क्यों नहीं"।

श्याम—क्या तुम सुभद्रा से विवाह करना स्वीकार करोगे ?

यह प्रश्न आशा के विरुद्ध था और इस के उत्तर के लिये अर्जुन

तैय्यार नहीं था।

श्याम—(कुछ देर ठहर कर) यदि तुम्हें संकोच न हो तो मैं पिता जी की सेवा में प्रस्ताव कर सकता हूं।

अर्जुन—(श्याम के वचन से साहस पाकर) श्याम! एक तो वह वसुदेव जी की पुत्री, दूसरे आप की भगिनी, फिर असाधारण सुन्दरी, कौन है जो उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर सके? निस्सन्देह उसकी प्राप्ति संसार के समस्त सुखों की प्राप्ति है।

श्याम—तो पहिले भ्राता युधिष्ठिर की सम्मति ले लेने दो।

× × × ×

"स्वामिन! यदि आज्ञा दो, तो एक बात सेवा में निवेदन करना चाहती हूं" श्याम जी को सम्बोधन करके रुक्मिणी ने कहा। उत्तर में श्याम जी ने प्रेम दृष्टि से देखते हुये मुस्करा कर कहा:—

श्याम—कौन सी बात है जिसे कहने में रुक्मिणी जी को संकोच है?

रुक्मिणी—बात ऐसी ही है।

श्याम—कह डालो।

रुक्मिणी (कुछ रुक कर) क्या कोई उपाय है जिस से सुभद्रा का विवाह आपके मित्र से हो सके?

श्याम—क्यों? बात क्या है?

रुक्मिणी—पुरुष स्त्री के हृदय को कठिनता से ही समझ पाते हैं।

श्याम (मुस्कराते हुये) क्या सत्य?

रुक्मिणी—(दृष्टि नीची करके) आप के सन्मुख तो बात कहनी कठिन है।

श्याम—मैं नहीं समझा। क्या सुभद्रा अर्जुन से प्रेम करती है?

रुक्मिणी—अनुमान यही है।

श्याम—अनुमान पर्य्याप्त नहीं, बात सन्देह से ऊपर होनी चाहिये, फिर कोई उपाय सोचा जा सकता है।

रुक्मिणी—आप विश्वास करें, मेरा अनुमान गल्त नहीं।

श्याम—परन्तु क्या तुम्हें ज्ञात है अर्जुन मीनपुरी में विवाह करके एक पुत्र के पिता बन चुके हैं?।

रुक्मिणी—यह हम सब श्रवण कर चुके हैं, परन्तु वह विवाह अर्जुन का नहीं चित्रांङ्गदा का कहा जा सकता है। महाराज चित्रवाहन अपनी पुत्री से अपने राज्य का अधिकारी चाहते थे, और वह उन्हें मिल गया और दूसरे............

श्याम—दूसरे क्या?

रुक्मिणी—(नेत्र नीचे करके) वह प्रेम विवाह नहीं था।

श्याम—(हंसकर) और यहां पर कौन कह सकता है कि ऐसा है?

रुक्मिणी—अपनी ननद की ओर से साक्षी तो मैं दे सकती हूं अपने मित्र की ओर से आप जानें।

श्याम—(हंसते हुये) तो तुम अपने विवाह की बात दोहराना चाहती हो। अच्छा मैं अपनी ओर से यत्न करूंगा सफलता ईश्वराधीन है।

रुक्मिणी—जहां प्राण-पति होंगे वहां सफलता अवश्य होगी।

श्याम—(मुस्कराते हुये) प्रिये! पर क्या मैं एक बात तुम से पूछ सकता हूं?

रुक्मिणी—आज्ञा कीजिये।

श्याम—रुक्मिणी! जब भी मैं तुम्हें देखता हूं मेरे मन में यह विचार उठता है कि तुमने मेरे जैसे अयोग्य पुरुष को क्यों पति चुनलिया जब शिशुपाल जैसे महापराक्रमी धनवान राजे अपना सर्वस्व तुम पर न्योछावर करने को उद्यत थे? तुम्हारे पिता और भ्राता भी तुम्हें उन्हें देने का निश्चय कर चुके थे। मेरे पास न धन, न कोष, मैं स्वयं निर्धन और निर्धनों का मित्र! धनवान मेरा मुख देखने से दुखी! बड़े बड़ों से मैं शत्रुता मोल ले चुका हूं और वह मुझे नष्ट करने को हर समय उद्यत हैं! मैंने जरासन्ध जैसों से हर कर समुद्र की सहायता ली है। आचार व्यवहार मेरा ऐसा है कि स्त्रियां उसे समझ नहीं सकतीं, वह तो उन्ही से प्रसन्न रह सकती हैं जो उनके अनुकूल चलने वाले हों। वैसे भी मित्रता उन्हीं में हो सकती है जिनकी जाति, कुल, ऐश्वर्य, स्वरूप, सुन्दरता और धन आदि एक से हों। उत्तम और अधम में मित्रता और विवाह दुःख का ही कारण हुआ करता है। इस लिये मेरे विचार में अब भी यदि तुम किसी अपने जैसे योग्य, गुणवान पुरुष को स्वीकार कर लो तो अच्छा ही हो, क्यों कि मेरे जैसा अयोग्य गुणहीन पुरुष जिसे न स्त्री से प्रेम न सन्तान से स्नेह, जो अपने स्वरूप में ही मस्त रहता है, इस योग्य नहीं कि तुम अपना प्रेम उस पर गंवा कर सदा भिखारिन बनी रहो। यहां न राज्य है न धन।"

वार्त्तालाप में श्याम का मुख अधिक से अधिकतर गम्भीर हुआ

जा रहा था और साथ ही रुक्मिणी के हृदय की दशा बदलती जा रही थी, क्यों कि उसकी समझ में नहीं आता था कि इस असमय की रागनी का क्या अर्थ है?

कुछ काल पर्य्यन्त वह चुपचाप पति के मुख की ओर निहारती रही और फिर धड़ाम से गिर पड़ी। बाल बिखर गये, मुख विवर्ण हो गया। श्याम व्याकुलता से उठे और उसे धीरे से गोदी में ले कर समीपवर्ती पलंग पर लिटा दिया और उसके बाल संवार कर पंखा करने लगे। कुछ क्षणों के पश्चात् रुक्मिणी ने नेत्र खोले तो श्याम ने कहा :—

श्याम—वीर पत्नि क्या इतनी शीघ्र घबरा जाया करती हैं?

रुक्मणी—(धीरे से) स्वामिन्! आप क्या कह रहे थे? क्या आप रुक्मिणी को धन, ऐश्वर्य्य, और प्राकृतिक वस्तुओं की भूखी समझते हैं? क्या उसने आप को इस कारण अपना सर्वस्व अर्पण किया था कि आप उसके शरीर के लिये उत्तम उत्तम भोजन और वस्त्र जुटा सकेंगे? नहीं नहीं, मुझे विश्वास नहीं आता, निस्सन्देह आप मेरी परीक्षा ले रहे हैं। स्वामिन्! कोई दूसरा आप को समझे या न समझे, रुक्मणी आपकी अर्धांगिनी होते हुये इस बात से अनभिज्ञ नहीं, कि आप शरीर नहीं आत्मा हैं। बलवान इन्द्रियां आप पर आक्रमण करके परास्त हो चुकी हैं और आप आत्मा रूपी सागर में विचर रहे हैं। प्रकृति के उपासक आपके शत्रु हों तो क्या? आप दरिद्र नारायण हैं। धन सम्पत्ति से रहित पुरुष आपकी कृपा के पात्र हैं,

क्योंकि वह प्रकृति के जादू से दूर हैं। निस्सन्देह मेरे जैसी अधम स्त्री आपके योग्य नहीं थी, परन्तु आप ने उसे पृथ्वी की धूलि से उठाकर अपने मस्तिष्क पर धारण किया। इस से रुक्मिणी आज गर्व से अपना सिर ऊंचा करने के योग्य हो गई है। क्या आप उसे अयोग्य समझ कर त्यागने की सोच रहे हैं?

श्याम—(हंसकर) रुक्मिणी! आज तो तुमने बड़े-बड़े विद्वानों और योगियों को परास्त कर देने की ठान ली है। मैंने जो कुछ कहा था, इसलिये तो नहीं कि तुम मुझ पर एक व्याख्यान झाड़ दो। हां तुम्हारा क्रोधित मुख देखे चिरकाल हो गया था, इस कारण रुद्र स्वरूप के दर्शन की इच्छा से इस वार्त्तालाप का आरम्भ किया था।

रुक्मिणी—(श्याम की गोदी में सिर रखते हुए) मैं और विद्वत्ता? असम्भव! हाँ योगिराज के चरणों की धूलि हूँ, इस कारण यदि कोई बात मुख से निकल गई हो तो क्षमा चाहती हूँ।

श्याम—"क्षमा! तुम क्षमा की प्रार्थी हो? निस्सन्देह यह तुम्हें मिलेगी।"

यह कह कर श्याम ने देवी रुक्मिणी को उठा कर हृदय से लगा लिया........ ......और क्षमा पर मुहर लग गई।

अर्जुन और सुभद्रा

द्वारवती में भूचाल सा आगया। वृष्णि और अन्धक शूरवीर जहां और जिस अवस्था में बैठे-खड़े अथवा लेटे थे उठ खड़े हुए। क्योंकि सुधर्मा सभा के सभापाल का सुनहरी नक्कारा बड़े ज़ोर से बज रहा था। यह इस बात का चिन्ह था कि देश पर कोई भारी आपत्ति आई है।

सब के एकत्र होने पर सभापाल ने सब को सम्बोधन करके कहा—"मित्रो! आज प्रातः राजकुमारी सुभद्रा रैवतक पर्वत पर गई और वहां से देव पूजा के पश्चात लौट रही थी। मार्ग में हमारा अतिथि अर्जुन उसे बलात् पकड़ कर अपने रथ पर बिठा कर इन्द्रप्रस्थ को भाग गया। यह समाचार वह सैनिक जो राजकुमारी के साथ थे ले कर आये हैं। इसे सुन कर उचित उपाय विचारना आप का कर्त्तव्य है।"

जातीय अपमान का यह समाचार सुनते ही यादव लोगों के क्रोध का पारा एकाएक ऊपर को उछला और उनमें से एक चिल्ला उठा—"युद्ध की घोषणा कर दो।"

दूसरा—अस्त्र शस्त्र तैयार करो, सोचने का कोई समय नहीं।

तीसरा—रथ जुतवा दो और उस कृतघ्न की मुशकें कस कर अन्धकूप में उलटा लटका दो।

चारों ओर कोलाहल मच गया। इसी बीच में संकर्षण जी

की दृष्टि श्याम पर पड़ी जो शांति पूर्वक अपने स्थान पर बैठे सारा कौतुक देख रहे थे।

संकर्षण—अरे! श्याम तो मौन साधे बैठे हैं और तुम रथों में घोड़े जुतवा रहे हो, पहिले इनकी सम्मति तो ले लो, यह क्या कहते हैं?

सब—संकर्षण ठीक कह रहे हैं। श्याम जी को तो अपने विचार प्रगट करने का समय ही नहीं मिला।

संकर्षण (श्याम को सम्बोधन करके) श्याम! अर्जुन तुम्हारा मित्र है, तुम्हारे ही कारण हम लोगों ने उसका इतना आदर सत्कार किया, परन्तु वह इस योग्य नहीं था। कोई कृतघ्न से कृतघ्न भी ऐसा न होगा कि जिस बर्तन में खाये उसी में छिद्र करे! उस दुष्ट ने यह भी कर दिखाया। उसने तो आज हमारे अगले पिछले सर्व उपकारों पर राख डाल दी। निस्सन्देह उसने आज सुभद्रा पर हाथ नहीं डाला अपनी मृत्यु को आवाहन किया है। यह सम्भव नहीं कि वह हमारे सिर पर इस प्रकार पादप्रहार करके प्राण लेकर चला जाये। कम से कम मैं तो इसे सहन नहीं कर सकता। सर्प को जो मनुष्य लात मार कर चाहता है कि वह उसे न डसे, भूल में है। निस्सन्देह आज सायंकाल से प्रथम यादव शूरवीर पृथ्वी को कुरुओं से रहित कर देंगे।" (सब के सब यादव बड़े ज़ोर से) "श्याम संकर्षण की जय"! "महाराज उग्रसेन की जय!"

संकर्षण जी के पश्चात कई और वीरों ने अपनी तेजस्वी वक्तृताओं से सभाजनों के हृदय में क्रोध की अग्नि प्रज्ज्वलित कर

दी। सब के अन्त में शांत मूर्ति श्याम उठकर बोले:—

श्याम—मुझे इतने कोलाहल और हलचल के रहस्य का पता नहीं मिला। मेरे विचार में तो अर्जुन ने हमारे वंश का अपमान नहीं किया बल्कि उसका मान बढ़ाया है। क्योंकि वह हम लोगों को धन का लोभी नहीं समझता। स्वयंवर का मार्ग उसने इसलिए नहीं अपनाया कि उसमें सुभद्रा की प्राप्ति में सन्देह था। गाय की भांति कन्या-दान मांगना भी शूरवीर क्षत्रियों को शोभा नहीं देता, न ही कन्या को मूल्य लेना अच्छा है। उसने इन सब बातों में दोष देख कर अपने लिये उचित मार्ग निर्धारित कर लिया है। वह सुभद्रा के योग्य है। वह भरत और शान्तनु के कुल में उत्पन्न हुआ है। आज कौन है जो उस कुल के साथ सम्बन्ध करने में हिच-किचाये ? विशेष कर जबकि आज उसके समान शूरवीर भारतवर्ष में अन्य कोई नहीं। इस समय हमारे ही रथ और घोड़े उस की सवारी में हैं, वह स्वयं युद्ध में अति प्रवीण है, फिर यदि वह हम सबों को परास्त करके अपनी राजधानी में पहुंच जाये तो संसार हमें क्या कहेगा ? निस्सन्देह युद्ध में विजय का ठेका केवल हमारे पास नहीं। इस कारण मेरा तो यह मत है कि हमें स्वयं प्रसन्नचित्त से अर्जुन को ढाढस दे कर लौटा लाना और अपने हाथ से सुभद्रा को उसे सौंपना चाहिये। आखिर कन्या को घर में तो हमने बैठा ही नहीं रखना, और अर्जुन से अधिक वीर इस समय भारत भूमि में मुझे दृष्टिगोचर नहीं होता।

श्याम की इस वक्तृता ने सभा का रंग बदल दिया और वह जो अभी क्रोध से रक्त वर्ण हो रहे थे शान्त हो कर समस्या के प्रत्येक अंग पर दृष्टि डालने लगे। अन्त में श्याम की योजना सब को रुचिकर हुई, और महाराज की आज्ञा से एक शानदार डेपुटेशन भेजकर अर्जुन को लौटा लिया गया।

× × × ×

विवाह कार्य समाप्त हुआ, लाल रेशमी वस्त्रों में सुसज्जित वधु ने इन्द्रप्रस्थ के राज्य भवनों में पहुंच कर राजमाता कुन्ती के चरणों पर शिर रख दिया। उन्होंने उसे उठा कर हृदय से लगा लिया और सिर और मुख का चुम्बन करके आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् वह महारानी कृष्णा के सम्मुख उपस्थित हुई, उसे प्रणाम करके सुभद्रा ने कहा "मुझे अपनी दासी समझिये।" कृष्णा ने उसे कण्ठ से लगा लिया और आशीर्वाद दे कर कहा "तुम्हारे पति शत्रु शून्य हों" उस समय जेठानी और देवरानी को देखकर यही प्रतीत होता था कि सूर्य और चन्द्र की जोड़ी एकत्र हो गई है जो अपने सौंदर्य्य से सर्व जगत को मुग्ध करके उस पर शासन करेगी।

अर्जुन के इन्द्रप्रस्थ पहुंचने पर रीति के अनुसार श्याम, संकर्षण, अक्रूर, सात्यकि, ऊद्धव, कृतवर्मा इत्यादि वृष्णि योद्धा खाण्डवप्रस्थ में पधारे। महाराज युधिष्ठिर ने सब का यथायोग्य सत्कार किया, और श्याम और संकर्षण ने भगिनी का दहेज उनकी सेवा में उपस्थित किया। महाभारत के लेखक के शब्दों में उन्होंने रथवानों सहित चार घोड़ों वाले एक सहस्र सुनहरी रथ, मथुरा देश

की अति दुग्ध देने वाली दस सहस्र गायें, स्वर्ण से ढकी हुई चांदी की भान्ति श्वेत एक सहस्र घोड़ियां, ५०० श्वेत और ५०० काले खच्चर, एक सहस्र दासियां, बाह्लीक देश के सैकड़ों घोड़े, नाना प्रकार के बहुमूल्य वस्त्रों घंटों और सोने की जंजीरों से सुसज्जित सुनहरी हौदों वाले एक सहस्र हस्ति और असंख्य सुवर्ण इत्यादि इत्यादि और वस्तुएं भेंट की, जिन्हें महाराज युधिष्ठिर ने धन्यवाद पूर्वक स्वीकार किया। परन्तु दहेज की वस्तुओं से भी अधिक मूल्यवान वह मित्रता थी जिस के मूल इस सम्बन्ध से सुदृढ़ हो कर पाताल में पहुंच गए और जिसने पाण्डव और यादव लोगों को सदैव के लिये परस्पर दुख-सुख का साथी बना दिया।

जरासन्ध का अन्तिम युद्ध

"भ्राता! कई दिवस से एक विचार क्लेश दे रहा है, उस पर सम्मति लेने के लिये आप को कष्ट दिया है। इस समय मुझे आप से अधिक स्थिर बुद्धि कोई मनुष्य दृष्टि गोचर नहीं होता।" राजेन्द्र श्याम को सम्बोधन करके महाराज युधिष्ठिर ने कहा।

श्याम—आज्ञा कीजिये।

युधिष्ठिर—जगत में ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो किसी शक्तिशाली मनुष्य की हां में हां मिलाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं, यद्यपि आवश्यकता इस बात की है कि किसी भी विषय के समस्त अंगों को दृष्टि के सन्मुख रखकर उस बात पर विचार किया जाये। निस्सन्देह अधिकार-शील पुरुष की सम्मति के विरुद्ध कथन करना कठिन है, इसी कारण ऐसा कहने वालों की संसार में न्यूनता है।

श्याम—सत्य का प्रकट करना असम्भव नहीं परन्तु कठिन अवश्य है।

युधिष्ठिर—जिस बात पर मैं आप के विचार श्रवण करना चाहता हूं यह है कि इस समय आप की कृपा से प्रजा सुखी है, राज्य यथाशक्ति प्रत्येक व्यक्ति को सुखी रखने का यत्न कर रहा है, देश में चहों-ओर शान्ति है, इस कारण बहुत से मित्र आग्रह कर रहे हैं कि राजसूय यज्ञ किया जाय। मैंने इस

समय तक जितने विचार सुने हैं उन सब में मुझे प्रसन्न करने का विचार झलकता दीख पड़ता है। इस कारण चाहता हूं कि आप अपनी सम्मति का प्रकाश करें। केवल एक आप ही हैं जो सारी बातों पर विचार करके निष्पक्ष सम्मति दे सकते हैं।

श्याम—(कुछ काल पर्य्यन्त मौन रह कर) धर्मराज! जहां तक आप के व्यक्तिगत गुण हैं आप निस्सन्देह राजसूय ही क्या अन्य प्रत्येक यज्ञ करने के अधिकारी हैं। आप प्रजा के दुख सुख को अपना दुख सुख समझते हैं, प्रजा आप को पितावत् जानती है, धर्म आपके जीवन का आश्रय है, इस कारण आप इस योग्य हैं कि विश्व आप को अपना सम्राट् बना कर अपने मस्तिष्क पर बैठाये; परन्तु राजसूय यज्ञ के लिये व्यक्तिगत गुण ही पर्य्याप्त नहीं, उसे पूर्ण करने के लिए दिग्विजय की आवश्यकता है। भारत की सामूहिक अवस्था को जानते हुए आप को यह सोचना है कि आप यह कार्य निर्विघ्नता से पूर्ण कर सकते हैं अथवा नहीं?

युधिष्ठिर—यही तो मैं सुनना चाहता हूँ, निस्सन्देह आप इसे भली प्रकार समझते हैं।

श्याम—इस समय से कुछ काल पूर्व समस्त क्षत्रियकुल अपने पूर्वजों के राज्य में चैन से दिन बिता रहे थे। परन्तु वर्तमान समय में मगध नरेश जरासन्ध ने अपने बाहुबल से सब राजाओं को वश में कर लिया है। जो कोई सब का प्रभु और सारे भारत का राजा हो वही राजसूय यज्ञ करने का

अधिकारी है। जरासन्ध स्वयं इस पद को प्राप्त करना चाहता है इसलिए उसे जीते विना आपका मनोरथ सफल नहीं हो सकता।

युधिष्ठिर—क्या उसे जीतना अति कठिन है?

श्याम—धर्मराज! पराक्रमी शिशुपाल जरासन्ध का सेनापति है, करुष देश का राजा वक्र जरासन्ध की शिष्य की भांति उपासना करता है, वक्रदन्त, करभ और मेघवाहन भी उसके सहायक हैं, नरक देश के शासक यवन भी उसके अनुकूल हैं, आप पर इतनी कृपादृष्टि रखने वाले आपके मामा पुरुजित भी जरासन्ध की पृष्ठ पर हैं। वंग, पुण्डर, किरात देशों के स्वामी पुंडरक भी उसके आधीन हैं, एक चौथाई भारत के स्वामी पांडय, क्रथ कैशिक देशों के स्वामी महाराज भीष्मक भी जरासन्ध के भगत हैं। हम उनके सम्बन्धी हैं, सदैव उनके लिए शुभ कामना करते हैं, नम्रतापूर्वक उनके अनुयायी रहते हैं, फिर भी वह हमारे नहीं बने जरासन्ध के प्रताप को सुनकर अपनी कुल परम्परा से चली आरही शूरता, वीरता, गम्भीरता को भूलकर वह उसी के शरणागत हुए हैं। उसके जामाता कंसराज के मारे जाने और उसके आक्रमण करने पर हम लोग उसके भय के मारे मथुरा को धन-धान्य से भरपूर छोड़ कर सागर तीर पर जा बसे हैं। क्योंकि हम लोगों ने देखा कि यदि हम तीन सौ वर्ष पर्य्यन्त भी उसकी सेना का वध करते रहेंगे तो उसे नहीं जीत सकेंगे। अब हमने सागर का आश्रय लेकर, रेवतक पर्वत को एक ओर

रख कर, कुशस्थाली टापू को दुर्ग आदि से ऐसा सुदृढ़ कर लिया है कि यदि स्त्रियां भी उनमें बैठकर भली प्रकार से युद्ध करें तो आत्मरक्षा कर सकती हैं। इस से आप विचार कर सकते हैं कि आप जरासन्ध को युद्ध में परास्त कर सकते हैं वा नहीं ?

युधिष्ठिर—ऐसी दशा में मेरे विचार में हमें राजसूय का विचार त्याग देना चाहिए। हम लोग आपके आश्रय पर ही यह महान कार्य हाथ में लेना चाहते हैं, परन्तु आप ने जो चित्र खींचा है वह अति भयानक दीख पड़ता है। निस्सन्देह सम्राटपद को प्राप्त करना अति कठिन है।

वृकोदर भीम—जो राजा उद्योग को त्याग देता है, या दुर्बल और निरुपाय हो कर प्रबल शत्रु से युद्ध करने लगता है वह अवश्य नष्ट होता है। इसके विपरीत जो बलहीन होने पर भी आलस्य को त्याग कर चतुर नीति से शत्रु पर आक्रमण करता है, वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है।

श्याम—वृकोदर यथार्थ कथन कर रहे हैं। मैं आप से यह नहीं कहता कि आप राजसूय का विचार त्याग दें। इसके विपरीत मेरी तो यह सम्मति है कि आप को समस्त विषय दृष्टि के सम्मुख रख कर कार्य करना चाहिए। शूरवीर जरासन्ध ने इस समय तक ८६ राजाओं के देश छीन कर उन्हें बन्दीगृह में डाल रखा है और १४ की गणना पूरी करके वह पूरे सौ राजाओं का बलिदान करना चाहता है कि भगवान शंकर को प्रसन्न कर सके। आपके बुलाने से पूर्व उन देशों के कई देशभक्त मेरे समीप आ

कर अपना दुख सुना चुके हैं। यदि हम किसी प्रकार जरासन्ध के अत्याचार का अन्त कर सकें, तो निस्सन्देह यह स्वयं ही एक भारी यज्ञ होगा। उफ! इतने मनुष्य ही नहीं क्षत्रिय कुल भूषण राजाओं का वध! यह विचार ही व्याकुल कर रहा है।

अर्जुन—श्रेष्ठ शस्त्र, राज्य, यश, बल और शूरवीरता बड़ी कठिनता से मिलते हैं। हमें यह सब इस समय प्राप्त हैं। इनके होते हुये भी यदि हम दुरात्मा जरासन्ध का वध करके, बन्दी राजाओं को मुक्त करके, राजसूय यज्ञ नहीं करेंगे तो अन्य किस समय में ऐसा कर पायेंगे? निस्सन्देह हमारा कर्त्तव्य है कि इस कार्य्य को हाथ में ले कर कीर्ति प्राप्त करें। यदि शक्तिशाली हो कर भी हम इतने राजाओं को मुक्त नहीं करा सकते तो हमारा जीवन ही व्यर्थ है।

श्याम—अर्जुन के वचन भरत वंश में उत्पन्न होने वाले शूरवीर के योग्य ही हैं। कुन्ती जैसी माता की कोख से जन्म लेने वाले का ऐसा ही साहस होना चाहिये। कौन जाने किस समय मृत्यु आकर दबाले। इस कारण जो भी शुभ कार्य्य हो जाये वही अच्छा।

युधिष्ठिर—तो फिर निश्चय क्या है?

श्याम—भीम बलवान हैं, मैं नीति का कुछ कुछ ज्ञान रखता हूं, यदि हम दोनों की अर्जुन जैसा शूरवीर सहायता करे तो बहुत कुछ हो सकता है।

युधिष्ठिर—आप का तात्पर्य्य?

श्याम—मेरे विचार में सेना सहित युद्ध करने में हम जरासन्ध को परास्त नहीं कर सकेंगे। इस लिये मैं, भीम और अर्जुन तीनों मगध देश में जायें, और वहां समय देख कर जरासन्ध को द्वन्द युद्ध के लिये ललकारें। उस की प्रकृति को जानते हुये मैं कह सकता हूं कि वह मना नहीं करेगा, तत्पश्चात जो ईश्वर इच्छा !

युधिष्ठिर—श्याम जी ! साम्राज्य की इच्छा मुझे इतनी प्रबल नहीं कि मैं केवल साहस पर भरोसा करके अपने स्वार्थ के लिये आप तीनों को शत्रु के ग्रह में भेजूं। भीम और अर्जुन दोनों मेरे नेत्र हैं और आप मेरा मन हैं। मैं मन को खोकर और नेत्र-हीन हो कर कैसे जीवन व्यतीत कर सकता हूं ?

श्याम—परन्तु इस में स्वार्थ कहाँ ? निस्सन्देह ८६ राजाओं को बन्दीग्रह से मुक्त कराना स्वार्थ का कार्य्य नहीं (आवेश से) यदि आप मेरे हृदय को जानते हैं और मुझ पर विश्वास कर सकते हैं तो इन दोनों शूरवीरों को (अर्जुन और भीम की ओर संकेत करके) मुझे सौंप दीजिये।

यह प्रभाव पूर्ण वचन सुन कर महाराज युधिष्ठिर का हृदय आर्द्र होगया और वह रुद्धकंठ से बोलेः—

युधिष्ठिर—पुरुषोत्तम श्याम ! आप ने यह क्या कह दिया ? हम तो आप को अपने सहायक ही नहीं, स्वामी समझते हैं और आप के ही आश्रय पर समस्त विश्व को ललकारने का साहस कर रहे हैं। आप को विमुख करके हम सौभाग्य और लक्ष्मी को विमुख कर लेंगे। आप स्वयं को भय में डाल रहे हैं अपने लिये

और मेरे लिये नहीं, वरञ्च उन बन्दी राजाओं के लिये जिनकी मूर्तियां आप की दृष्टि के सन्मुख घूम रही हैं। क्षमा कीजिये मैंने स्वार्थ का नाम ले कर अपराध किया है निस्सन्देह भीम और अर्जुन ही नहीं सारा भारत भी इस शुभकार्य में बलिदान हो जाये तो मुझे संकोच न होगा।

श्याम—मैं आप का कृतज्ञ हूं, परन्तु इस समय का वार्त्तालाप गुप्त रहना चाहिये। हम लोग ऐसी रीति से मगध देश में पहुंचना चाहते हैं कि कार्य में सफलता से प्रथम किसी को विदित न हो।

× × ×

गरुड़ जी का वायुयान भारत के चुने हुए उन तीनों शूरवीरों को लिये हुये इन्द्रप्रस्थ के अड्डे से उड़ा और कुरु जङ्गल को लांघ कर, पद्म सरोवर, कालकूट पर्वत को पार कर गण्डकी, महाशोण, सदानीरा, एक पर्वत की नदियों सरजू, कोशला, भाला, और चर्मण्वती से आगे बढ़ कर गंगा और शोण से आगे चल कर पूर्व की ओर बढ़ा। अब वह मगध के निकट पहुंच कर गोरथ पर्वत पर मन्डरा रहा था। यहां पहुंच कर श्याम ने अपने साथियों से कहा:—

श्याम—वह देखो! सन्मुख मगध की राजधानी दृष्टिगोचर हो रही है। इस के चारों ओर विहार, वृषभ, वाराह, ऋषि और चैत्यक नाम की पांच पहाड़ियां हैं, जिन के कारण इस पर आक्रमण असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस की नींव डालने वाला अपने कार्य में बहुत चतुर था।

वह देखो सामने गौतम ऋषि का आश्रम है जिस के समीप लोधर, और अश्वथ के वृक्ष अपनी छवि दिखा रहे हैं। उस स्थान पर नागों के निवास-स्थान हैं, जो इस की सदैव रक्षा करते हैं। वर्षा यहां बारह मास रहती है। जरासन्ध ऐसी शक्ति-शाली राजधानी पाकर अपने को अजेय समझ रहा है, परन्तु आज यदि भगवान की इच्छा हुई तो उसे ज्ञात हो जायेगा कि यह पांच पहाड़ियां, यह नागों के दुर्ग, और इतनी भयंकर सेना रखते हुये भी वह अमर नहीं हो सकता।

वायुयान पर्वत के समीप एक विस्तृत मैदान देख कर नीचे उतरा और तीनों शूरवीरों ने पर्वत की एक गुफा में कुछ काल विश्राम कर के अपने वस्त्र बदले। अब जिस समय वह उस में से बाहर निकले तो उन्हें पहचानना कठिन था, क्योंकि क्षत्रिय शूरवीरों के स्थान पर अब तीन स्नातक नगर के उस चैत्य की ओर जा रहे थे जहां पर राज्य के सर्वसाधारण तथा शासक पूजा के लिये जाया करते थे। इस चैत्य में एक ओर तीन बड़े बड़े नगारे रक्खे थे जिन पर चोट पड़ने से गूंज बड़ी दूर तक पहुंचती थी। मन्दिर के पुजारी ने जिस समय उन्हें यह कथा बतायी तो श्याम ने डंके को उठा कर जोर से नगारे पर दे मारा, जिस से एक उच्च घोष मन्दिर से निकल कर वायुमण्डल में फैल गया। पुजारी के लिये यह एक आकस्मिक घटना थी और उस ने नगारे का शब्द सुन कर दांतों तले जिह्वा ले ली। फिर कुछ काल पश्चात क्रोध में भर कर बोला।

पुजारी—क्या तुम्हें ज्ञात नहीं यह नगारे केवल उस आवश्यकता

के समय बजाये जाते हैं जब किसी गम्भीर घटना की सूचना देनी होती है ?

श्याम—(हंसते हुये) तो चलो हमारा यहां इस मन्दिर को देखने आना ही एक असाधारण घटना समझी जायेगी।

पुजारी बेचारा आश्चर्य्यचकित था कि नगारे के घोष के उत्तर में आने वाले राज्य कर्मचारियों को क्या उत्तर देगा ? परन्तु पूर्व इसके कि वह कुछ और बोले, श्याम ने कहा :—

श्याम—यदि राज्यकर्मचारी कुछ कहें तो उन्हें हमारा परिचय दे देना। हम स्वयं महाराज की सेवा में भिक्षा के लिये उपस्थित हो रहे हैं। उनकी दान वीरता की कथाए श्रवण करके बड़ी दूर से आये हैं।

यह कह चैत्य के निकट से ही एक क्षण में प्राचीर फांद कर तीनों वीर नगर के भीतर प्रविष्ट हो कर राज्यभवनों की ओर चल पड़े।

× × × ×

महाराज जरासन्ध ने स्नातकों को अर्घ, आसन, मधुपर्क इत्यादि पूजा की सामग्री दे कर बैठने को कहा, परन्तु तीनों के प्रतिनिधि श्याम ने कहा :—

श्याम—राजन् ! हम पूजा स्वीकार करने नहीं आये, किसी प्रयोजन से महाराज के समीप उपस्थित हुये हैं !

जरासन्ध—आज्ञा ?

श्याम—हम भिक्षा मांगने आये हैं, यदि दे सकते हो तो कहें।

जरासन्ध—जरासन्ध शक्ति भर भिक्षुक को अपने द्वार से लौटाता नहीं।

श्याम—जो कुछ तुम्हारी शक्ति में है उस से अधिक नहीं मांगा जायेगा।

जरासन्ध—कहो क्या इच्छा है?

श्याम—प्रथम प्रतिज्ञा करो कि हमें निराश नहीं करोगे।

जरासन्ध—यथाशक्ति तुम्हारी इच्छा पूर्ण की जायेगी।

श्याम—सुनो! हम द्वन्द्व युद्ध की भिक्षा मांगते हैं, कहो पूर्ण करोगे अथवा जगत में घोषणा कर दें कि जरासन्ध ललकार से भाग गया?

जरासन्ध—जरासन्ध ने अभी ललकार से भागना नहीं सीखा और न ही वह इस समय तुम्हें निराश करेगा, परन्तु तुम लोग सत्य कहो कि कौन हो? यह तो मैं पूर्व ही समझ चुका हूं कि तुम स्नातक नहीं क्योंकि यह पुष्पमाला, यह चन्दन का लेप और धनुष की डोरी से रगड़ खाई हुई भुजाएं ब्राह्मणों की नहीं।

श्याम—राजन्! भूल करते हो, स्नातक होना ब्राह्मणों का ठेका नहीं है। प्रत्येक वर्ण का मनुष्य यह व्रत धारण कर सकता है। न ही धनुष बाण को धारण करना केवल क्षत्रियों का कार्य है। परशुराम, द्रोण, कृपा और अश्वत्थामा भी इसमें निपुण हो सकते हैं। रहे पुष्प सो यह लक्ष्मी की प्राप्ति के चिन्ह हैं।

जरासन्ध—परन्तु आप लोग चैत्य में डंका बजा कर आये हैं, प्राचीर फांद कर नगर में प्रविष्ट हुये हैं, और आप ने पूजा की

सामग्री को स्वीकार नहीं किया ?

श्याम—इस का कारण स्पष्ट है। शत्रु के नगर में सीधे मार्ग से नहीं जाया करते, न ही उसकी पूजा को स्वीकार किया जाता है। डंका बजा कर हम ने तुम्हें सावधान कर दिया है जिस से कि धोखे में न रहो।

जरासन्ध—(कुछ सोच कर) परन्तु मैंने तुम लोगों से कोई शत्रुता नहीं की। जहां तक स्मरण होता है तुम आज प्रथम बार मेरे सन्मुख आये हो।

श्याम—राजन्! एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं, चार नहीं, पूरे ८६ क्षत्रिय कुल भूषण राजाओं को तुम ने बन्दीगृह में डाल रक्खा है और फिर कहते हो तुमने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा। अरे! जो पुरुष अत्याचार करता है, और जो अत्याचारी को अत्याचार करने का अवसर देता है, दोनों पापी हैं। यह वेद वाक्य है, श्रुति का प्रमाण है, और हम इस पाप के भागी नहीं बनना चाहते।

जरासन्ध (हँस कर) अच्छा! तो आप उन राजाओं के प्रतिनिधि बनना चाहते हैं। अरे! क्या हमने उन्हें युद्ध में परास्त नहीं किया? क्या हमने उन्हें धोखे से जाल में फंसाया है।

श्याम—परन्तु तुम उन राजाओं को शंकर को संतुष्ट करने के लिए बलि देना चाहते हो। मनुष्य का मांस भक्षण करके भगवान महादेव, देवों के देव, प्रसन्न होंगे, यह तुम अपने मन में समझ

रहे हो। परन्तु इस आर्यावर्त में यह राक्षस कर्म करने से पूर्व तुम्हें अपनी शूरवीरता के जौहर दिखा कर हमें परास्त करना होगा।

जरासन्ध—पर तुम हो कौन? तनिक मैं भी तो सुनूं मुझे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारने वाले शूरवीर किस नाम से विख्यात हैं?

श्याम—दीनों के बन्धु, दुखियों के दुःख निवारण की प्रतिज्ञा किये हुए यह दोनों पाण्डु-पुत्र अर्जुन और वृकोदर हैं, और मुझे यदि तुमने अभी तक नहीं पहचाना तो अपना पुरातन मित्र या शत्रु श्याम मुरारी समझो। हम तुम्हें द्वन्द युद्ध के लिये ललकारते और कहते हैं कि वन्दी राजाओं को मुक्त कर दो अथवा यमलोक में पहुंचने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

जरासन्ध—अच्छा! इतनी वार युद्ध भूमि से भागने के पश्चात् आज तुम मुझे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारने आये हो! परन्तु जरासन्ध गीदड़ भभकिओं से नहीं डरता, वह तुम्हारे साथ युद्ध करना अपमान समझता है (अर्जुन की ओर संकेत करके) यह हल्का फुल्का नवयुवक भी मेरे तुल्य नहीं, हां यदि (भीम की ओर देख कर) यह शूरवीर मुझे द्वन्द्व युद्ध के लिये ललकारता है तो कोई हानि नहीं दिखाई देती। कहो नवयुवक! क्या कहते हो? (हँस कर) शूरवीर से परास्त होना भी बुरा नहीं।

भीम—(प्रसन्न होकर) यहां तो आये ही इसी लिये हैं। राजन्! क्षत्रिय का बल उसकी जिह्वा में नहीं उसकी भुजाओं में है। इस

लिये इसी क्षण युद्ध के लिए कटिबद्ध हो जाओ, अब विलम्ब दुःख-दायक हो रहा है।

मन्त्रियों ने मना किया, युवराज ने रोका, परन्तु महाराज जरासन्ध युद्ध के लिए ललकार सुनकर पीछे हटना नहीं सीखे थे। इसलिए आयु में अस्सी वर्ष से कम न होते हुए भी युद्ध के लिये मैदान में आगये और शत्रु को सम्बोधन करके बोले—

जरासन्ध—भीम ! कहो किस शस्त्र से युद्ध करोगे ? मेरे विचार में तुम गदा-युद्ध में अत्यन्त प्रवीण हो। आओ गदा-युद्ध के ही चार हाथ कर लें।

शस्त्रालय के अध्यक्ष ने नाना प्रकार की गदा सन्मुख रख दीं, दोनों वीरों ने एक एक गदा को उठा लिया और युद्ध प्रारम्भ हो गया। युद्ध नहीं लोहकारों की अहरन गर्म हो गई। एक ने गदा मारी तो दूसरे ने पैंतरा बदल कर वार खाली दे दिया, फिर एक ने पहलू बदल कर आक्रमण किया तो दूसरे ने ढाल पर रोक लिया। दर्शक देखते थे और देख कर प्रशंसा कर रहे थे। महाभारतकार कहते हैं कि यह युद्ध कार्त्तिक की एकम को प्रारम्भ हुआ और लगातार रात्रि दिवस चतुर्दशी तक होता रहा। वीरों की मार से गदाएँ कुंठित हो गईं, धनुष टूट गये, खड्ग निकम्मे हो गये, तो मल्लयुद्ध का आरम्भ हुआ। उस समय दोनों ने मल्लयुद्ध के सारे कौतुक समाप्त कर दिये। कभी एक दूसरे को दूर तक ठेल कर ले जाता तो कभी दूसरा फिर उसे पीछे ढकेल देता। एक कटि पकड़ कर दूसरे को आगे रख लेता, तो दूसरा आगे से निकल कर सामने

हो जाता। कभी एक दूसरे की भुजाएं पकड़ कर पीछे मरोड़ता तो, दूसरा ग्रीवा नीचे दबा उसे भूमि पर गिराने का यत्न करता। महाभारत के लेखक कहते हैं कि पृष्ट भंग, सम्पूर्ण मूर्छा, पूर्ण कुम्भ, तरुण भग, मुष्टिक इत्यादि-इत्यादि भारतीय मल्लयुद्ध के सब दांवपेंच इस अनुपम युद्ध में बर्ते गये। चौदहवें दिवस राज्य-मल्ल में कुछ थकावट के चिन्ह देख कर श्याम ने भीम से कहा।

श्याम—भीम! थके हुये शत्रु को रण में अधिक पीड़ा नहीं देनी चाहिये।

भीम (जोर से नारा मार कर) कौन कहता है कि यह थक गया है? यह अभी उसी प्रकार खम ठोके हुये है।"

यह कह कर और झपट कर जरासन्ध को उठा कर चक्कर देते हुये उसने पृथ्वी पर दे पटका।

महाराज जरासन्ध भूमि पर गिरे तो भीम ने घुटना मार कर उनकी पीठ की हड्डी तोड़ दी और जोर से गरजते हुये टांग पकड़ कर बीच में से चीर डाला!

यह दृश्य इतना भयानक था और भीम का मुख उस समय इतना भयोत्पादक था कि जब उसने रक्त से लत-पत हुये, राज-कुमार सहदेव की ओर बढ़ कर कहा "कहो! राजाओं को मुक्त करते हो अथवा तुम भी पिता के साथ ही यम लोक में पहुंचना चाहते हो?" तो राजकुमार का चलता रक्त बंद हो गया और उसने विजयी के चरणों में गिरते हुये प्राणभिक्षा मांगी।

८६ राजा चिरकाल के पश्चात् बन्दीगृह से बाहर निकले।

उनकी मुक्ति ऐसी आकस्मिक थी कि उन्हें यह विश्वास ही नहीं होता था कि वास्तव में वह स्वतन्त्र हैं। परन्तु जिस समय उन्हें यह रहस्य ज्ञात हुआ तो समस्त नरेशगण बोल उठे "हमें आप लोगों ने पुनर्जीवन दिया है इसके लिये आप हमें कोई भी सेवा कहें तो हम प्रस्तुत हैं।"

श्याम—हम महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से यहां आये थे, वह राजसूय यज्ञ करना चाहते हैं, यदि सम्भव हो तो उस कार्य में सहायता कीजिये।

राजागण—हमें जो सेवा दी जायेगी सहर्ष पूर्ण करेंगे।

राजसूय यज्ञ

महाराज युधिष्ठिर की मनोकामना पूर्ण हुई, ८६ राजा तो वैसे ही उनके आधीन हो चुके थे, उनके अतिरिक्त जरासन्ध के आधीन अन्य राजाओं ने अल्पकाल में ही उनके शासन को स्वीकार कर लिया। शेष जो थे उन्हें विजय करने के लिये अर्जुन ने सेना ले कर उत्तर की ओर प्रस्थान किया और पंजाब, अफगानिस्तान, बाल्हीक इत्यादि देशों से आगे बढ़कर यूरोप की सीमा पर भारतीय झंडा गाड़ दिया। भीम ने दिग्विजय करते हुये पूर्व की ओर कूच किया। सहदेव ने दक्षिण दिशा सम्भाली और नकुल ने पश्चिम को विजय करने की ठानी। अल्पकाल में ही राजा युधिष्ठिर की विजय पताका भारत तो एक ओर एशिया के एक सिरे से ले कर दूसरे सिरे तक लहराने लगी। उन्हों ने जिस निपुणता से राज्यप्रबन्ध किया महाभारतकार उस की प्रशंसा करते हुए कहता है :—

"महाराज बड़े यत्न के साथ शत्रुओं को नष्ट करके प्रजा की रक्षा और सत्य का पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी तन मन से अपने कर्त्तव्य में निमग्न हो गई। न्यायपूर्वक कर लेने, और धर्म पूर्वक राज्य करने के कारण, समय पर भरपूर वर्षा होती थी और अन्न खूब उत्पन्न होता था। इस कारण प्रजा सुखी थी। लोग गौ की रक्षा,

कृषि और व्यापार इत्यादि सब कार्य भली प्रकार करते थे, धर्मराज के राज्य का यह फल था कि चोर, डाकू, ठग तथा राज्य-कर्मचारी इत्यादि असत्य भाषण से घृणा करने लगे। उनके राज्य में वर्षा का न होना अथवा न्यून होना, अग्निकाण्ड, अकाल मृत्यु इत्यादि घटनाओं का नाम भी श्रवणगोचर न होता था। राजा लोग महाराज की सेवा में आते तो कर देने अथवा उनसे उपदेश लेने या अन्य कार्यों के लिये, परन्तु युद्ध के लिये नहीं। धर्म से एकत्र किये हुये धन से उनका कोष इतना भर गया कि सहस्रों वर्षों में भी समाप्त न हो सकता था।"

उस समय महाराज ने श्याम जी से राजसूय यज्ञ के लिये आज्ञा मांगी, तो श्याम जी ने उनकी प्रशंसा करते हुये कहा :—

श्याम—महाराज! आप अब सम्राट् हैं। आप में इस यज्ञ के करने के लिये योग्यता है। आप यह यज्ञ करेंगे तो हम भी कृतकृत्य हो जायेंगे। यज्ञ आरम्भ कीजिये, जो कार्य करना हो उसकी आज्ञा मुझे दीजिये, मैं आपकी आज्ञा का पालन करने को तत्पर हूं।

देशों देशों में निमन्त्रण भेजे गये। देश विदेश से राजागण बहुमूल्य भेंट आदि ले कर राजसूय यज्ञ में भाग लेने के लिये आने लगे। उनके सत्कार का कार्य संजय के जिम्मे था, और उन की लाई हुई भेंटों तथा कर इत्यादि को संभालना महाराज सुयोधन के सुपुर्द हुआ।

दुशासन खाद्य पदार्थों के इन्चार्ज थे। ब्राह्मणों की सेवा और

सत्कार अश्वत्थामा के जिम्मे लगी। सब प्रकार का व्यय विदुर जी के द्वारा होने लगा और सब वस्तुओं के प्रबन्ध की देखभाल भीष्म और द्रोण के ऊपर डाली गई। ब्राह्मणों के चरण धोने का कार्य श्याम जी ने अपने हाथ में लिया।

छः अग्नियों की स्थापना हो चुकने पर यज्ञ आरम्भ हुआ। उस समय ब्राह्मण समूह में घिरे हुये महाराज युधिष्ठिर तथा महारानी कृष्णा का तेज दर्शनीय था। लेखनी में शक्ति नहीं कि उस का वर्णन कर सके। पूर्ण आहुति डाल चुकने पर महाराज ने ब्राह्मणों को जी भर कर दक्षिणा दी, जो कोई जो भी इच्छा ले कर गया पूर्ण की गई। उस समय अन्न के ढेर लगे थे। लाखों लोग पदार्थ खा रहे थे, लाल लुटाये जा रहे थे। प्रतीत होता था कि कोष खाली हो जायेगा, परन्तु वह सागर था जो एक ओर से रिक्त हो कर दूसरी ओर से भरा जा रहा था क्योंकि जो भी राजा, कर अथवा अन्य भेंट ले कर आता वह यही विचार ले कर आता कि महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ की पूर्ति उसी के जिम्मे है, इस लिये अपनी स्थिति से भी अधिक ले आता। इस प्रकार धन सम्पत्ति राज्य कोष से निकल कर लंगोटीबन्दों के गृह में पहुंच रही थी और भारत के अनुपम समाजवाद (सोशलिज्म Socialism) का प्रमाण दे रही थी।

यज्ञ स्नान के दिन ऋषि महर्षि, राजा महाराजा, राव और रंक पाण्डव सभा में विराजमान थे। एक ओर दर्शन विद्या पर विवाद हो रहा था, तो दूसरी ओर नीति पर बहस जारी थी, तीसरी ओर सर्व-

साधारण के विचार प्रगट किये जा रहे थे, जबकि भीष्म पितामह ने उठ कर महाराज युधिष्ठिर से कहा—

भीष्म—महाराज! अब आप इन आये हुये महानुभावों का यथा योग्य पूजन और सत्कार करें। सर्व प्रथम जिन्हें आप सर्व श्रेष्ठ और समर्थ समझते हैं उन्हें अर्घ दें।

युधिष्ठिर—पितामह जी! आप आयु और ज्ञान में सब से बढ़े हैं इस लिये आज्ञा कीजिये इन योग्य पुरुषों में से किसे प्रथम अर्घ दिया जाय?

इस प्रश्न के उत्तर में पितामह जी मौन हो गये। उस समय उन की दृष्टि सारी सभा पर पड़ रही थी और सभा में ऐसी नीरवता थी कि सूच भी गिरे तो शब्द सुनाई दे जाये। अल्पकालीन मौन के पश्चात उन्होंने कहा:—

भीष्म—इन सब महापुरुषों की मण्डली में एक से एक बढ़ कर हैं। इस लिये किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेना कठिन है, परन्तु सब विषयों पर विचार कर के इस समय प्रथम अर्घ और प्रथम पूजा के अधिकारी भगवान श्याम हैं।

करतल ध्वनि और "साधुः साधु" के शब्द से उपस्थित लोगों ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया और महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से सहदेव जी ने उठ कर विधिपूर्वक श्याम जी की सेवा में अर्घ उपस्थित किया, जिसे उन्होंने शीश झुका कर स्वीकार किया।

भारत के महापुरुषों ने, जो एक महाराज को अपना सम्राट

स्वीकार करने के लिये एकत्र हुये थे, भारत, नहीं नहीं विश्व के सब से महान् पुरुष होने का अधिकार दिया उस पुरुष को जो निर्धन से निर्धन पुरुष के पांव धोने में गर्व अनुभव कर रहा था। उन्होंने इस व्यवहार से दर्शा दिया कि उस युग में भी जबकि देश पतनोन्मुख हो रहा था, उस के महापुरुषों के भीतर यह सद्विचार थे कि वह मिट्टी में मिले हुये स्वर्ण को उठा कर शीश पर रख लें। निश्चय ही यह प्रथम अवसर था जबकि भारत भर के वीरत्व, धन और वैभव ने खुले हृदय से श्याम की योग्यता का सत्कार किया था। परन्तु देश की राजनैतिक अवस्था जैसा कि पूर्व लिखा जा चुका है ऐसी नहीं थी कि बिना किसी बाधा के ऐसा हो जाता। वह देखिये विरोधी दल का नेता इस योजना के विरुद्ध अपनी आवाज ऊंची करने के लिये खड़ा हो कर कह रहा है।

शिशुपाल (चेदीराज)—महाराज युधिष्ठिर! आपने प्रथम पूजा करली और करवाने वाले ने भी उसे स्वीकार कर लिया। परन्तु विश्व यह न कहे कि भारत एकमत होकर श्याम को इस का पात्र समझ रहा है, इस लिये मैं विदित करदूं कि श्याम राजा नहीं है इस कारण वह राजाओं से श्रेष्ठ नहीं हो सकता, वह ब्राह्मण नहीं इस कारण ब्राह्मणों से उत्तम नहीं हो सकता, वह आचार्य्य नहीं इस लिये वह आचार्य्यों की समानता नहीं कर सकता। (भीष्म को सम्बोधन कर के) पितामह जी! आप ने महाराज युधिष्ठिर को कुमार्ग पर डाला है, परन्तु यदि वृद्धावस्था ने आप की बुद्धि को भ्रष्ट नहीं कर दिया तो क्या मैं पूछ सकता हूं कि किन कारणों

के आधार पर आप ने यह सम्मति दी ? यदि श्याम को सब से वृद्ध समझा गया है तो वह आयु में आप से अधिक नहीं है, और अपने पिता वसुदेवजी के होते तो किसी प्रकार भी इस पूजा का पात्र नहीं था। यदि उसे सब से अधिक विद्वान समझा गया है तो व्यास-सदृश ऋषेश्वरों और इतने मुनीश्वरों के सन्मुख उस का क्या अस्तित्व है ? वीर अश्वत्थामा यहां उपस्थित हैं जो सब शास्त्रों के पंडित हैं, कृपा और द्रोण यहां पधारे हुये हैं, राजाओं में भीष्मक रुक्म, शल्य और भारत शिरोमणी परशुराम जी के शिष्य कर्ण यहाँ उपस्थित हैं, उनके होते प्रथम पूजा केवल श्याम को दी गई ! विश्वास रखिये यह पूजा करवा कर आपने समस्त सभा का अपमान किया है। स्मरण रहे कि हमने महाराज युधिष्ठिर को कर देना स्वीकार किया है, इसलिये नहीं कि हम उनकी शक्ति से भयभीत हैं, वरन केवल इसलिये कि भारत एक धर्मात्मा राजा के आधीन स्मृद्धिशाली बने। परन्तु हमें इसका फल यह दिया गया कि हमें यहाँ निमन्त्रित करके हमारा अपमान किया गया और एक ऐसे मनुष्य को, जो न राजा है, न आचार्य है न ऋत्विक है, न वृद्ध, हमारे सिर पर पांव रखने के लिए आगे कर दिया गया ! (फिर श्याम की ओर मुख करके) परन्तु यदि भीष्म से भूल हुई और महाराज युधिष्ठिर ने भी उनका अनुसरण करके एक गलत पग उठाया तो श्याम ! तुम को तो ज्ञान होना था कि तुम जिस पूजा को ग्रहण कर रहे हो उसके पात्र नहीं हो। इससे हमारा तो जो अपमान हुआ सो हुआ, परन्तु इस सारी

सभा के सन्मुख तुम्हारे जैसे अयोग्य मनुष्य का नाम ले कर निस्सन्देह भीष्म ने अनजाने से नहीं तो जान-बूझ कर तुम्हारी खिल्ली उड़ाई है। अरे! तुम्हारी यह पूजा है अथवा नपुन्सक का विवाह!"

यह कह कर शिशुपाल अपने सहकारी राजाओं को साथ ले कर सभा से बाहर जाने (Walkout) के लिये उठ खड़ा हुआ। शिशुपाल के मुख से शब्द निकल रहे थे जैसे कि तोप के मुंह से गोले छूट रहे हों। सभा में उन्हें श्रवण करके सनसनी फैल रही थी और कोई नहीं कह सकता था कि परिणाम क्या होगा? लोगों की दृष्टि कभी श्याम की ओर जाती जो मुस्कराते हुये मुखारविन्द से इस वक्तव्य को सुन रहे थे, कभी भीष्म की ओर जो इन शब्दों को श्रवण करके रक्तवर्ण हो रहे थे, और पुनः महाराज युधिष्ठिर की ओर जो सभाजनों के मुख को देख कर उनके मनोभावों का अध्ययन कर रहे थे। शिशुपाल और उनके साथी राजाओं को उठता और बाहर निकलता देख कर महाराज युधिष्ठिर अपने स्थान से उठे और शीघ्रतापूर्वक शिशुपाल का हाथ पकड़कर उसे रोकते हुये बोले—

युधिष्ठिर—शिशुपाल! भैया! तुम नहीं जानते तुम क्या कह चुके हो? निस्सन्देह शान्तनु पुत्र भीष्म जी के सम्बन्ध में आपका यह कथन कि उन्हें धर्म का ज्ञान नहीं सर्वथा अनुचित है। तनिक विचार तो करो कि इसी सभा में और भी इतने

राजा और महान विद्वान उपस्थित हैं, उन्होंने भीष्म जी के कथन को स्वीकार कर लिया। इसका कारण केवल यही है कि श्याम जी को जितनी भली प्रकार पितामह जी जानते हैं तुम और मैं नहीं समझते।

भीष्म– शिशुपाल जी ने जो कठोर वचन कहे हैं वह इन्हें शोभा देते हैं। परन्तु मुझ से प्रश्न किया गया है कि मैंने भगवान श्याम को क्यों प्रथम पूजा का अधिकारी समझा? इसका उत्तर सुने विना इन्हें सभा से जाना शोभा नहीं देता।'

भाई शिशुपाल! इस सभा में उपस्थित अल्पायु से अल्पायु बालक से ले कर वृद्ध से वृद्ध कोई पुरुष नहीं जिसे भीष्म न जानता हो। वह प्रत्येक की विशेषताओं को जानता है और प्रत्येक की दुर्बलताओं से परिचित है। उन सारी बातों को जान कर उसने प्रथम पूजा का पात्र श्याम जी को चुना है, क्योंकि न केवल अपने शारीरिक बल से, न केवल अपने आत्मिक तेज से, न केवल अपने वेदवक्ता होने से, वरञ्च निस्सीम देशहित के कारण वह उस के अधिकारी हैं। इस स्थान पर उपस्थित राजाओं और महाराजाओं में से कौन है जिसे किसी न किसी समय पर उनसे वास्ता नहीं पड़ चुका? और कौन है जिस ने यह अनुभव नहीं किया कि वह किसी न किसी अंश में उस से श्रेष्ठ हैं? लोग कहते हैं कि ब्राह्मणों में अधिक ज्ञानी, क्षत्रियों में अधिक बलवान, वैश्यों में अधिक धनी, और शूद्रों में अधिक आयुवाला पूजा के योग्य है। यह सभा ब्राह्मणों और क्षत्रियों की है और श्याम न केवल सब से

बलवान ही हैं, वरञ्च वेद और वेदांग के अपूर्व पण्डित भी हैं। वह भारत देश ही नहीं समस्त विश्व को अपनी आत्मा समझते हैं; किसी को कोई दुख हो, कोई पीड़ा हो, वह सब की सेवा के लिये उपस्थित हैं। चतुराई, शूरवीरता, शस्त्र, शास्त्र, नम्रता, कीर्ति, इत्यादि सभी सद्गुण उन में विद्यमान हैं। इस कारण उन्हें गुरु कहो तो, आचार्य्य कहो तो, आदर्शपिता कहो तो, सभी प्रकार वह पूजा के योग्य हैं। भाई! यदि तुम ने अभी तक उन की महिमा को नहीं समझा तो अब समझलो।"

यह कह कर भीष्म जी मौन हो गये, परन्तु उन के विचार शिशुपाल को कहां शान्त कर सकते थे, वह बोला—

शिशुपाल—भीष्म! तुम बार-बार श्याम की प्रशंसा के पुल बांध कर हमारे घावों पर क्यों लवण छिड़क रहे हो? क्या हमें भूला है कि इस मनुष्य ने बाल्यकाल में हत्यारे वत्स को मार कर संसार को यह दिखाया कि उसे गो-हत्या करने से घृणा नहीं? क्या हम नहीं जानते कि इस ने अपने मामा कंसराज का वध किया था? क्या हमें ज्ञात नहीं कि धोखे और अन्याय से इसने जरासन्ध का नाश किया है? तुम जिस मनुष्य को वेदवक्ता, ज्ञानी, सारे संसार को अपना आत्मा समझने वाला, और ज्ञात नहीं क्या-क्या कह कर आकाश पर चढ़ा रहे हो, उस ने जरासन्ध के सन्मुख प्रथम अपने को ब्राह्मण बताया, फिर उस से मुकर गया। यदि वह सत्य ही सब को अपना आत्मा समझता है तो ब्राह्मण होने से क्यों मना किया? पर नहीं जो स्वयं ही

धर्मभ्रष्ट हो, यदि वह दूसरों को उल्टा मार्ग दिखाये तो आश्चर्य्य नहीं। तुम्हीं हो न जो काशीराज की कन्या को, जिसे अन्य पुरुष से प्रेम था, उठा लाये थे ? हां-हां बालब्रह्मचारी शूरवीर तुम्हीं हो न जिस के नेत्रों के सन्मुख भाई की स्त्रियों ने नियोग से सन्तान उत्पन्न की और तुम टक-टक देखते रहे ? अरे ! मानते क्यों नहीं कि नपुन्सक हो कर ब्रह्मचारी कहला रहे हो।

शिशुपाल अब श्याम को छोड़ कर स्वयं भीष्म पर जिह्वा रूपी खड्ग तेज कर रहा था जिसे उन्होंने सुन कर अनसुना कर दिया। परन्तु बड़ों का अपमान श्रवण करने का धीरज वृकोदर भीम में नहीं था, इसलिये उस के नेत्र रक्तवर्ण हो गये और वह आवेश में आकर उठ खड़ा हुआ। यदि भीष्म उस की भुजा पकड़ कर यह कहते हुये उसे बिठा न देते तो सभामण्डप में ही युद्ध का सामान बन जाता:—

भीष्म—वृकोदर ! शान्ति को हाथ से मत त्यागो। सुनते नहीं गालियां मुझे दी जारही हैं और मैं उन्हें सहन कर रहा हूं ! क्या किसी ने आज पर्य्यन्त यह देखा है कि भीष्म को गाली देने वाला [illegible]त रहा है ? परन्तु मैं देखता हूं कि श्याम शान्त हैं, निस्सन्देह कोई कारण है जो इस शान्त महासागर में ज्वार नहीं उठा।

शिशुपाल—फिर वही श्याम ! श्याम ! अरे ! यदि वह तुम्हारी भांति नपुन्सक नहीं है तो मैं उसे ललकारता हूं, युद्ध-भूमि में ललकारता हूं, वह कायरों की भांति टक-टक देखता न रहे, यदि

साहस हो तो आज युद्ध-भूमि में मेरे साथ इस बात का निर्णय कर ले कि वह प्रथम पूजा का अधिकारी है वा नही ?

सभा की दृष्टि अब श्याम जी की ओर उठी जो उसी प्रकार मुस्कराते हुये यह सब कुछ श्रवण कर रहे थे मानो किसी मनोरंजक वार्त्ता का आनन्द ले रहे हों। शिशुपाल के निमन्त्रण के उत्तर में वह अपने स्थान से उठे और गम्भीर स्वर में बोले :—

श्याम—सभाजनो ! नरपशु शिशुपाल यादव कुल से सम्बन्ध रखने वाली माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ है, परन्तु यादवों से द्वेष रखता है। हम लोगों ने कभी इसके साथ बुराई नहीं की, परन्तु इसे सदैव उल्टी ही सूझती है।

जब हम प्राग ज्योतिष को गये हुये थे तो इसने द्वारका पर आक्रमण कर के उसे भस्म करने का यत्न किया। जब भोजवंशी रेवतक पर्वत पर क्रीड़ा मग्न थे तो यह उन में से कई एक को बांध कर अपने गृह में ले गया। तपस्वी बभ्रू की स्त्री को जो सोवीर देश को जा रही थी इसने मार्ग में बलपूर्वक हर कर उसके सतीत्व को नष्ट किया। कारुश राज का वेश बना कर विशाला पुरी के राजा की कन्या भद्रा को धोखे से उड़ा लाया। इसी प्रकार के एक नहीं अनेक पाप हैं जो इसने किये हैं। मैने बुआ को वचन दे चुकने के कारण इसके अत्याचारों को सहन किया। इसके अपराधों की संख्या आज एक सौ से अधिक हो गई है, अब यह मुझे युद्ध भूमि में ललकार रहा है। आप लोगों ने देखा कि मैं इस

समय पर्य्यन्त इसके आवेश को बालकों का खेल समझ कर हंस रहा हूं, क्योंकि मैं इस देश ही नहीं जगत के किसी भी पुरुष का वृथा रक्तपात अनुचित समझता हूं। परन्तु युद्ध के लिये ललकार का उत्तर न देना क्षत्रिय धर्म के विरुद्ध है, इस कारण भावी का उत्तरदायी मैं नहीं।

शिशुपाल—माता का नाम ले कर मुझे मत भयभीत करो. मैं ने सौगन्ध खाई है कि तुम्हारा वध करके भारत भूमि के भार को हल्का करूंगा। इस लिये एक बार फिर तुम्हें युद्ध भूमि में आने के लिये ललकारता हूं। आज पर्य्यन्त तुम चोरों की भांति दूसरों को मारते और मरवाते रहे हो, तनिक क्षत्रियों का सामना तो करके दिखाओ।

श्याम—(गम्भीरता पूर्वक) शिशुपाल! माता के नाम का अपमान तुम कर सकते हो परन्तु मैं नहीं कर सकता। मैं भूल नहीं सकता कि तुम न केवल यादव माता के पुत्र हो वरञ्च भारतमाता के भी। इन माताओं के पुत्र मेरे आत्मा के आत्मा हैं। परन्तु तुम्हें युद्ध की इच्छा है, मैं उसे पूर्ण करने से नहीं डरता, जाओ अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हो कर आओ जिस से कि क्षत्रिय धर्म के जौहर दिखा सको।

× × ×

लोग यज्ञोत्सव देखने आये थे, परन्तु यहां भारत के महान् योद्धाओं के युद्ध का दृश्य सन्मुख आगया। इन्द्रप्रस्थ के बाहर विस्तृत क्षेत्र में दोनों ओर के राजा और उनकी सेना विधिपूर्वक

खड़ी हो गई। महाराज युधिष्ठिर का मुख इस समय देखने योग्य था। उन्हें रक्त-पात से हार्दिक घृणा थी और विशेषतया ऐसे शुभ अवसर पर परिस्थिति बिगड़ते देख कर उन्हें अत्यन्त दुःख हो रहा था, परन्तु विवश थे। भीम के नेत्र क्रोध से लाल हो रहे थे, और अर्जुन दुखी हृदय से रण-क्षेत्र की देख-रेख में लीन थे, जब कि शिशुपाल आवेश पूर्वक नारे लगाता और रथ को चक्कर देता हुआ आगे बढ़ा। उसे आगे बढ़ते देख कर दारुक ने भी रथ के घोड़ों की वागें उठाई। श्याम के मुख पर उस समय भी जब कि वह भारत के एक शक्तिशाली योद्धा के साथ युद्ध के लिये बढ़ रहे थे, वही मुस्कराहट थी जो सदैव उनकी विशेषता रही थी। उन्हें शान्त देख कर शिशुपाल की क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी और उसने धनुष उठाकर बड़ी शीघ्रता-पूर्वक बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

श्याम ने शारंग धनुष को उठाया, परन्तु उनके बाण केवल उत्तर में शिशुपाल के बाणों को काट रहे थे। उस समय शिशुपाल के सहायक समझ रहे थे कि प्रतिद्वन्दी की भुजाएं साहस-हीन हैं, परन्तु गूढ़ दृष्टि से देखने वालों से यह छिपा नहीं था कि वह अपने प्रतिद्वन्दी से केवल खेल रहा है। कुछ काल यह खेल चलता रहा, शिशुपाल अधिकाधिक भन्नाा गया, परन्तु कुछ ही क्षणों में श्याम की अंगुली पर सुदर्शन चक्कर घूम रहा था और लोगों ने देखा कि निमिष मात्र में ही शिशुपाल का सिर उसके शरीर से पृथक् हो कर भूमि पर गिर गया, परन्तु पूर्व इस के कि वह पृथ्वी पर

गिरे श्याम रथ से कूद कर उसके शव को हाथों में थाम रहे थे।

युद्ध समाप्त हो गया। शिशुपाल का अन्त्येष्टि संस्कार रीति अनुसार किया गया। वह राजा जो उसके बल पर यज्ञ में विघ्न डालने को तत्पर थे भीगी बिल्ली बन गये, और शेष कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ।

शाल्व से युद्ध

यज्ञ के समाप्त होने और समस्त अतिथियों के विदा हो जाने के पश्चात् श्याम जी ने महाराज युधिष्ठिर से विदा मांगी, परन्तु इतने समय में परस्पर प्रेम इतना बढ़ गया था कि एक दूसरे से वियोग दुखदायी हो रहा था। परन्तु यह भी असम्भव था कि श्याम अधिक काल पर्य्यन्त इन्द्रप्रस्थ में रुके रहते, इस लिये दुखी हृदय से महाराज युधिष्ठिर ने उन्हें विदा किया। विदा के समय राजमाता कुन्ती ने उन्हें गोदी में ले कर सिर और मुख चुम्बन करके आशीर्वाद दी और महारानी कृष्णा ने कर जोड़ कर नमस्कार करते हुये कहा "भगवन्! आशा करती हूं कि इस दासी को भूल नहीं जायेंगे"। स्वयं महाराज युधिष्ठिर नगर की सीमा तक उनके रथ के सारथी बने।

पाण्डवों से विदा हो कर श्याम, संकर्षण, सात्यकि और अन्य यादव द्वारका पहुंचे तो यह देख कर उनके आश्चर्य्य की सीमा न रही कि वह सुन्दर वाटिकाएं जो इतने परिश्रम से तय्यार हुई थीं उजड़ी पड़ी थीं, वह प्रासाद और अट्टारियां जो वर्षों के परिश्रम से बने थे नष्ट-भ्रष्ट हुए हुए थे। चारों ओर दुख और शोक का साम्राज्य था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यादव सरदारों को राजधानी से अनुपस्थित पा कर शिशुपाल वध का प्रतिशोध लेने के लिये उसके

मित्र शाल्व ने भारी सेना और वायुयानों के बेड़े के साथ द्वारवती पर आक्रमण किया था और यद्यपि भारी हानि के साथ उसे पीछे हटा दिया गया तथापि जाता हुआ वह नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर गया। यह भी विदित हुआ कि उस युद्ध में श्याम के सुपुत्र प्रद्युम्न ने वीरता के वह जौहर दिखाये कि दर्शक उसके पूज्य पिता के युद्ध-कौशल को भूल गये, तथापि शाल्व और प्रद्युम्न के परस्पर युद्ध में एक समय ऐसा आया जब कि प्रद्युम्न शाल्व के नुकीले बाणों से घायल हो कर मूर्छित हो गया। दारुक का पुत्र उसका रथवान था। उसने घोड़ों की बागें उठाईं और मूर्छित योद्धा को रण क्षेत्र से बाहर निकाल ले गया; परन्तु अभी युद्ध के कोलाहल से कठिनता पूर्वक बाहर हुये थे कि प्रद्युम्न को सुध आ गई और उसने सारथी से पूछा :—

प्रद्युम्न—सारथी! मुझे कहां लिये जा रहे हो ? क्या तुम जगत के मुख से यह कहलवाना चाहते हो कि प्रद्युम्न शत्रु से भयभीत हो कर भाग गया ?

सारथी—शूरवीर ! ऐसा नहीं है रथी की रक्षा सारथी का और सारथी की रक्षा रथी का धर्म है। तुम शत्रु के बाणों से घायल हो कर बेसुध हो गये थे इसलिये तुम्हें विश्राम देने के लिये मैं रणक्षेत्र से बाहर निकाल लाया।

प्रद्युम्न—अब तो जो हुआ सो हुआ परन्तु स्मरण रक्खो भविष्य में ऐसी चूक न करना। पिताजी आकर जब सुनेंगे कि प्रद्युम्न शाल्व के सामने से रण छोड़ कर निकल गया तो क्या कहेंगे ?

वह यादव राज्य की रक्षा का भार मेरे कंधों पर डाल गये हैं और मैंने जगत को बताना है कि उन्होंने ऐसा करने में भूल नहीं की। इस लिये शीघ्र, अति शीघ्र, रथ को मोड़ो।

आज्ञा पालन में सारथी ने रथ को फिर चक्कर दिया और पूर्व इस के सेना को यह ज्ञात हो कि क्या हुआ है, प्रद्युम्न अपने प्रतिद्वन्दी को न केवल ललकार रहा था बल्कि सिंह के समान अपने बाणों से उस के शरीर के एक एक रोम को बेध रहा था। सरदार को इस प्रकार प्राणों पर खेल कर लड़ते देख कर यादव सेना ने बड़े जोर से आक्रमण कर दिया और अल्प काल में ही युद्ध का चित्र बदल गया।

इस आक्रमण और प्रद्युम्न के घायल होने का वृत्तान्त सुन कर श्याम के मुख से निकला—

श्याम—मेरा विचार ठीक ही था।

संकर्षण—क्या?

श्याम—मुझे सन्देह था कि हमारे शत्रु शिशुपाल के वध को ऐसी सुगमता पूर्वक सहन नहीं करेंगे, वह सत्य ही तो निकला। अब आप द्वारका की रक्षा कीजिये और मैं शत्रु को दण्ड देने के लिए जाता हूं, और प्रतिज्ञा करता हूँ कि लौटूंगा तो शाल्व का सिर काट कर।

× × ×

यादव वीरों के मुख वीरता के मद से अग्निमय हो गये जब उन्होंने श्याम के आधीन, शाल्व के देश पर आक्रमण का

समाचार प्राप्त किया। गरुड़ जी को आज्ञा हुई कि वह अपने वायुयानों के साथ समुद्री सेना की रक्षा करें। स्थल सेना, जल सेना के साथ साथ प्रस्थान करती हुई चली, जो हाथी, घोड़े, रथ और पदातियों की चतुरङ्गिनी सेना के रूप में उड़ी चली जा रही थी। प्रतिशोध की भावना वीरों के हृदय में सैंकड़ों भाव उत्पन्न कर रही थी, और वह सप्ताहों का मार्ग दिनों और दिनों का घन्टों में समाप्त करते हुये सोभनगर की ओर बढ़ रहे थे। श्याम की उपस्थिति ने उन के हृदयों में यह विचार भर दिया था कि वह अजेय हैं, इसलिये जब सोभनगर सन्मुख आया तो उस की विजय में कठिनता से कुछ घंटे ही लगे। परन्तु दुर्ग की विजय के पश्चात् यह विदित हुआ कि शाल्व सोभनगर में नहीं, बल्कि सागर के मध्य एक द्वीप में दुर्ग के भीतर है। अब यादव बेड़े की बारी आई और उस ने द्वीप में पहुंच कर उस के आस-पास घेरा डालने का यत्न किया; परन्तु शत्रु भी असावधान नहीं था, यादव लोगों की देखा-देखी उस ने भी जलयानों के बनवाने में पर्य्याप्त उन्नति की थी। इस के अतिरिक्त उस के वायुयान भी जैसा कि इस युद्ध में विदित हुआ शक्तिशाली बन चुके थे।

यादव बेड़े की सोभसागर में पहुंचने की सूचना मिलते ही शाल्व का बेड़ा सन्मुख आया और अल्पकाल में ही सागर वीरों के रक्त से लाल हो गया। दोनों ओर के योद्धा अपने अपने नेताओं के नेतृत्व में वीरत्व की परीक्षा देने लगे। उस समय शाल्व की इच्छा थी कि श्याम को कुचल कर इस कंटक को सदैव

के लिये समाप्त कर दे। दूसरी ओर यादव वीर यह चाहते थे कि शत्रु को द्वारका पर आक्रमण करने का फल चखा दें कि फिर किसी को उस ओर मुख करने का साहस न हो। इस लिये युद्ध में तीव्रता अत्यन्त भयानक हो गई। कुछ काल के घमासान युद्ध के पश्चात कालीय के अनुभवी जल सैनिक शत्रु के कई वीरों को जलमग्न करने में सफल हुये, परन्तु उस समय शाल्व का वायुयान पृथ्वी तल से ऊपर उठा। यह देख कर गरुड़ जी को भी अपना चातुर्य्य दिखाने का अवसर मिला जिस के वायुयान पर आरूढ़ हो कर श्याम शत्रु को ढूंढ़ रहे थे। सागर के मध्य में दोनों की भेंट हुई। शाल्व ने उस समय ललकार कर श्याम को कहा:—

शाल्व—अन्त में मैं तुम्हें ढूंढने में सफल हो गया! लो! अब मृत्यु के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

श्याम—मृत्यु से भयभीत होते हैं पापी। यहां जीवन और मृत्यु एक समान हैं। (शारङ्ग धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा कर) लो अब अपने पापों का प्रायश्चित करने के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

यह कह कर उन्होंने वाण वर्षा प्रारम्भ कर दी, परन्तु शाल्व के वायुयान ने डुबकी लगा कर उन सब वाणों को व्यर्थ कर दिया, और दूसरे क्षण में वह ऊपर उठ कर गरुड़ जी के शरीर को वाणों से वेध रहा था।

गरुड़ ने वायुयान को चक्कर देकर उस के आक्रमण को निष्फल करने का प्रयत्न किया, परन्तु ऐसा प्रतीत होता था कि

शाल्व का लक्ष्य श्याम नहीं स्वयं गरुड़ जी थे और वह चाहता था कि उन्हें मार कर वायुयान को नीचे गिरने पर विवश कर दे।

श्याम ने यह भांप कर सुदर्शनचक्र को हरकत दी और उस ने अल्प काल में ही वायुयान के वक्ष को भेद कर दो कर दिया। दूसरे आक्रमण में शाल्व स्वयं सुदर्शन का लक्ष्य हो गया।

शाल्व के मरते ही सेना में भगदड़ मच गई और सोभ के वायुयान जो यादव सेना पर मण्डरा रहे थे नीचे गिरते हुये दिखाई दिये, क्योंकि गरुड़ जी के वायुयान अब पूर्ण शक्ति से उन पर आक्रमण कर रहे थे। उधर श्याम के पंचजन्य शंख का घोष वायु में गूंजा और जल सेना में से यादव वीरों ने कूद-कूद कर सोभ देश के योद्धाओं को तलवार की धार पर रख लिया।

सोभ नगर विजय होगया, शाल्व की जल सेना जो यादव सेना की प्रतिद्वन्दी बनने के यत्न में थी, नष्ट हो गई। अब भारत भर में चारों ओर कोई शत्रु नहीं था जो यादव वीरों के नेत्रों से नेत्र मिला सके।

कृष्णा की पुकार

पाठक ! आपने मय दानव निर्मित राज्य-भवन और सभा-भवन देख लिये । यादव राज की अद्वितीय सभा का भी निरीक्षण किया, अब आइये आप को एक और दृश्य दिखायें । यह देखिये घना वन, चारों ओर प्रकृति ने हृदय खोल कर हरियाली बिछा दी है । जहाँ तक दृष्टि जाती है वृक्षों की पंक्तियों के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर नहीं होता । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति माता ने हरी ओढ़नी ओढ़ ली है । ऊपर की ओर दृष्टि करो तो आकाश अदृश्य है। घने वृक्षों की टहनियों ने सूर्य-रश्मियों तक को पृथ्वी पर पहुंचने से रोक दिया है । नीचे दृष्टिपात करो तो स्थान-स्थान पर जल-प्रपातों ने हरियावल ही हरियावल उत्पन्न करके पृथ्वी को उस के परदे में छिपा दिया है । वाम, दक्ष जिधर देखिये दृष्टि कुछ पग के अन्तर से आगे देखने में असमर्थ है । क्योंकि इस स्थान पर प्रकृ त ने अपनी जीवन-दायिनी शक्तियों को खुला छोड़ दिया है और चारों ओर मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्रत्येक प्रकार की उत्पत्ति अपनी वास्तविक अवस्था में दृष्टिगोचर होती है । परन्तु इस वनमें यह मानवी शब्द कहाँ ? तनिक सुनना !

"श्याम जी ! अन्त में आप आये, परन्तु अब आने से क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत ?" महाराज ने समस्त सम्पत्ति

द्यूत में हार दी ! सारा धन-धान्य द्यूत में खो दिया ! सारे भ्राताओं को शकुनि के द्वारा सुयोधन पास हार दिया ! निज को दास बना लिया ! और जो कार्य आज से पूर्व बड़े से बड़े जुआरी ने न किया था वह भी कर दिया !!!"

"वह क्या ?"

"स्वयं को हारकर मुझे दांव पर लगा दिया और जिस प्रकार शकुनि ने धोखे से सर्वस्व जीत लिया था, मुझे भी जीत लिया।"

"यह कैसे सम्भव है ? क्या स्त्री, धन-सम्पत्ति अथवा पशु है जो जूए में हारी जा सकती है ?"

"इन के विचार में तो गाय बैल भी मुझ से अच्छे थे। उन्हें इन्होंने हारा उस समय जब आप स्वतन्त्र थे, परन्तु मुझे दांव पर लगाया उस समय जब स्वयं दास बन चुके थे।"

"परन्तु क्या उस द्यूत-सभा में कोई शास्त्र-वेत्ता न था जो यह बताता कि निज को दास बना चुकने के पश्चात महाराज का किसी अन्य वस्तु पर अधिकार नहीं रहा था ?"

"मैंने इस प्रश्न को उठाया। मैंने रणवास में से यह पुछ्वा भेजा, परन्तु उस के उत्तर में रजस्वला, एक वस्त्रा मुझे केशों से पकड़ कर भरी सभा में घसीट कर लाया गया। श्याम जी ! मैंने उस समय सभा में उपस्थित वृद्धों से, शास्त्र-वेत्ताओं से, पुनः प्रश्न किया, परन्तु विदुर और विकर्ण के अतिरिक्त और किसी ने भी उस प्रश्न का उत्तर देने की चेष्टा न की, परन्तु उन की कौन सुनता था ?"

"कृष्णा! क्या भीष्म सरीखे बालब्रह्मचारी यह अत्याचार देखते रहे और उसे रोकने का कोई यत्न न किया?"

कृष्णा—भीष्म जी का उत्तर था "धर्म की गति अति सूक्ष्म है। दास का किसी वस्तु पर अधिकार नहीं रहता यह ठीक है, परन्तु क्या स्त्री पर भी रहता है अथवा नहीं? और क्या स्त्री-धन जूए में हारा जा सकता है अथवा नहीं? इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना अत्यन्त कठिन है।"

श्याम—'विनाश काले विपरीत बुद्धिः'—प्रतीत होता है कौरवों का विनाश-काल निकट ही है।

कृष्णा—श्याम जी! जिस समय दुष्ट दुशासन ने (अपने सिर के बालों को दिखाते हुये) इन केशों को पकड़ कर खींचा जो राजसूय यज्ञ में वेद मन्त्रों से बांधे गये थे, जिस समय महाराज यज्ञसेन की पुत्री, धृष्टद्युम्न की भगिनी, और महाराज पाण्डु की बहु को घसीटते हुए सभा में लाया गया, हां जिस सयम एक-वस्त्रा मुझे जिस का वस्त्र रक्त रंजित हो रहा था, महाराज धृतराष्ट्र के रणवास से घसीटते हुए भरी सभा में खींचा गया, जिस समय दुष्ट सुयोधन ने जिसे मैं अब से दुर्योधन कहूँगी अपनी जांघ नग्न कर के मुझे उस पर बैठने को कहा, तो पृथ्वी फट क्यों न गई? आकाश के तारे टूट क्यों न पड़े?

श्याम—(दांतों तले उंगली दबाये) उफ!

कृष्णा—पाण्डु-पुत्र पांचोंके पांचों उस समय सन्मुख बैठे थे। अहिंसा के अवतार धर्मराज सब कुछ देखते थे। वृकोदर भीम के

नेत्र यह देख कर रक्तिम हो गये और उसने यह भीषण प्रतिज्ञा की कि वह दुर्योधन की जांघ तोड़ कर दुशासन का रक्त पान करेगा। परन्तु उसे शान्त कर दिया गया। हां ! गाण्डीव को दोनों हाथों से चलाने वाले अर्जुन भी यह देखते रहे और कोई हाथ मेरे अपमान को रोकने के लिये न उठा !!!

श्याम—नारायण ! नारायण !

कृष्णा—वह तो मेरा एक वस्त्र भी, जो आधे से अधिक पृथ्वी पर गिर पड़ा था, उतारने को तत्पर थे परन्तु परमात्मा ने महारानी गान्धारी के मन में दया डाल दी। उसने रणवास में यह विदित होने पर कि मेरा इस प्रकार अपमान किया जा रहा है, सीधी महाराज धृतराष्ट्र के समीप पहुंच कर उन्हें बताया कि यदि भ्राताओं के खेल अथवा युद्ध में इस प्रकार स्त्रियों का निरादर किया जायेगा तो वह समस्त रणवास सहित सभा में चली आएगी और दुर्योधन और दुशासन को यज्ञसेनी के साथ गान्धारी का भी निरादर करना होगा। उस समय महाराज धृतराष्ट्र को सुध आई। उन्होंने कोमल वचनों से मुझे सब कुछ भूल जाने का उपदेश करते हुए मेरी प्रार्थना पर इन पांचों भ्राताओं को स्वतन्त्र कर दिया। परन्तु दुष्ट दुर्योधन ने इस पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि हम लोग द्वादश वर्ष बनवास करें और तेरहवें वर्ष अज्ञात वास। यदि तेरहवें वर्ष वह हमारा पता लगा लें तो पुनः द्वादश वर्ष का बनवास और तेरहवें वर्ष अज्ञात-वास। यह चक्कर चलता ही रहे जब तक कि

हम इस पृथ्वी को त्याग न दें।

श्याम—आह !

कृष्णा—श्याम जी ! मैं ने स्वयंवर में कर्ण का अपमान किया था, उसने उसका प्रतिशोध ले लिया। मैं ने उसे "सूतपुत्र" कहा था उसने सारी सभा के सम्मुख मुझे "दासी" बनवा दिया। न केवल बनवा दिया वरन् दुर्योधन के गृह में झाड़ू देने को कहा। मुझे इस में कोई दुःख न होता यदि कोई कर मेरे पक्ष में उठता। मैं ने उस समय कुरु वृद्धों के सम्मुख अपना दुःख रोया, आपका नाम लेकर दुहाई दी, परन्तु किसी ओर से कोई भी आश्रय न मिला। मैं दुःखी हृदय से कहती हूं श्याम जी ! मेरा इस संसार में कोई नहीं, न पति, न भ्राता, न पिता, न पुत्र। और तो और, आप भी मेरे नहीं रहे ! !.........

यह कहते हुए कृष्णा का मन भर आया और उसने दोनों हाथों से मुख ढांप कर हिचकियां लेते हुए रुदन आरम्भ कर दिया।

श्याम—(दुखित होकर) कृष्णा ! मैं निर्दोष हूँ, यदि द्यूत सभा के समय मैं द्वारवती में होता तो भले ही मुझे निमन्त्रित किया जाता अथवा नहीं, मैं वहां अवश्य पहुंच जाता और वहां पहुँच कर द्यूत को रोकने का यत्न करता। कृष्णा ! तुम विश्वास करो मैं जुए के दोष बताकर सुयोधन को उस से हटाता, मैं अपनी सारी शक्ति व्यय करके महाराज धृतराष्ट्र को उसका ऊँच-नीच समझाता, और वह न भी मानते तो मैं बल-पूर्वक उन्हें

मनाता। यदि द्यूत प्रेमी सुयोधन की सहायता के लिये अग्रसर होते तो उन्हें सुदर्शन चक्र से निपटना पड़ता; परन्तु क्या करूं मैं उस समय द्वारका में नहीं था, इस कारण आप लोग देश से विदेश में पहुँच कर यह क्लेश सहन कर रहे हैं!!

युधिष्ठिर—आप उस समय कहां थे?

श्याम—राजसूय यज्ञ के उपरान्त द्वारका लौटने पर ज्ञात हुआ कि दुष्ट शाल्व शिशुपाल के वध का प्रतिशोध लेने के लिये द्वारका पर चढ़ दौड़ा था और यद्यपि प्रद्युम्न आदि शूरवीरों ने उसे लौट जाने पर विवश किया, परन्तु वह जाता हुआ द्वारका की समस्त शोभा को बिगाड़ गया! मुझे उसे दण्ड देने के लिये जाना पड़ा और जब उधर से लौटा तो आपकी दुःख कथा सुनी। आह! मेरा सारा किया कराया जुए के हाथों मिट्टी में मिला दिया गया!!

वार्त्तालाप अभी यहीं तक पहुंचा था कि एक ब्राह्मण ने (जो महाराज युधिष्ठिर के साथ वन में आये थे) आगे आकर कहा:—

ब्राह्मण—महाराज! इन्द्रप्रस्थ से कुछ पुरुष आये हैं। वह महाराज से भेंट करना चाहते हैं।

श्याम—आने दो।

आज्ञा पालन हुई और अल्पकाल में इन्द्रप्रस्थ की प्रजा के प्रतिनिधि महाराज युधिष्ठिर की सेवा में प्रार्थना कर रहे थे:—

प्रतिनिधि—हमें केवल यही प्रार्थना करनी है कि हम मनुष्यों से भेड़ बकरियों से अच्छा व्यवहार होना चाहिये।

युधिष्ठिर—भाई स्पष्ट कहो क्या इच्छा है ?

प्रतिनिधि—कहने का प्रयोजन यह है कि राजों महाराजों के मनोरञ्जन में प्रजा का रुधिर नहीं बहाया जाना चाहिये। महाराज ने खेल खेला और प्रजा की सम्मति नहीं ली। महाराज सुयोधन खेल खेल रहे थे, उन्हें अपनी प्रजा के विचार जानने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि एक तो वह स्वयं राजा नहीं थे यदि वह परास्त होते तो वह राज्य की बाजी नहीं खेल सकते थे, दूसरे उन्हें विश्वास था कि वह हारेंगे नहीं क्योंकि द्यूत का परिणाम प्रत्येक नर नारी को विदित था। परन्तु महाराज जो केवल इन्द्रप्रस्थ के ही राजा नहीं थे वरञ्च भारत के सम्राट् भी, प्रजागणों के जीवन को इस प्रकार दांव पर नहीं लगा सकते थे।

युधिष्ठिर—भाई हम तुम्हारी वक्तृता के बल को समझते हैं परन्तु अब तो जो हो चुका वह लौट नहीं सकता।

प्रतिनिधि—महाराज को विदित होना चाहिये कि इस समय महाराज के साम्राज्य में चारों ओर कानाफूसियाँ हो रही हैं। अधिकांश राजा जो महाराज के राज्य को धर्म-राज्य समझते हुए उसमें सम्मिलित हुए थे इस समय अपने भविष्य पर विचार कर रहे हैं। इन्द्रप्रस्थ-निवासियों ने भी इस पर विचार किया है और हमें महाराज की आज्ञा लेने के लिये भेजा गया है।

युधिष्ठिर—द्यूत-कर्म ने मेरी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है इसलिये मैं तुम्हें इस विषय में क्या सम्मति दे सकता हूँ ? परन्तु तुम्हारा विचार क्या है ?

प्रतिनिधि—महाराज की छत्र-छाया के तले पले हुए लोग अधर्मियों के राज्य को स्वीकार नहीं कर सकते। इस में भले ही हम लोगों के प्राण रहें वा जायें।

युधिष्ठिर—तुम धन्य हो! तुम्हारा विचार सराहनीय है। परन्तु इस समय मैं जिस अवस्था में हूँ उस में मैं तुम्हें कोई भी सम्मति देने में असमर्थ हूँ। श्याम जी यहां उपस्थित हैं, वह धर्म के मर्म को समझते हैं, वह जो कहें करो।

प्रतिनिधि—भगवन्! हम मनुष्य हैं। वैसे ही मनुष्य हैं जैसे कि राज्यकुल में उत्पन्न होने वाले मनुष्य। इसलिये हम मुकुट-धारी लोगों के जूए में पांसे के साथ पलटने वाले बनने के लिये सहमत नहीं।

श्याम—भूल से अथवा वास्तविक में महाराज युधिष्ठिर धर्म-बन्धन में बंधे हुए हैं। त्रयोदश वर्ष पर्य्यन्त वह न तुम्हारी सहायता कर सकते हैं न तुम्हारी सहायता स्वीकार कर सकते हैं। वह तुम लोगों को अपनी सन्तान के समान समझते रहे हैं और अब भी समझते हैं। आप लोग धर्म के अनुसार चलें, जो शिक्षा देता है कि न अत्याचार को सहन करो, न अत्याचारी को अत्याचार करने में सहायता दो, भले ही वह धर्मराज युधिष्ठिर हों अथवा सुयोधन। बस हमारा तुम लोगों को केवल यही उपदेश है।

विराट् सभा

द्वादश वर्ष बीत गये, जिनका अधिकांश भाग अर्जुन ने महान धनुष-धारियों से युद्ध-विद्या ग्रहण करके भावी संघर्ष के लिये अपने को प्रत्येक ढङ्ग से तैयार करने में व्यतीत किया। वह वर्ष जिन में पाण्डवों ने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और पञ्जाब से लेकर बङ्गाल पर्य्यंत का देशाटन करके, इस देश के चप्पे-चप्पे से परिचय प्राप्त करके, यहां के छोटे बड़े राजाओं को अपना बनाने का यत्न किया। इन द्वादश वर्षों के पश्चात् एक वर्ष का अज्ञातवास भी पूर्ण हो गया, जिस में इन राजकुमारों ने नीच से नीच कार्यों में निपुणता का परिचय देकर परिश्रम को सर्वोच्च प्रमाणित कर दिया। हां, हां त्रयोदश वर्ष व्यतीत होगये, उन त्रयोदश वर्षों में देशभक्त-श्याम पिता से पितामह बन गये, क्योंकि शूरवीर प्रद्युम्न अब एक पुत्र के पिता थे। उस अवधि की समाप्ति पर हम उन्हें अन्य यादवों सहित मत्स नगर की राजधानी में पाते हैं क्योंकि इस देश के राजा महाराज विराट् ने पाण्डवों के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ करने के लिये अपनी पुत्री उत्तरा को, जिसे एक वर्ष पर्य्यंत अर्जुन ने बृहन्नला के रूप में नृत्य गान की शिक्षा दी थी, सुभद्रा के प्रिय पुत्र और श्याम जी के प्रिय शिष्य और भानजे अभिमन्यु से व्याहने का निर्णय करके पाण्डवों को उस

पर सहमत कर लिया था। यही कारण था कि विराट् नगरी आज नववधू की भांति सुसज्जित हो रही थी, क्योंकि न केवल यादव बल्कि महाराज द्रुपद भी अपने सम्बन्धियों सहित इस विवाह में सम्मिलित होने के लिये पधारे थे, जिस में एक ओर मत्स राज्य का सौंदर्य्य, सुकुमारता, विद्वत्ता और सुशीलता राजकुमारी उत्तरा के रूप में विद्यमान थे, दूसरी ओर वीरत्व, शौर्य और साहस अर्जुन के सुपुत्र और श्याम जी के योग्य शिष्य का रूप धारण किये थे।

विवाह-संस्कार की समाप्ति के उपरान्त वर और वधु दोनों पत्त के वृद्ध महाराज विराट् की सभा में एकत्र हुए और कुछ काल इधर-उधर के वार्त्तालाप के उपरान्त सब लोग श्याम जी की ओर देखते हुए मौन हो ग ंे, जिन्होंने सब को सम्बोधन कर के कहा :—

श्याम—महाराज युधिष्ठिर और उनके भाइयों तथा महारानी कृष्णा ने जो दुःख सहन किये हैं यह समय उनके वर्णन करने का नहीं है, परन्तु अब जब कि द्वादश वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञात-वास भी समाप्त हो चुका है आप लोगों को कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिये, जिससे धर्मराज युधिष्ठिर और सुयोधन दोनों का भला हो। महाराज युधिष्ठिर अधर्म से देवताओं का भी राज्य प्राप्त हो तो उसे स्वीकार करना नहीं चाहते, और धर्म से, एक गांव भर स्थान पर भी सन्तोष कर लेंगे। सुयोधन ने युद्ध में विजय प्राप्त करके इनका राज्य नहीं छीना, वरन छल और कपट

से द्यूत खेल कर। तिस पर भी महाराज युधिष्ठिर सदैव उसका शुभ-चिन्तन करते हैं। वह पिता का राज्य भी नहीं मांगते, वरन केवल वही राज्य चाहते हैं जो उन्होंने स्वयं अपने बाहुबल से प्राप्त किया था; परन्तु यदि उनके शत्रु अब भी इन से उसी प्रकार छल और कपट करना चाहें तो परिणाम युद्ध के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? पाण्डव इस समय संख्या में न्यून सही, क्योंकि सुयोधन ने त्रयोदश वर्ष के दीर्घ-काल में अपने सद्-व्यवहार से प्रजा को अपनी ओर करने का प्रत्येक यत्न किया है, परन्तु धर्म इधर है इसलिये कहा जा सकता है कि विजय धर्मपुत्र की होगी। परन्तु जहां तक सम्भव हो युद्ध से बचना ही उपयुक्त होगा। हमें इस समय यह यथार्थ ज्ञान नहीं कि सुयोधन क्या करना चाहता है? इसलिये मेरे विचार में तो यह उचित होगा कि इधर से किसी श्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष को दूत बनाकर महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में भेजा जाये, जो उन्हें समझा बुझा कर महाराज युधिष्ठिर को आधा राज्य देने के लिये प्रसन्न करे।

संकर्षण—श्याम जी ने उचित कथन किया है। यदि सुयोधन धर्मराज को आधा राज्य दे दे तो सब को प्रसन्नता हो जायेगी। इसलिये कोई पुरुष दोनों पक्षों में मेल कराने के लिये जा कर सुयोधन के मनोभाव ज्ञात करके कुरुओं से युधिष्ठिर का अभिप्राय कहे, वह समस्त कुरुवृद्धों और प्रजा के प्रतिनिधियों को एक स्थान पर एकत्र करके अत्यन्त नम्रता-पूर्वक सब के सन्मुख महाराज युधिष्ठिर का सन्देश कहे और उन्हें इस बात पर सहमत कर

ले। सुयोधन इस समय बलवान है, इसलिये उसके साथ नम्र-नीति ही उचित होगी। वैसे भी युधिष्ठिर द्यूत के प्रेमी थे परन्तु इस कार्य में चतुर नहीं थे, उन्हें मना भी किया गया परन्तु वह नहीं माने। और फिर खेलने बैठे जुआरियों के गुरु शकुनि से। यद्यपि उस सभा में सुयोधन इत्यादि ऐसे पुरुष उपस्थित थे जिन के साथ यह सफलता पूर्वक समान खेल खेल सकते थे। इसलिये यदि यह परास्त हुये तो इस में शकुनि अथवा सुयोधन का अपराध नहीं इस कारण जहाँ तक सम्भव हो किसी को दोष अथवा धमकी देने की अपेक्षा नम्रतापूर्वक सुयोधन को प्रसन्न कर लिया जाये तो उचित होगा।

सात्यकि—(चमक कर) मनुष्य के मुख से वही बात निकलती है जो आत्मा के भीतर हो। संसार में शूरवीर और कायर दोनों प्रकार के मनुष्य हैं। जैसे एक ही वृक्ष के एक ओर फल लगता है और दूसरी ओर फलहीन रहता है उसी प्रकार एक ही वंश में शूरवीर और कायर दोनों प्रकार के मनुष्य उत्पन्न होते हैं। (संकर्षण को सम्बोधन करके) मैं आप के कथन की निन्दा नहीं करता, उन लोगों की निन्दा करता हूं जो शान्त चित्त से आप के वचन श्रवण कर रहे हैं। मैं कहता हूं कौन पुरुष है जो धर्मात्मा युधिष्ठिर को दोष दे सकता है ? वह जूआ नहीं खेलना चाहते थे, उस में निपुण भी नहीं थे, उन्हें अपने गृह में निमन्त्रित कर के ललकारा गया और छल-कपट के पांसे फेंके गये, फिर कैसे कहा जा सकता है कि उन्हें धर्म से जीता गया ? यदि धर्मराज

अपने भवन में खेल रहे होते और उस समय सुयोधन उन्हें जीत लेता तो और बात थी, परन्तु उन्हें अपने गृह में बुला कर धोखा दिया गया। पर अब तो वनवास की शर्त भी पूर्ण हो चुकी फिर भी आप भिक्षा मांगने का उपदेश दे रहे हैं। यदि सुगमता पूर्वक कुरु राज्य देने को प्रस्तुत न हों तो अर्जुन के तीखे बाणों के अतिरिक्त और कोई उपाय उन्हें सीधा मार्ग दर्शाने का नहीं हो सकता।

यज्ञसेन—होगा वही जो सात्यकि कह रहे हैं, क्योंकि यह निश्चित् है कि सुयोधन युद्ध के बिना कुछ नहीं देगा। महाराज धृतराष्ट्र पुत्र मोह में फंसे हुये हैं, और भीष्म, द्रोण, आदि का सुयोधन अन्नदाता है इसलिये उन से इस विषय में कोई आशा रखना व्यर्थ है। वहां पर तो नम्र पुरुष को शक्ति हीन और कायर समझा जाता है। इसलिये हम लोगों को सन्धि की आशा त्याग कर शस्त्रों की देख-भाल करनी चाहिये और अपने मित्र राजाओं को सहायता के लिये निमन्त्रण भेज देने चाहियें। यह निश्चय है कि सुयोधन पूर्व से ही उस कार्य में लीन हैं, इस लिये जिन राजाओं ने उस की सहायता करने की प्रतिज्ञा कर ली होगी वह हमें सहायता न दे सकेंगे। वैसे श्याम और संकर्षण जी के कथन की पूर्ति के लिये मेरा पुरोहित जो अत्यन्त बुद्धिमान, नीतिनिपुण, और विद्वान है, महाराज युधिष्ठिर का दूत बना कर हस्तिनापुर भेज दिया जायेगा वह जहां तक बन पड़ेगा श्याम संकर्षण जी की आज्ञा का पालन करेगा, परन्तु उस वार्त्तालाप के

आश्रय पर पड़े रहना नीति के विरुद्ध है।

श्याम—महाराज यज्ञसेन जी! आप ने जो कथन किया है वह सर्वथा नीति-संगत और सोमक वंश के योग्य ही है। महाराज युधिष्ठिर को उस के अनुसार बर्त्ताव करना उचित होगा। जहां तक हमारा सम्बन्ध है कौरव और पाण्डव दोनों ही हमारे समान सम्बन्धी हैं, दोनों का व्यवहार हमारे साथ समान है, हम इस स्थान पर आये भी अभिमन्यु के विवाह के उपलक्ष में हैं, इसलिये अब हमें लौटना है। अवस्था और ज्ञान में आप हम से बड़े हैं, कृपा और द्रोण आप के सखा हैं, धृतराष्ट्र भी आप का आदर करते हैं, इसलिये आप पाण्डवों की ओर से आवश्यक सन्देश हस्तिनापुर में भेज दें। यदि आप का सन्देश मान कर सुयोधन पाण्डवों से सन्धि कर ले तो देश का नाश न होगा, और यदि इस के विपरीत हुआ तो अन्य राजाओं और इष्ट मित्रों के पास युद्ध में सहायता का निमन्त्रण भेजने के पश्चात हमें भी बुला भेजियेगा। फिर जो ईश्वर इच्छा!

अर्जुन और सुयोधन श्याम जी के शयन गृह में

महाराज यज्ञसेन का पुरोहित अपने समस्त बुद्धि-बल तथा चातुर्य्य का व्यय करके भी हस्तिनापुर से निराश हो लौटा। उसने महाराज धृतराष्ट्र से आधा राज्य छोड़ एक-एक पाण्डव के लिये एक-एक ग्राम की याचना की, परन्तु सुयोधन की ओर से 'न' हां में परिणित न हुई। तदनुसार दोनों ओर अपने-अपने सहायकों की सहायता के लिये भाग-दौड़ आरम्भ हुई। महाराज यज्ञसेन का अनुभव इस घटना की पूर्व से ही सूचना दे रहा था, इसलिये उन्होंने आसाम (प्राग-ज्योतिष) और अराकान से लेकर पंचनद, काबुल और गान्धार तक अपने सम्बन्धियों, पाण्डवों के सम्बन्धियों तथा महाराज विराट के सम्बन्धियों और उनके मित्रों तथा अन्य राजाओं को प्रत्येक उपाय से अपनी सहायता के लिए निमन्त्रण देने के लिये चतुर दूत दौड़ा दिये। दूसरी ओर सुयोधन और उसके सहायक भी कच्ची गोलियां नहीं खेले थे, वह अपना उद्देश्य पूर्व से ही निश्चित किये बैठे थे। उन्होंने विराट राज्य में पाण्डवों के जनता के सन्मुख आने का समाचार पाते ही युद्ध की तैय्यारियां आरम्भ कर दी थीं, परन्तु

उस समय तक दोनों दल विश्वस्त रूप से यह कहने के योग्य नहीं थे कि देशभक्त श्याम किस ओर होंगे? विराट नगर से विदा होते समय वह महाराज यज्ञसेन और पाण्डवों को जो कुछ कह आये थे उससे प्रतीत होता था कि वह यथाशक्ति भारत देश में रक्त-पात को रोकेंगे, क्योंकि दोनों ओर उनका सम्बन्ध समान था, इसलिये दोनों दल इसी बात के इच्छुक थे कि भगवान श्याम उनका साथ दें, क्योंकि यह विचार किया जाता था कि जिधर श्याम होंगे उसी की विजय होगी।

रात्रि के तीन प्रहर व्यतीत हो चुके थे, चौथा समाप्त हो रहा था। सब ओर शान्ति का साम्राज्य था, पहरेदारों की हू हा के अतिरिक्त और कोई शब्द कर्ण-गोचर न होता था, जबकि द्वारवती के मुख्य-द्वार के बाहर रथ के पहियों की घरघराहट सुनाई दी। द्वार रक्षक ने उसे सुना तो बोला, "कौन? सावधान जो आगे बढ़ा।" रथ रुका, और उस में से एक उत्तम वस्त्रों से सुसज्जित सुन्दर नवयुवक बाहर निकल कर बोला—"द्वारपाल! हम हस्तिनापुर से आरहे हैं, श्याम जी से भेंट करना चाहते हैं। बहुत आवश्यक कार्य है, इसलिये इसी समय उन्हें सूचित कर दो।"

द्वारपाल—आप इस समय उन से नहीं मिल सकते, क्योंकि श्याम जी विश्राम-गृह में हैं। वह चार घड़ी प्रातः उठते हैं, नगर के द्वार भी उसी समय खुल जायेंगे, फिर आप उन के दर्शन कर सकते हैं।

आगन्तुक—परन्तु कार्य जिसके लिये हम दूर की यात्रा कर के

आये हैं इतना आवश्यक है कि महाराज को जागना ही पड़ेगा।

द्वारपाल—मैं आप को अपने उत्तरदायित्व पर नगर के भीतर प्रविष्ट होने की आज्ञा नहीं दे सकता। दुर्गपाल जी अभी चक्कर काटते हुये आने वाले हैं, आपने जो कथन करना हो उनसे कर लीजये।

आगन्तुक को विवश हो कर दुर्ग के बाहर रुकना पड़ा, परन्तु अल्प-काल में ही दुर्गपाल चक्कर लगाते हुये आगये, और जिस समय आगन्तुक ने उन्हें बताया कि वह हस्तिनापुर के राजकुमार महाराज सुयोधन हैं तो वह स्वयं उन्हें अपने साथ श्याम जी के भवन की ओर ले गये।

उन्हें उस स्थान पर पहुंचे अभी अल्पकाल ही हुआ था कि एक और नवयुवक रथ को दौड़ाता हुआ इधर आता दृष्टिगोचर हुआ। यह पाण्डवकुमार अर्जुन था।

श्याम जी शयन कर रहे थे। सेवक सुयोधन को उन के शयन कक्ष में ले गया और वह उनके सिरहाने के निकट पड़े आसन पर बैठ कर उनके जागने की प्रतीक्षा करने लगा। इसी प्रकार अर्जुन भगवान के चरणों के समीप नीची दृष्टि किये उनके जागने की प्रतीक्षा में था कि आहट से श्याम जी की आंख खुल गई, और उन्होंने उठते ही कहा "अहा! अर्जुन! आप कब आये?"

सुयोधन(उतावली से) भगवन! प्रथम में आया हूं, और यदि भूल नहीं करता तो हम दोनों के आने का प्रयोजन एक ही है।

श्याम (मुड़ कर) ओहो ! क्षमा करना ! मेरी दृष्टि प्रथम पांयते की ओर ही गई । आज्ञा कीजिये इतना आवश्यक क्या कार्य है जिस के लिये रात्रि को यात्रा करनी पड़ी ?

सुयोधन—आप को विदित ही है हम भ्राताओं का युद्ध शीघ्र आरम्भ होने वाला है। उस में सहायता की आवश्यकता है। आप इस समय भारत ही नहीं जगतशिरोमणी हैं। इसलिये हमारी सहायता कीजिये। महात्मा सज्जन सदैव प्रथम प्रार्थना करने वाले पर दया दृष्टि किया करते हैं।

श्याम—(कुछ सोच कर) युद्ध न होता तो भला था, क्योंकि इस का परिणाम देश के विनाश के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता, जिसे कोई भी देशभक्त रक्त के अश्रु बहाये बिना नहीं निहार सकता। परन्तु आप लोग इस पर तुल गये हैं और हमें भी इस में भाग लेने के लिये विवश कर रहे हैं। हमारे लिये आप दोनों समान हैं, और एक शरीर का दोनों ओर होना असम्भव है। इसलिये यदि आप सहमत हों तो मैं यह प्रस्ताव करता हूं कि एक ओर मेरी नारायणी सेना होगी, जिस का एक-एक व्यक्ति मुझ से अधिक शूरवीर है; दूसरी ओर मैं अकेला होऊंगा और मैंने यह प्रतिज्ञा कर ली है कि भाइयों-भाइयों के इस युद्ध में मैं शस्त्र नहीं उठाऊंगा (अर्जुन को सम्बोधन करके) अर्जुन ! तुम कनिष्ठ हो कहो क्या पसन्द करते हो ?

अर्जुन—भगवन ! मुझे सेना की आवश्यकता नहीं। मुझे आप की आवश्यकता है। आप शस्त्र न उठायें, इस कार्य के लिये

हम थोड़े नहीं।

श्याम—सुयोधन ! कहो क्या आज्ञा है ?

सुयोधन—आप को अर्जुन ने मांग लिया, मुझे नारायणी सेना दे दीजिये, उस के लेने में मुझे आपत्ति नहीं।

श्याम जी की बुद्धि ने कठिन समस्या का सुगम हल कर दिया और सुयोधन अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन से विदा हो कर संकर्षण जी की सेवा में उपस्थित हुआ, परन्तु उन्होंने इस झगड़े में हस्तक्षेप करने से सर्वथा मना कर दिया, तत्पश्चात उस ने अन्य यादव नेताओं से वार्त्तालाप किया। उन में से कुछ ने उस की सहायता करना स्वीकार कर लिया और कुछ ने पाण्डवों की। तदनुसार कृतवर्मा ने अपने साथियों सहित कुरु सेना में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया, परन्तु सात्यकि ने जिस का युद्धकौशल अर्जुन से न्यून न था, अपनी सेना के नेतृत्व में अर्जुन की सहायता करना स्वीकार किया।

सुयोधन के विदा होने पर श्याम जी ने मुस्कराते हुये अर्जुन से कहा:—

श्याम—अर्जुन ! तुम ने क्या विचार कर मुझ निःशस्त्र को मांगा ?

अर्जुन—(कर जोड़ कर) भगवन ! मुझे ज्ञात है कि आप शस्त्र धारी हो कर अकेले ही कुरु सेना तो क्या समस्त विश्व की सेनाओं का सामना कर सकते हैं, परन्तु इस युद्ध में आप की इच्छा यह प्रतीत होती है कि हम अपना

शूरवीरता के जौहर दिखायें। इस परीक्षा के लिये हम प्रत्येक प्रकार से तैय्यार हैं। यदि आप का वरद हस्त हमारी पृष्ठ पर हो तो अर्जुन अकेला कुरु शूरवीरों को युद्ध-भूमि में परास्त करने का साहस रखता है। परन्तु इस समय मेरी इच्छा यह है कि आप मेरे रथ के घोड़ों की वागें अपने हाथ में लेकर युद्ध-क्षेत्र में मेरे सारथी का कार्य करें। आशा है कि यह आप की प्रतिज्ञा के विरुद्ध नहीं होगा।

श्याम—अर्जुन! मुझे तुम से यही आशा थी। मैं सहर्ष तुम्हारा सारथी बनना स्वीकार करता हूं। आशा है कि मेरी अश्व-विद्या इस कार्य में मेरी सहायक होगी।

संजय का दूत कार्य

सप्त अक्षौहणी सेना का नेतृत्व करते हुये महाराज युधिष्ठिर उप सव्य के स्थान पर शिवर डाले थे । महाराज धृतराष्ट्र को उन के सम्बन्ध में प्रत्येक सूचना पहुंच रही थी और वह उन्हें सुन-सुनकर व्याकुल हो रहे थे । उनका आत्मा उन्हें बता रहा था कि यह युद्ध भारत भर के नाश का कारण होगा, उन का हृदय इस बात की साक्षी दे रहा था कि यह युद्ध रुक सकता है यदि पाण्डवों के साथ न्याय करके उन्हें उन का राज्य अथवा न्यून से न्यून उस का उचित भाग लौटा दिया जाय, उन्हें मंत्रणा देने वाले भीष्म, द्रोण, कृपा और विदुर ऐसा करने की सम्मति देते थे, और उन्हें विदित था कि उन की यह मंत्रणा दोनों दलों की भलाई के लिये है; परन्तु सुयोधन, कर्ण, शकुनि, दुःशासन जैसे उन के सलाह देने वाले इसके लिये तैय्यार नहीं थे। उनका कथन था कि वह राज्य विजय किया जा चुका है, यदि युद्ध में नहीं तो द्यूत में ही सही; इसलिये पाण्डवों का उस पर कोई अधिकार नहीं रहा। उन्हें बताया गया कि अधिकार के प्रश्न को छोड़ कर एक ही पितामह की सन्तान होने के कारण निर्वाह के लिये पाण्डवों को कुछ न कुछ दिया जाना चाहिये, परन्तु उन का उत्तर यह था कि यदि पाण्डवों को कुरु राज्य में से

सूई भर भूमि भी दी गई तो सुयोधन राज्य को त्याग कर आत्म-हत्या कर लेगा। महाराज धृतराष्ट्र पुत्र के हठ को जानते थे, उन्हें विदित था कि वह जो कुछ कहता है कर दिखाता है, स्वयं उन में यह साहस न था कि बल प्रयोग करके उसे इस से रोक सकें, इसलिये सब कुछ जानते हुये भी वह विधाता को कोस कर रह जाते थे; परन्तु आज जिस समय से उन्हें यह सूचना प्राप्त हुई है कि देशभक्त श्याम ने पाण्डवों की सहायता में अर्जुन का सारथ्य स्वीकार कर लिया है, उन के दुःख की सीमा नहीं रही, क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि अर्जुन ने आज पर्य्यन्त किसी रणक्षेत्र में पृष्ठ नहीं दिखाई। उन्हें यह भी विदित है कि श्याम धर्म और नीति के अवतार हैं और यह लोकोक्ति कि "जहां धर्म हैं वहां श्याम हैं और जहां श्याम हैं वहां विजय है" आज पर्य्यन्त असत्य प्रमाणित नहीं हुई। इसलिये उन का हृदय उन्हें पुकार-पुकार कर कह रहा है कि श्याम के सारथी बनने पर अर्जुन अजेय हो गया है, और उस के सन्मुख एक कर्ण क्या (जिस के बल पर सुयोधन गर्व कर रहा है) सहस्र कर्ण भी हों, तो सफल नहीं हो सकते।

अत्यन्त सोच विचार के पश्चात् उन्होंने अपने निज अमात्य संजय को बुलाया और उस के आने पर उसे सम्बोधन कर के बोले:—

धृतराष्ट्र—मैं इस समय परम दुःखी हूं, और चाहता हूं कि तुम मेरी ओर से उपप्लव्य जाकर धर्मराज युधिष्ठिर से यह कहो कि

भावी युद्ध का विचार त्याग दें। उन्हें मेरी ओर से आशीर्वाद दे कर कहना कि सुयोधन से निराश होकर मैंने उन की ओर ध्यान किया है। वह मेरे वैसे ही सुपुत्र हैं जैसे सुयोधन। परन्तु जहां सुयोधन मेरी किसी बात को मानने पर उद्यत नहीं वहां उन से मुझे बहुत सी आशाएँ हैं। उन्हें समस्त ऊँच-नीच समझाकर कहना कि यदि सुयोधन किसी बात को न भी माने तो भी वह युद्ध का विचार त्याग दें, क्योंकि इस में वंश का, देश का, जाति का, अनिष्ट है। युधिष्ठिर श्याम जी की बात बहुत मानते हैं, तुम मेरी ओर से श्याम जी की सेवा में उपस्थित होकर उन से नम्रता-पूर्वक कहना कि उन का देश-प्रेम आज किसी को अज्ञात नही, वह युधिष्ठिर जी को समझा बुझा कर इस युद्ध को रुकवा दें, जिस का परिणाम देश-वासियों के वध के अतिरिक्त और कुछ नही। यदि मेरा यह कथन फलीभूत हो सके तो मैं समझूंगा कि मेरा जीवन व्यर्थ नहीं गया।

"जो आज्ञा" कह-कर संजय महाराज से विदा हुये और कुछ काल में ही उपप्लव्य पहुंच कर साधारण शिष्टाचार के उपरान्त महाराज युद्धिष्ठिर से कहने लगे:—

संजय—धर्मराज! महाराज धृतराष्ट्र यद्यपि प्रज्ञा-चक्षु हैं परन्तु उन का एक नेत्र सुयोधन है और दूसरा आप। आप भ्राताओं का युद्ध उन की समझ में नहीं आता। वह जानते हैं कि आप, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, श्याम, सात्यकि, यज्ञसेन, धृष्टद्युम्न, विराट चेकितान इन में एक भी ऐसा

नहीं जिसे परास्त करने का दावा कोइ निपुण से निपुण योद्धा भी कर सके। दूसरी ओर भीष्म, द्रोण, कर्ण, सुयोधन, अश्वत्थामा, शाल्य, कृपा आदि अनेक शूरवीर हैं जिन्हें विजय करने वाले को मृत्यु से युद्ध करना पड़ेगा। इसलिये यह कथन कि आप अथवा सुयोधन इस भयंकर रक्तपात में विजयी होंगे असम्भव है; परन्तु यह निश्चय है कि जो विजय प्राप्त करेगा वही परास्त होगा। क्योंकि यह विजय जाति, देश, नही-नहीं कुरु-वंश को नष्ट कर के होगी, और विजयता युद्ध के अन्त में जिस समय नेत्र उठा कर देखेगा तो उसे चारों ओर विनाश के अतिरिक्त और कुछ दृष्टि-गोचर न होगा। इसलिये महाराज की यह इच्छा है कि आप युद्ध का विचार त्याग दें और जैसे भी हो सके सुयोधन से सन्धि करलें। वह हठी है, परन्तु आप धर्म के तत्व को समझते हैं। आप का समग्र जीवन एक उज्वल वस्त्र की भाँति है जिस में यह वृथा रक्त-पात एक काले धब्बे के समान दूर से दृष्टि-गोचर होता रहेगा। महाराज जानते हैं कि आप अहिंसा के अवतार हैं, इसलिये उन की आज्ञा है कि आप को चाहे कितना भी त्याग करना पड़े वंश नाश के विचार को सन्मुख रखते हुये भावी रक्त-पात को रोकिये। धन्य हैं वह पुरुष जो जगत हित के लिये प्रत्येक प्रकार के कष्ट सहन करते हैं!

युधिष्ठिर—संजय! मेरे मुख से तुम ने युद्ध की इच्छा कब श्रवण की है जो उसे त्यागने के लिये कह रहे हो? हम लोग तो सदैव इस बात के लिये कष्ट सहन करते रहे हैं कि किसी प्रकार

देश, जाति, और वंश पर कोई आपत्ति न आये। परन्तु जिस प्रकार हमारे इन शुभ विचारों को पददलित किया गया है। वह विश्व को विदित है। शोक है कि महाराज धृतराष्ट्र यह सब कुछ देखते रहे और उन का हृदय आर्द्र न हुआ। हम लोगों का समस्त राज्य छीन लिया गया, हमें वन-वन की खाक छानने पर विवश किया गया, और इस पर भी बस न कर के वनों में भी हमें नाश करने के उपाय किये गये और यदि विदुर जैसे ने जिह्वा हिलाई तो उसे देश से निर्वासित कर दिया गया! परन्तु आज जब पापी का पाप बलवान होकर उसे नष्ट करने के लिये तैय्यार है, उनका कोमल हृदय द्रवित हो रहा है। निस्सन्देह वह जानते हैं कि कर्ण लाख कहे वह अर्जुन के तीखे बाणों को सहन नहीं कर सकता। सुयोधन कुछ भी डींग मारे भीम से गदा युद्ध में जीत नहीं सकता। इसलिये पुत्र स्नेह उन्हें कष्ट दे रहा है। निस्सन्देह भरी सभा में कृष्णा का अपमान ऐसी घटना नहीं जिसे सुगमता-पूर्वक भुला दिया जा सके। परन्तु हम उसे भी भुलाने को प्रस्तुत हैं यदि हमारा इन्द्रप्रस्थ का राज्य लौटा दिया जाये।

संजय—महाराज! आपको कुछ समझाने का यत्न करना छोटा मुख बड़ी बात है। परन्तु मैं तो यही कहूँगा कि वंश का नाश करके राज्य प्राप्त करने की अपेक्षा गली-गली और गृह-गृह में भिक्षा माँगकर निर्वाह कर लेना भला है। आप ने इतने वर्षों पर्य्यन्त वनों की खाक छानी, जाड़ा और ग्रीष्म, क्षुधा और तृषा के कष्टों को

सहन किया, किस कारण ? केवल इस कारण कि आप धर्म के विरुद्ध कोई कर्म नहीं करना चाहते। नहीं तो जिस समय भरी सभा में महारानी कृष्णा की निरादरी की गई थी आप शत्रु का समस्त ऋण चुका सकते थे। उस समय राज्य आपके हाथ में था, सेना सुयोधन के हाथों में नहीं गई थी, देशों-देशों के राजा आपकी पृष्ठ पर थे, परन्तु आपने देश-हित, जाति-हित और वंश-हित के विचार से क्रोध को थूक दिया। फिर मुझे यह समझ में नहीं आता कि अब इतने समय के व्यतीत होने पर, शत्रु को बलवान होने का अवसर देने के पश्चात्, आपको यह लोभ क्यों चिमट गया है ? निस्सन्देह यदि सुयोधन आपको राज्य न दे तो जिस प्रकार अब तक निर्वाह किया है उसी प्रकार भविष्य में भी कर सकते हैं। आप वैराग्य का आश्रय लेकर योगाभ्यास करते हुये परलोक को सुधार सकते हैं। ज्ञान का आश्रय लेकर मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। यदि राज्य अपने तथा परायों का रक्त बहा कर लिया भी, तो किस अर्थ ? आज नहीं तो अल्पकाल पश्चात्, अल्प नहीं तो दीर्घ काल पश्चात्, उसे त्यागना है फिर उसके लिये द्रोण जैसे गुरु, भीष्म जैसे वृद्धों और सुयोधन सरीखे भ्राताओं के रक्त से क्यों हाथ रँगे जायें ? इसलिये मैं तो पुनः आपको यही सम्मति दूंगा कि यदि आपके सहायक आप को इसमें लगा रहे हैं तो उन्हें इसका दायित्व अपने ऊपर लेने दीजिये, और आप इस घोर पाप-कर्म से पृथक् हो जाइये।

युधिष्ठिर—संजय ! मैं इस बात को मानता हूँ कि मनुष्य को

धर्मानुकूल कर्म करना चाहिये, परन्तु धर्म का समझना सुगम नहीं। साधारण धर्म और है आपत्ति काल का धर्म और। जो दोनों का सम्मिश्रण करता है वह भूल करता है। हम क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय का साधारण धर्म सन्यास-धर्म नहीं है, जिसका तुम मुझे उपदेश देने लगे हो। आज इस समय जगत् में श्याम जी से अधिक धर्म के तत्व का ज्ञाता अन्य कोई नहीं, इसलिये मैं यह निर्णय उन्हीं पर छोड़ता हूँ कि मुझे क्षत्रिय-धर्म को त्याग कर सन्यास-धर्म ग्रहण करना उचित है अथवा नहीं। महायशस्वी श्याम जी इसका उत्तर देंगे; वह दोनों पक्षों की शुभ कामना करते हैं, देश के महान-तम राजा, योद्धा और शूरवीर उनके चरणों में बैठ कर नीति और धर्म की शिक्षा को ग्रहण करना अपने लिये गर्व का विषय समझते हैं। निस्सन्देह वह जो कुछ कथन करेंगे हम उसे शिरोधार्य्य करेंगे।

श्याम—संजय! जैसे मेरी यह इच्छा है कि पाण्डव सुखी रहें उसी प्रकार मैं यह भी चाहता हूँ कि धृतराष्ट्र और उनके पुत्रों की दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति हो। इसलिये मेरी सदैव यह इच्छा रही है कि इन भाइयों-भाइयों में सन्धि हो जाये। स्वयं युधिष्ठिर यही इच्छा रखते हैं; परन्तु इस इच्छा की पूर्ति कठिन दीख पड़ती है क्योंकि महाराज धृतराष्ट्र और उनके पुत्र राज्य-लोभ को त्यागने को तत्पर नहीं। संजय! तुम्हें ज्ञात है कि महाराज युधिष्ठिर ने आज पर्य्यन्त धर्म-मार्ग को नहीं त्यागा, वह इस समय अपनी कार्य-पूर्ति के लिये जो उद्योग करना चाहते हैं तुम उन्हें धर्म की

भूल-भुलैय्यों में डाल कर उससे विचलित करना चाहते हो। क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि शास्त्र की आज्ञा के अनुसार पवित्र आचरण सहित कुटम्ब-पालन करते हुए वेद-पाठ करना मनुष्य का धर्म है, तिस पर क्षत्रिय का धर्म है प्रजा का पालन, दान और यज्ञ, वेद का अध्ययन, विवाह करके गृहस्थाश्रम में रहकर पुण्य-कार्य करना। क्या तुम चाहते हो कि युधिष्ठिर अपने इस धर्म से विमुख हो जायें? इसमें सन्देह नहीं कुछ लोग ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि कर्म को त्याग कर वेदोक्त आत्म-विद्या ही सिद्धि का मार्ग है, परन्तु जैसे खाद्य-पदार्थों को खाये बिना क्षुधा-पिपासा नहीं निवृत्त हो सकती इसी प्रकार कर्म किये बिना केवल ज्ञान से मोक्ष अथवा सिद्धि की प्राप्ति नहीं हो सकती। कर्म के बल से ही वायु बहता है, कर्म से ही सूर्यदेव आलस्य त्याग कर आकाश-मण्डल में घूमते हुए रात्रि-दिवस उत्पन्न करते हैं, चन्द्रमा कर्म करते हुये ही नक्षत्रों के साथ मास-पक्ष आदि निर्माण करते हैं, अग्निदेव कर्म के प्रभाव से ही प्रज्ज्वलित होकर प्रजा को उष्णता पहुँचाते हैं, पृथ्वी कर्म के बल से संसार का भार उठाये है, नदियाँ कर्म के बल से ही रात्रि-दिवस चलती हुई जगत् को सुखी कर रही हैं, इन्द्र कर्म के प्रभाव से ही सब स्थानों पर वर्षा करते हैं। ऋषि, मुनि, देवता, गन्धर्व सब कर्म के ही कारण अपनी-अपनी पदवी को प्राप्त करते हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कर्म को त्याग दें तो उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कौन कहे? इसलिये कर्म-त्याग का उपदेश एक निष्फल उपदेश है।

राजा का धर्म है चारों वर्णों की रक्षा करना और उनको अपने-अपने कर्त्तव्यों में प्रवृत्त करना, काम, क्रोध, लोभ आदि से बचकर सब प्रजा को समान दृष्टि से देखना, अधार्मिक पुरुषों को किसी स्वार्थ में पड़कर दण्ड दिए बिना न छोड़ना। जो राजा इन कर्मों को नहीं करता और लोभ से अन्धा होकर पर-ऐश्वर्य को छीन लेना चाहता है वह राज्य-पद से पतित होकर डाकू बन जाता है। उसे सन्मार्ग पर लाने के लिये धनुष, खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र निर्माण हुये हैं। इस प्रकार के डाकू को नष्ट करना पुण्य कार्य है। यह युद्ध रचना का आधार है। इस समय कुरुओं ने छल-कपट से वह दोष धारण कर लिये हैं जिनसे युद्ध आरम्भ होते हैं। उन्होंने चोर और डाकुओं की भांति पाण्डवों का राज्य ले लिया है और अब अपने उस कार्य को धर्म-धर्म की दुहाई देकर छिपाना चाहते हैं। पाण्डवों ने बनवास की शर्त इस समझौते पर स्वीकार करली थी कि उसके पूर्ण होने के पश्चात् इनका राज्य इन्हें लौटा दिया जायेगा। यह इस प्रकार अपना राज्य सुयोधन के निकिट धरोहर छोड़ गये थे। वह उन्हें वापिस नहीं देता। पाण्डव सुयोधन का राज्य नहीं मांगते, केवल अपना राज्य चाहते हैं, और जब उसे देने से इन्कार हो तो युद्ध के अतिरिक्त और क्या उपाय रह जाता है?

संजय! जिस समय द्यूत सभा में रजस्वला कृष्णा को घसीट कर लाया गया था, और वह दुखी हृदय से पुकार कर रही थी, उस समय भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र सब के सब क्यों मौन साधे रहे?

और तो और तुम भी वहीं थे, तुमने उस समय यह धर्म का उपदेश क्यों उठा रक्खा, जिसे आज महाराज युधिष्ठिर को सुनाने के लिये आये हो ? यदि उस समय तुम में से किसी की भी जिह्वा हिलती तो यह अवसर ही क्यों आता ? ले-देकर सारी सभा में एक विदुर थे, जिन्होंने धर्म की बात कही; परन्तु किसी ने उनका अनुमोदन न किया। उस समय कर्ण के शब्द थे "द्रौपदी ! अब तुम्हारे लिये इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं कि सुयोधन के गृह में दासी बन कर रहो। तुमको हार जाने के कारण युधिष्ठिर अब तुम्हारे पति नहीं रहे, तुम किसी अन्य को अपना पति स्वीकार कर लो" क्या यह शब्द किसी अन्य को कह कर फिर उसे धर्म की शिक्षा देने का साहस किया जा सकता था ? छल-कपट के पांसे फेंक कर शकुनि ने महाराज युधिष्ठिर से कहा था "भाइयों को हारकर अब तुम्हारे पास क्या है ? अब द्रौपदी को दांव पर लगा कर भाग्य की परीक्षा करलो", क्या यह शब्द धर्म और नीति के अनुसार थे ?

परन्तु नहीं, उन बातों को विस्मरण किया जा सकता है यदि महाराज धृतराष्ट्र और सुयोधन न्याय से कार्य लेना चाहें, (युधिष्ठिर को सम्बोधन करके) मैं भावी रक्त-पात को रोकने का यत्न करूंगा, और इस आशय से स्वयम् हस्तिनापुर पहुँच कर कुरुओं को सारा ऊंच-नीच समझाऊंगा। यदि सफलता होगई तो इससे भली बात और क्या हो सकती है ? (संजय को सम्बोधन करके) किन्तु यह तभी हो सकता है जब कुरु मेरी निष्पक्ष बातों को

श्रवण करके उन पर ध्यान दें। यह न हुआ तो जो होना है होकर रहेगा क्योंकि भावी को रोकने वाला इस संसार में अभी उत्पन्न नहीं हुआ।

संजय—आपका कल्याण हो, अब मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। मन की चंचलता के कारण यदि मुख से कोई अनुचित शब्द निकल गया हो तो क्षमा-प्रार्थी हूं।

कर्ण-प्रतिज्ञा

संजय महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने वह सब वार्त्तालाप जो महाराज युधिष्ठिर और श्याम के साथ हुआ था उन्हें बता कर कहा:—

संजय—महाराज ! पाण्डव लोगों के यहाँ मैंने जो थोड़ा समय व्यतीत किया है, उसमें मुझे कुछ ऐसी बातों का ज्ञान हुआ है जिन्हें जान कर मैं श्री महाराज से यह विनय किये बिना नहीं रह सकता कि अब भी कुछ नहीं बिगड़ा, यदि किसी प्रकार भाइयों-भाइयों में सन्धि हो जाय तो उसमें सब का लाभ है। क्योंकि द्वादश वर्ष के बनवास और तेरहवें वर्ष के अज्ञातवास को पाण्डव लोगों ने वनों में भ्रमण और ब्राह्मणों से धर्म-शिक्षा ग्रहण करने में ही नहीं व्यतीत किया वरन् उस दीर्घकाल में जबकि हम लोग इस विस्तृत राज्य की देखभाल कर रहे थे, उन्होंने भारत के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक भ्रमण करके देश-देश और जाति-जाति के शस्त्रास्त्रों की शिक्षा ग्रहण की है। नारायण अस्त्र, वायव्य अस्त्र इत्यादि पर तो उन्हें प्रथम से ही पूर्ण अधिकार था, पाशुपत अस्त्र, इन्द्र अस्त्र, इत्यादि अन्य अनेक अ उन्होंने इस भ्रमण में प्राप्त किये हैं। उनके अतिरिक्त और अनेक अस्त्र हैं जो अभी तक जगत के सन्मुख नहीं आये। कहा जाता है कि उन शस्त्रों

में लाखों मनुष्यों को क्षण-भर में नष्ट करने की शक्ति है। यदि युद्ध आरम्भ हो गया, तो हम लोगों के धनुष, गदा, खड्ग इत्यादि सब-के-सब उनके सन्मुख व्यर्थ प्रमाणित होंगे। वह अस्त्र इस समय पर्य्यन्त अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव ने किसी पर प्रगट नहीं किये और उनके रहस्य को यत्नपूर्वक गुप्त रक्खा जा रहा है।

धृतराष्ट्र—(काँप कर) सम्भव है ऐसा ही हो। इसीलिये मैं तो बहुत समय से कह रहा हूं कि पाण्डवों को उनका भाग लौटा कर उनसे सन्धि कर ली जाय। उन्हें शत्रु बनाकर हम अपनी शक्ति को घटा रहे हैं। (सुयोधन को सम्बोधन करके) वत्स ! यदि तुम भाई-भाई एक हो जाओ तो संसार में क्या कुछ नहीं कर सकते ?

सुयोधन—पिताजी ! आप तनिक-सी बात का विचार करके उसके परिणाम को अधिक-से-अधिक बढ़ा लेते हैं। यदि संजय सत्य कह रहे हैं तो युधिष्ठिर पाँच गाँव की भिक्षा क्यों माँग रहा है ? निस्सन्देह यदि उसकी शक्ति इतनी महान् है तो उसे युद्ध से पीछे हटने की आवश्यकता नहीं। शेष रहा अस्त्र-शस्त्रों और दिव्य अस्त्रों का विषय, सो कदाचित् आपको ज्ञात नहीं कि श्री परशुरामजी के योग्य शिष्य अंगेश महाराज, जो दिव्य अस्त्रों के विशेषज्ञ हैं हमारी पृष्ठ पर हैं, उनके दिव्य अस्त्रों के सम्मुख ठहरने की शक्ति मनुष्य तो एक ओर देवताओं में भी नहीं।

कर्ण—श्री महाराज ! आपको ही नहीं सर्व विश्व को विदित है

कि श्री परशुरामजी से अधिक दिव्य-अस्त्रों का ज्ञाता जगत में नहीं। हमने उनके चरणों में बैठ कर धनुर्विद्या ग्रहण की है। समय बतायेगा कि हमारे दिव्य अस्त्र युद्ध-भूमि में क्या कुछ करने की शक्ति रखते हैं ?

भीष्म—कर्ण ! तुम जब भी बोलोगे अपनी प्रशंसा किये बिना नहीं रहोगे। मान लिया कि तुमने श्री परशुराम जी से धनुर्विद्या ग्रहण की है, पर तुम्हें यह भी भूला नहीं होगा कि श्री परशुराम जी ने अपनी अस्त्रविद्या के गुप्त रहस्य ब्राह्मणों के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताए, इसीलिये हम कह सकते हैं कि तुम्हारे दिव्य अस्त्र परशुरामजी के अस्त्रों की नक़ल भले ही हों, उनके अस्त्र नहीं हैं। नीतिज्ञ सदैव यह कथन करते आये हैं कि शत्रु की शक्ति को अल्प समझने वाला दुःख पाता है: परन्तु तुम और तुम्हारी सम्मति से युवराज सुयोधन शत्रु की शक्तियों की ओर से नेत्र मूंद रहे हैं। संजय ने जो कथन किया है वह सत्य हो अथवा असत्य, परन्तु इससे कौन इन्कार कर सकता है कि पाण्डव क्षत्रिय हैं और उन्हें हम लोगों के विरुद्ध शिकायत है ? युधिष्ठिर नीतिज्ञ हैं, अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव युद्धविद्या विशारद हैं, और उन्होंने पिछले तेरह वर्ष वनों में वृक्ष-गणना में व्यतीत नहीं किये होंगे। उनके दिव्य अस्त्र अभी तक गुप्त हैं, और यदि तुम्हारी कृपा से युद्ध छिड़ गया तो कौन जाने क्या होकर रहेगा ?

कर्ण—आप तो सदैव पाण्डवों के ही गुणगाण करते रहे हैं और करते रहेंगे।

भीष्म—इसलिये कि मुझे शत्रु की शक्ति की ओर से नेत्र मूंदने में कोई लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता।

कर्ण—नहीं, इसलिये कि आप कौरवों की सेवा करते हुये पाण्डवों का भला चाहते हैं।

भीष्म—कौरव और पाण्डव दोनों मेरे अंग हैं। मुझे तुम्हारी भाँति भाइयों-भाइयों में शत्रुता डलवा कर अपने शत्रु से प्रतिशोध नहीं लेना। इस कारण यदि मैं दोनों पक्षों का भला चिन्तन करता हूं तो इस में बुराई कौन सी है?

कर्ण—(सुयोधन से) सुन लिया आप ने! यह महात्मा शत्रु का भला चाहते हैं, शत्रु को अपने राजा के साथ एक ही पलड़े में रखते हैं, और मुंह आते हैं हम लोगों के जिन्होंने अपना सर्वस्व आप की सेवा में न्योछावर कर रक्खा है।

भीष्म—महाराज को विदित है और इस सभा को ज्ञात है, भाइयों-भाइयों को एक दूसरे के शत्रु बनाने वाले तुम हो। द्रुपद-कुमारी ने स्वयंवर में तुम्हें लज्जित किया था, उस का प्रतिकार तुम ने उसे भरी सभा में अपमानित करके लिया। अर्जुन ने तुम्हें "सूतपुत्र" पुकारा और उसे युद्ध में पिछाड़ने के लिये तुम इस भयंकर हत्या-काण्ड की नींव रख रहे हो। परन्तु जिस समय युद्ध क्षेत्र में पहुंचोगे तो ज्ञात होगा कि शूरवीरों का सामना बालकों का खेल नहीं। क्या तुम बता सकते हो कि आज पर्य्यन्त तुम ने किस क्षेत्र में विजय प्राप्त की है? अरे! जब गन्धर्व लोग कौरवों को बांध कर लिये जाते थे उस समय तुम कहां थे? जब

विराट नगरी के युद्ध में सारे कौरवों को परास्त कर के अर्जुन ने हम सब लोगों के वस्त्र तक भी उतार लिये थे उस समय तुम्हारे दिव्य अस्त्र कहां छिपे पड़े थे ? क्या उस के पश्चात् तुमने कोई नवीन गुप्त अस्त्र निर्माण किया है जो भावी युद्ध में उपयोग में आयेगा ?

सुयोधन (भीष्म से) पितामह जी ! आप अंगेश महाराज के पराक्रम को नहीं जानते। इस विश्व में यदि कोई योद्धा अर्जुन को धनुष-विद्या में परास्त करने की शक्ति रखता है तो वह केवल कर्ण है।

भीष्म—वह समय दूर नहीं जब तुम्हारा यह स्वप्न भी भंग हो जायेगा। निस्संदेह जो गरजते हैं वर्षा बहुत कम करते हैं।

कर्ण — भीष्म जी ! आप कौरवों के पितामह हैं इस कारण मेरे लिये पूज्य हैं। आप ने पाण्डवों की जिन शब्दों में प्रशंसा की है सम्भव है वह ऐसे ही हों, परन्तु कर्ण दो स्वामियों का सेवक नहीं। आप ने आज इस भरी सभा में, श्री महाराज के सन्मुख, उस का जो तिरस्कार किया है उस का प्रतिशोध लिया जाना चाहिये था, परन्तु महाराज सुयोधन का प्रेम मार्ग में बाधक है इसलिये मैं केवल यही कहूंगा कि मैं उस समय पर्य्यन्त अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं करूंगा जब तक आप जीवित हैं। मुझे अपनी शक्ति आप की शक्ति में मिला कर उस को उन्नित करना स्वीकार नहीं। हां, जिस समय पाण्डवों के बाण आप को रण-क्षेत्र से बाहर निकाल देंगे उस समय संसार देखेगा कि कर्ण क्या कुछ

कर सकता है ? (यह कह कर वह सभा से बाहर निकल गया)।

भीष्म — (मुस्कराकर) युद्ध की सामग्री उपस्थित करके उस से बचने का यह अत्यन्त सुगम मार्ग है।

× × ×

सभा में कटुता उत्पन्न हो गई, युवराज सुयोधन और उस के सहायक कर्ण के अपमान को सहन न करके सभा से बाहर निकल गये, इसलिये विवश हो कर महाराज धृतराष्ट्र को किसी परिणाम पर पहुंचे बिना उसे स्थगित करना पड़ा।

युद्ध समिति

संजय विदा हो गया, उसके चले जाने के उपरान्त युद्ध समिति बुलाई गई, जिस में महाराज युधिष्ठिर ने देश-भक्त श्याम से कहा :—

युधिष्ठिर—इस समय मैं जिस दुविधा में हूं उस से बाहर निकालने वाला आपके अतिरिक्त और कोई नहीं। आपने यादव लोगों को जब-जब भी आवश्यकता पड़ी, दुःख सागर से बाहर निकाला है। पाण्डव भी उनकी भाँति आपकी कृपा के पात्र रहे हैं, उन्हें आपने सदैव अपनाया है, और आपके ही बल और बुद्धि के आश्रय वह कौरव लोगों से अपने राज्य की मांग कर रहे हैं। इस समय क्षात्र-धर्म यह बतलाता है कि अपने अधिकार के लिये प्राण गंवा दो, दुष्ट को दुष्टता से हटाने के लिये अपने पराये का भेद-भाव न रक्खो, संसार में धर्मराज्य स्थापन करो। परन्तु यह भी दीख पड़ता है कि युद्ध में भरत वंश का नाश हो जायेगा। एक नहीं अनेक वार ऐसा हुआ है कि युद्ध में पापी और अत्याचारी विजयी हुए हैं और सत्य-पक्ष के समर्थकों को पराजित होना पड़ा है। इसलिये यह कथन सुगम नहीं कि विजय किस की होगी ? हां यह अवश्य कहा जा सकता है कि हानि दोनों पक्षों की होगी। भाई से भाई लड़ेगा, गुरु से शिष्य युद्ध करेगा, मामा

से भानजा लड़ेगा, पितामह पर पौत्र शस्त्र चलायेगा, और खरबूजा छुरी पर गिरे अथवा छुरी खरबूजे पर, हानि भरतवंश की होगी। कौरव मारे जायेंगे या पाण्डव, दोनों एक ही वृक्ष की दो शाखाएं हैं। कोई भी शाखा कटे अथवा दोनों ही कटजायें, हानि वृक्ष की अवश्य होगी।

दूसरी ओर संजय जो कुछ कह गये हैं वह महाराज धृतराष्ट्र के अन्तर आत्मा से निकले हुये शब्द हैं। सुयोधन तो पूर्व ही हमें कुछ देने का तय्यार नहीं था, अब महाराज धृतराष्ट्र ने भी संजय के शब्दों में हमें सर्वस्व त्याग कर भिक्षा-वृत्ति ग्रहण करने का उपदेश दिया है। सारांश पिता-पुत्र अपने-अपने ढंग पर हमें राज्य से वंचित रखने का उपदेश करते हैं। अब दुविधा यह है कि मैं न तो राज्य के अधिकार को त्याग सकता हूं, न कुल नाश की सम्मति दे सकता हूं। इसलिये मैं ने महाराज धृतराष्ट्र के सन्मुख यह प्रस्ताव भी रक्खा था कि यदि वह हम पांचों भाइयों को पांच ग्राम भी दे दें तो हम शान्ति-पूर्वक अपना धर्मपालन करते हुए जीवन यापन कर दें; परन्तु इसमें भी सफलता नहीं हुई। अब हमारी, नहीं सारे देश की, नहीं नहीं समस्त विश्व की, दृष्टि आप पर लग रही है। आप से अधिक देश-हितैषी आज के दिन भारत में नहीं। न ही कौरव अथवा पाण्डव आप से अधिक किसी को अपना हितचिन्तक समझ सकते हैं, इसलिये यदि हो सके तो व्यर्थ रक्तपात को रोकने का यत्न कीजिये; परन्तु इस ढङ्ग से जिस से अपनी मान मर्यादा में अन्तर न आये।

श्याम—मैंने इस पर विचार किया है और मेरा निश्चय है कि अब अवस्था ऐसी हो गई है कि हमें इस विषय पर परस्पर सन्मुख बैठ कर निर्णय करना होगा। इस कारण हस्तनापुर जा रहा हूं जिस से कि महाराज धृतराष्ट्र, सुयोधन और कुरु वृद्धों से वार्त्तालाप करके इस संकट का कोई हल निकाला जाय। यदि इस में मुझे सफलता हुई तो देश के एक नहीं अनेक शस्त्रधारियों के जीवन किसी शुभ कार्य के लिये बच जायेंगे।

युधिष्ठिर—भगवन्! मैं नहीं चाहता कि आप स्वयं हस्तनापुर जायें। सुयोधन का कोई सिद्धान्त नहीं, और उसे सम्मति देने वाले उससे भी अधिक अधर्मी हैं। इसलिये यदि आप पर कोई आपत्ति आ गई तो मैं आयुपर्य्यन्त अपने को कोसता रहूंगा, नहीं नहीं मर कर भी मुझे शान्ति न मिलेगी।

श्याम—आप क्यों व्यथित होते हैं? समस्या साधारण दूतों के कहने सुनने से सुलझने वाली नहीं, इसलिये आवश्यकता है कि उसे सुलझाने के लिये पूर्ण रूप से यत्न किया जाये। रहा मैं, सो मेरे लिये आप को चिन्ता करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? क्या मेरा जीवन मेरे उन करोड़ों देशवासियों से अधिक मूल्यवान है जो एक सुयोधन की हां और नां पर इस युद्ध की वेदी पर बलिदान होने को हैं? उन्हें बचाने के लिये, उन करोड़ों अनाथ और विधवाओं को बचाने के लिये जो इस युद्ध का परिणाम-रूप होंगी, अपनी ओर से मुझे पूर्ण यत्न कर लेने दीजिये। (मुस्करा कर) निस्सन्देह मैं किसी भी सभा में अपना भार स्वयं वहन

कर सकता हूँ। सुयोधन महाराज जरासन्ध से अधिक शक्तिशाली नहीं, यदि मैं उस के सन्मुख निशस्त्र जाकर जीवित जागृत लौट सकता हूं तो कुरु सभा में जाने पर भी मेरा कुछ नहीं बिगड़ सकता।

युधिष्ठिर—यदि आप की यह इच्छा है तो मैं उस के सन्मुख खड़ा होने का साहस नहीं कर सकता। आप नीति धर्म को जनते हैं, हम लोगों को जानते हैं, सुयोधन को जानते हैं, इसलिये कौरव सभा में जो भी उचित समझिये, कहिये। सन्धि अथवा संग्राम। आप जो भी उचित समझेंगे हमें स्वीकार होगा।

श्याम—जो पुरुष सुयोधन से परिचित है उसे यह विस्मरण नहीं कि वह सुगमतापूर्वक संधि स्वीकार नहीं करेगा। मेरी इच्छा है कि कौरव सभा में जाकर वहां एकत्रित समस्त राजा-गणों के सन्मुख शान्ति स्थापना का यत्न करने पर यदि वह न माने, तो उसके ढोल का पोल खोल कर लोगों को यह बता दूं कि वह अधर्म में कहां तक धंसा हुआ है। सम्भव है मेरे इस यत्न से उसके सहायक और प्रजागण इस बात को समझ जायें कि युद्ध का उत्तरदायित्व किस पर है? परन्तु इस अन्तर में आप को शान्त होकर बैठना नहीं होगा। मेरे जाने अथवा न जाने के विचार को हृदय से निकाल कर आप अपनी तैय्यारियों को पूर्ण कीजिये। सेना को सुसज्जित कीजिये और युद्ध के लिये जिस-जिस समग्री की आवश्यकता है उसे एकत्र करने का यत्न कीजिये, जिससे कि दो टूक निर्णय होते ही आक्रमण कर दिया जाये।

भीम—श्याम जी ! मेरी आप से यह प्रार्थना है कि जहां तक सम्भव हो शान्ति स्थापना का यत्न कीजिये। सुयोधन अत्यन्त हठी और क्रोधी है, उसे यदि आप युद्ध की धमकी देंगे अथवा कोई कठोर शब्द कहेंगे तो वह चिढ़ जायेगा। इसलिये यथा सम्भव कोमल शब्दों में उसे ठीक मार्ग दर्शाने का यत्न कीजिये। हम कौरवों की आधीनता स्वीकार करने को भी उद्यत हैं और यदि वह हम से कोई सम्बन्ध न रखना चाहें तो उस में भी प्रसन्न हैं। पर जिस प्रकार भी हो सके वंश को नाश होने से बचा लीजिये। वृद्ध पितामह भीष्म जी और कुरु सभा के अन्य सभासदों से भी यही विनय कीजिये कि जिस प्रकार भी हो सके परस्पर मेल करवा दें। महाराज युधिष्ठिर की इच्छा भी यही है और अर्जुन भी इस से सहमत हैं।

श्याम (मुस्करा कर) अरे ! क्या हिमाचल हल्का हो कर आकाश में उड़ने लग गया ? क्या अग्नि शीतल हो गई ? क्या मैं वृकोदर भीम के मुख से यह शब्द सुन रहा हूं ? क्या यह शब्द उस भीम के हैं जो तेरह वर्ष नींद भर नहीं सोया ? जो इतने समय पर्य्यन्त क्रोध से पागल बना रहा है ? जिस ने भरी सभा में इतनी कठोर प्रतिज्ञायें की थीं ? भीम और सन्धि ! भीम और शान्ति ! यह अनमिल बेजोड़ है जो समझ में नहीं आता ! कदाचित युद्ध का विचार मनुष्यों की प्रकृति को परिवर्तित कर देता है ! भय और मोह बड़े-बड़े वीरों के हृदय हिला देते हैं !!

भीम—(क्रोध से लाल पीला होकर) श्याम जी ! मेरे शब्दों

के विपरीत अर्थ मत लगाइये। इतने वर्षों से मुझ से परिचित होते हुये मुझ पर वह दोषारोपण न कीजिये जिस के मैं योग्य नहीं। आप ने जो शब्द कहे हैं वह पके हुये फोड़े में सुई चुभोने के समान हैं। मैं युद्ध से न आज पर्य्यन्त भयभीत हुआ और न ही इस समय होता हूं। जगत मुझे पूर्व से भी जानता है और आवश्यकता हुई तो भविष्य में भी देखेगा कि भीम क्या कुछ करने का सामर्थ्य रखता है? हां मैंने जो कुछ कथन किया है वह केवल इस विचार से है कि भरत-वंश पर जो आपत्ति आ रही है वह किसी प्रकार टल जाये।

श्याम—क्षमा करना, मैंने तुम्हें दुःखी करने के लिये यह शब्द नहीं कहे, न ही विद्वता दिखाने के अभिप्राय से। वरन केवल इसलिये कि तुम्हारे हृदयस्थ भावों को भली प्रकार समझ सकूं। तिस पर भी इतना कह देना आवश्यक है कि प्रत्येक कार्य मनुष्य की इच्छानुसार नहीं हुआ करता। मनुष्य सोचता कुछ है होता कुछ है। कारण यह कि जगत में मनुष्य की शक्ति के अतिरिक्त और भी शक्तियां कार्य कर रही हैं जिन का उसे ज्ञान नहीं। वह शक्तियाँ उस के कार्य में बाधा डालती हैं। इसी प्रकार मनुष्य भी कई बातों में अपनी शक्ति से उन अन्य शक्तियों को निष्फल कर देता है, जैसे जाड़ा, गर्मी, वर्षा इत्यादि से बचने के उपायों से दैवी शक्तियां विफल हो जाती हैं। इसलिये मनुष्य का धर्म है कि वह यह विचार कर कर्म करे कि किसी कर्म की सफलता में एकमात्र उस का अपना यत्न ही हेतु नहीं। ऐसा करने

से, यदि वह निष्फल रहे, तो उसे दुःख नहीं होगा। मैं कौरव सभा में जा रहा हूँ, यत्न करूँगा, अपनी ओर से पूर्ण प्रयत्न करूँगा कि आपकी इच्छा पूर्ण हो। परन्तु यदि मेरी बातों का निरादर किया गया, यदि उन्हें सुनने से इन्कार करके सुयोधन आदि अपनी हठ पर दृढ़ रहे, तो युद्ध के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? उसका भार अधिकांश तुम्हारे और अर्जुन के कन्धों पर है। यदि तुम ने साहस त्याग दिया, यदि तुम ही कायरों जैसी बातें करने लगे, तो परिणाम किसी से छिपा नहीं।

अर्जुन—धर्मराज जो कुछ कथन कर चुके हैं, उसके पश्चात् मुझे और कुछ कहना नहीं; परन्तु एक बात सेवा में अवश्य कहूँगा और वह यह है, कि यदि आप दत्तचित्त से सन्धि कराने का यत्न करेंगे तो सफलता आवश्यक है। आप हमारे और कौरवों के समान हितचिन्तक हैं और यत्न करने से आप दोनों ओर का हित करने में अवश्य सफल होंगे इस सम्बन्ध में आप सुयोधन के साथ जो भी वर्त्ताव उचित समझें करें। सन्धि अथवा युद्ध, आप जिस बात का निश्चय करके लौटेंगे हमें स्वीकार होगा।

श्याम—अर्जुन! जो कुछ तुम ने कहा वह सत्य है। परन्तु क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि भूमि उपजाऊ हो, कृषक उस में भली प्रकार हल चलाकर उत्तम बीज डाले, परन्तु वर्षा समय पर न हो तो कृषक का सारा उद्योग निष्फल हो जाता है। वह कूल और कूप खोदता है, परन्तु दैव विपरीत हो तो वह भी शुष्क हो जाते हैं। इसलिये प्राचीन आचार्यों का कथन है कि मनुष्य के उद्योग के

सहित दैवी शक्तियों की कृपा सम्मिलित होने से ही सफलता हो सकती है। मैं यथाशक्ति यत्न करूँगा, परन्तु यदि दैव उस के विरोधी हुआ तो उसे टालना मेरी शक्ति से बाहर है। सुयोधन ने तुम लोगों पर इतने अत्याचार किये हैं, परन्तु उसके हृदय में आज पर्य्यन्त पश्चात्ताप नहीं हुआ। शकुनि, कर्ण इत्यादि मंत्री उसे भड़का रहे हैं। इससे ज्ञात होता है कि वह राज्य का कोई भाग देकर सन्धि नही करेगा। दूसरी ओर महाराज युधिष्ठिर राज्य त्याग कर सन्धि करने के पक्ष में नहीं। इसलिये वाणी और कर्म से मुझ से जो सम्भव है उस में कोई त्रुटि न रहने दूंगा; परन्तु सफलता की आशा नहीं। क्योंकि यदि सुयोधन के भाव ठीक होते तो विराट नगरी के युद्ध में जब उसे तुम लोगों के जीवित होने का परिचय प्राप्त हुआ था और जब भीष्मजी ने उसे बताया था कि तुम ने अज्ञातवास की शर्त पूरी कर ली है, वह सुगमता पूर्वक तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटा सकता था।

नकुल—धर्मराज, भीम और अर्जुन अपनी सम्मति दे चुके और आप ने भी अपना मत प्रकट कर दिया। अब मुझे केवल यही कहना है कि इस समय हम लोगों के लिये अपने प्राण अर्पण करने को सात अक्षौहिणी शूरवीर आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़े हैं, इसलिये जहां तक सम्भव हो इस भयङ्कर युद्ध को रोकने के लिये पूर्ण यत्न कीजिये। सुयोधन से कठोर शब्द कहने की आवश्यकता नहीं, आप कोमल शब्दों में उसे बता सकते हैं, कि युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, सहदेव, सात्यकि, विराट्, धृष्टद्युम्न, काशीराज, चेदीराज

सरीखे शूरवीरों को ललकारना ठीक नहीं होगा। निश्चय जहां आप के समान वक्ता हो वहां क्या कुछ नहीं हो सकता ?

सहदेव—श्याम मुरारी ! आप सदैव से धर्म के लिये युद्ध करते आये हैं, क्या इन लोगों की बातों को श्रवण कर अब सन्धि के लिये यत्न करेंगे ? निस्सन्देह जिसने सभा में महारानी कृष्णा का अपमान अपने नेत्रों से देखा है, सन्धि और शान्ति के लिये प्रार्थना नहीं कर सकता। (आवेश में आकर) कोई सुने अथवा न सुने, परन्तु मैं कहता हूं कि यदि ज्येष्ठ भ्राता धर्म की भूल भुलैयों में फँस कर युद्ध से विमुख होते हैं तो उन्हें हट जाने दीजिये, मैं ऐसे धर्म को दूर से नमस्कार करके अकेला ही सुयोधन का सामना करूंगा। आप मेरी ओर से उसे यह सन्देश दे दीजिये कि हम लोग या तो वनों की भस्म रमायेंगे अथवा हस्तिनापुर के सिंहासन पर बैठेंगे। इसके अतिरिक्त तीसरा और कोई मार्ग नहीं।

सात्यकि—जो कुछ सहदेव जी ने कहा है मैं उसके एक-एक अक्षर से सहमत हूं। मैं ही नहीं जितने योद्धा यहां उपस्थित हैं, सब यही कह रहे हैं। श्याम जी ! क्या आपको भूल गया कि जिस समय महारानी कृष्णा के अपमान का वृत्तान्त ज्ञात हुआ था तो आप कितने दुःखी हुए थे ?

सभा में उपस्थित अन्य शूरवीरों ने सात्यकि के शब्दों का आवेश-पूर्ण नारों से अनुमोदन किया। सब के अन्त में महारानी कृष्णा उठ कर खड़ी हुई। उसके लम्बे-लम्बे केश कंधों पर पड़ रहे थे और मुख दुःख, लज्जा और क्रोध से पूर्ण क्रोधित शक्ति

का रूप धारण किये था। श्याम जी को सम्बोधन करके उस ने कहा:—

कृष्णा—श्यामजी! महाराज ने जो कुछ कहा और भीम, अर्जुन और नकुल ने जो कथन किया वह मैंने सुन लिया, इस सभा ने भी सुन लिया, और आपने भी श्रवण कर लिया। महाराज तो धर्मपुत्र हैं, परन्तु भीम के शब्दों ने जिस प्रकार मेरे हृदय पर आघात किये हैं उन्हें वर्णन करना मेरी शक्ति में नहीं। अरे! मैं महाराज यज्ञसेन की पुत्री, धृष्टद्युम्न की भगिनी, महाराज युधिष्ठिर की धर्म-पत्नि, समस्त भारत-वर्ष की महारानी, पांच शूरवीर पुत्रों की माता, और महाराज श्याम जी! आप की सखी, भरी सभा में अपमानित की गई और यह पांच योद्धा, यह सारे शूरवीर, मुंह तकते रहे। कहा जाता है कि उस समय यह लोग धर्म की फांसी में फांसी लगे हुए थे, पर आज इन पर कौनसी आपत्ति आ रही है जो यह इस प्रकार गिड़-गिड़ा कर पांच गांव की भिक्षा मांगने पर उतर आये हैं? मैं कहती हूं कि आप कौरव सभा में जायें, यदि दुर्योधन आधा राज्य देता है तो दे नहीतो पाण्डव और उनके मित्रों का यह धर्म है कि कौरवों को जड़मूल से उखाड़ कर नाश कर दें। निःसन्देह पापी को दण्ड देना धर्म है और वह क्षत्रिय जो इस धर्म के पालन करने से जी चुराता है स्वयम् पापी है। इसलिये मैं आशा करती हूं कि आप इस पाप में भाग लेने को उद्यत नहीं होंगे। संसार जानता है कि मैं भीष्म और धृतराष्ट्र की बहू हूं; परन्तु मुझे दुर्योधन ने अपनी जांघ पर

बैठाने की चेष्टा की और उस के सहायकों ने मुझे बल-पूर्वक दासी बनाने का यत्न किया। यदि ऐसा पाप करके वह जीवित रह सकता है तो धिक्कार है अर्जुन के गाण्डीव धनुष को ! और लाख धिक्कार है भीम के बाहूबल को ? साथ ही आप के सुदर्शन चक्र को ! (तनिक अलसा कर और अपने बिखरे हुए केशों को हाथ में ले कर) यदुनन्दन ! जिस समय शत्रुओं के साथ सन्धि की वार्तालाप करने लगोगे तो भूल न जाना कि भरी सभा में यह केश दुशःसन के हाथों से खींचे गये थे, इस भारत में ! इस देश में !! जहां धर्मराज वास करते हैं !!! मैं कहती हूं कि यदि भीम और अर्जुन युद्ध से विमुख हो कर दुर्योधन के पांव में गिरने को तैय्यार हैं, तो मेरे शूरवीर सुपुत्र, अभिमन्यु को अपना नेता बना कर, मेरे अपमान का प्रतिकार लेंगे। और यदि वह भी अपने पिता के चरण-चिन्हों पर चल कर इस धर्म की फांसी पर लटकेंगे जो एक अबला के अपमान का प्रतिकार लेने से इन्कार करता है, तो मेरे वृद्ध पिता और मेरे महारथी भाई दुष्ट दुःशासन के हाथों को काटेंगे। श्याम जी ! मैं तेरह वर्ष से भीतर ही भीतर इस अग्नि को दबा कर क्लेश सह रही हूं, परन्तु आज फिर मेरी निरादरी, मेरे अपमान, और मेरे दुःखों को भूल कर धर्म की दुहाई दी जा रही है !!!

यहां पर पहुंच कर महारानी आवेश के आवेग से व्याकुल हो गई, उस की जिह्वा रुक गई, और वह आगे न बोल सकी।

उस समय उन के मुख पर वह तेज था, जो राक्षसों को दमन करने वाली चण्डी के मुख पर दिखाया जाता है।

उसकी इस तेजोमयी वक्तृता को सुनकर वीरों में सहन शक्ति न रही और उनके शक्तिशाली नारों की गुंजार मीलों तक वायु में गूंज उठी। श्याम जी ने उसे धैर्य्य देते हुये कहाः—

श्याम—कृष्णा! रुदन बन्द करो। क्योंकि अब दूसरी ओर की स्त्रियों के रोने का समय निकट आ रहा है। जैसे तुम दुःखी हो रही हो उसी प्रकार भविष्य में कौरवों की स्त्रियां दुखी होंगी। मैं धर्मराज की आज्ञा पालन में कौरव-सभा में जा रहा हूं, परन्तु यह खुला हुआ रहस्य है कि सुयोधन मेरी बात को स्वीकार नहीं करेगा। उस समय तुम देखोगी कि कौरवों के शव कौवों और गिद्धों के भोज्य बनेंगे। यह निश्चित है।

दूतागमन

कार्तिक मास, रेवती नक्षत्र, और मैत्र मुहूर्त्त था जब दूत-मण्डली उपपलव्य नगर से विदा हुई। सब से आगे श्याम जी का रथ था; उसके पीछे दस महारथी अपने-अपने रथों में आरूढ़ होकर अपने नेता के लिये रक्त पानी एक करने को तत्पर थे। फिर एक सहस्र शूरवीर युवकों का दस्ता सात्यकि के नेतृत्व में जा रहा था। स्वयं महाराज का रथ, शंख, चक्र, गदा, शक्ति आदि शस्त्रों से सुसज्जित था। क्योंकि दुर्योधन की भावनाओं को जानते हुये प्रबन्ध आवश्यक था। नगर से कुछ अन्तर तक महाराज युधिष्ठिर भाइयों के साथ भारत के इस पूर्ण पुरुष को जो इस अभागे देश को भावी संकट से बचाने के लिये जा रहा था, विदा करने को साथ गये। उनके लौटने पर श्याम रथ पर सवार हुए। दोनों ओर पंक्ति-बद्ध दर्शक दर्शनों के लिये व्याकुल खड़े थे, और वह प्रसन्न मुख से सब की पूजा को स्वीकार करते हुए चले जा रहे थे। इस बीच में उनकी दृष्टि एक विशेष स्थान पर पड़ी, तो सहसा रथ से कूद कर पैदल हो गये। क्योंकि बहुत से ऋषि, मुनि और महात्मा जिन में अंगिरस, घोर और परशुराम जी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे, दर्शनों के लिये उपस्थित थे।

श्याम जी ने उन के चरणों में शीश झुका दिया और कर

जोड़ कर आने का कारण पूछा।

घोर—श्याम ! आज यह समाचार देश-व्यापक हो रहा है कि तुम भारत को आने वाली आपत्ति से बचाने के लिये अन्तिम प्रयत्न करने जा रहे हो। यह ऋषि मुनि और महात्मा कौरव सभा में आपकी वक्तृता को सुनने के इच्छुक हैं।

श्याम—(उसी प्रकार कर जोड़) तो रथों में विराजिये।

घोर—(पीठ पर थपकी देकर) श्याम ! तुम इस समय दूत बनकर जा रहे हो, महाराज युधिष्ठिर के ही नहीं, सारे भारत के। हम तुम्हारे साथ हस्तिनापुर तक चलते परन्तु दूत मंडल का भाग बनना नहीं चाहते। इसलिए तुम चलो, हम तुम से पूर्व हस्तिनापुर पहुँच जायेंगे।

श्याम—तो भी रथ में सुभीता रहेगा।

घोर—हम लोग ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में घूमते हुए चलेंगे। वाहन हमारी इच्छा के मार्ग में रुकावट होंगे। इसलिये हमें स्वतंत्र विचरने दो। हम हस्तिनापुर फिर तुम से मिलेंगे। परमात्मा करे तुम्हारा कार्य सफल हो !

श्याम—भगवान् का आशीर्वाद हो तो यह कठिन नहीं।

घोर—मेरी ही नहीं इन सब महात्माओं की, अपितु समस्त भारत के ऋषि-मुनियों की शुभ-कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं। परन्तु दैव की गति कुछ और ही दीख पड़ती है।

श्याम—यत्न करना अपना कर्त्तव्य है, फल दैव के आधीन है।

घोर—ठीक है। अच्छा अब तुम रथारूढ़ हो जाओ। हम तुम्हें अधिक काल तक रोकना नहीं चाहते।

दूतका मण्डली आगे चली, परन्तु यह समाचार दावानल की भांति सब ओर फैल चुका था और मीलों से लोग भारत के नहीं नहीं, संसार के, पूर्ण पुरुष के दर्शनों के लिये झुण्ड के झुण्ड मार्ग में उमड़ आये थे। इसलिये जलूस धीरे-धीरे यात्रा कर रहा था। हस्तिनापुर के निकट पहुँच कर श्याम ने सात्यकि से कहा :—

श्याम—सात्यकि! आज हम हस्तिनापुर में प्रवेश नहीं करेंगे। इसलिये इस समीप के गांव के बाहर जिसे वृकस्थल कहते हैं, डेरे डाल दो। आज्ञा मिलते ही चारों ओर खेमों का एक नगर बस गया। महाराज सुयोधन ने महाराज धृतराष्ट्र जी की आज्ञा से उस स्थान पर श्याम जी के विश्राम के लिये एक भव्य स्वागत-गृह तैय्यार करवा रक्खा था, परन्तु उन्होंने उससे लाभ उठाना अनुचित समझा। नगर के लोग, क्या स्त्री क्या पुरुष, क्या बालक, उस समय अपने अतिथियों को देखने के लिये नगर से बाहर उमड़ पड़े। भगवान ने कुछ क्षण तक उनके प्रतिनिधियों से वार्त्तालाप किया, फिर उनके आग्रह पर गांव में एक चक्कर काटा, और सन्ध्या होने तक डेरे को लौटे।

प्रातःकाल हुआ। श्याम सन्ध्या हवन इत्यादि नित्य-कर्म से निवृत्त हुये और दर्शकों से विदा होकर रथारूढ़ हुये। महाराज धृतराष्ट्र के दूतों ने उनके आगमन की सूचना पहिले ही महाराज

को दे दी थी और उन के आज्ञा पालन में सुयोधन के अतिरिक्त अन्य राजकुमार, भीष्म, द्रोण इत्यादि उच्च पदाधिकारियों सहित हस्तिनापुर से कई मील के अन्तर पर स्वागत के लिये उपस्थित थे। नगर-निवासी भी उस मनुष्य को देखने के लिये, जिस ने भारत भर के हृदयों को आकर्षित कर लिया था सहस्रों की संख्या में नगर से बाहर आगये थे। नगर में प्रवेश किया तो अपार जन समूह की यह दशा थी कि तिल धरने को भी स्थान न था। बाजारों में, राजमार्गों पर, कोठों पर, छतों पर, जिधर देखो बालक, वृद्ध, स्त्री, पुरुष दर्शनों के लिए उत्सुक थे। जब भूठ में भी यह समाचार पहुंचता कि "वह देश-भक्त आ रहे हैं" तो एक दूसरे पर पिल पड़ते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि जन-समूह एक सागर है जिस में भयंकर ज्वार आ रहा है। महाराज के रथ के साहसी घोड़ों की भी आज परीक्षा थी क्योंकि भीड़ के कारण वह धीरे २ ऐसे जा रहे थे जैसे मयूर नृत्य करता हुआ चल रहा हो। सहसा वायुमण्डल में सहस्रों शंखनाद का शब्द गूँजा जिस ने दूर निकट प्रत्येक व्यक्ति तक यह सन्देशा पहुंचा दिया कि देशभक्त श्याम, महाराज धृतराष्ट्र के राज-प्रासाद में पहुंच गये। अब रथ से उतर कर वह तीन ड्योढ़ियों को लांघते हुए उस स्थान पर पहुंचे, जहां महाराज सिंहासन पर विराजमान थे। श्याम जी के आने का समाचार पाकर वह सहसा सिंहासन से उतर कर उनके स्वागत को आगे बढ़े। उन्हें उठता देख कर समस्त सभासद् अपने-अपने स्थानों से उठ खड़े हुये। महाराज ने आदरपूर्वक उन्हें सुनहरी

सिंहासन अर्पण किया जो पहिले से ही बिछ रहा था। श्याम जी ने समयानुकूल महाराज तथा अन्य सभासदों की पूजा की। पुनः इधर उधर की बातें और सम्बन्ध के कारण हंसी मज़ाक के पश्चात् महाराज से आज्ञा लेकर विदुर जी के घर पधारे, जहां पर पाण्डवों की माता कुन्ती तेरह वर्ष से पाण्डवों की प्रतीक्षा में बेचैन रो-रो कर प्राण दे रही थीं। श्याम जी को आता देख कर उस का हृदय भर आया और उन्हें हृदय से लगा कर रोते-रोते उस ने कहा :—

कुन्ती—श्याम! पुत्र! क्या तुम ने मेरे समान अभागी स्त्री भी कोई देखी है, जिस ने जब से सुधि ली कष्टों में ही दिन व्यतीत कर दिये? पहिले महाराज पाण्डु के साथ वनों की खाक छानी, फिर उनके देहान्त का दुःख सहन किया, यह बालक छोटे-छोटे रह गये थे, उनका पालन-पोषण करके बड़ा किया, किन दुःखों, किन कठिनाइयों, और किन कष्टों के साथ! यह मैं ही जानती हूं या मेरे भगवान्! परन्तु इन्हें भी सुख प्राप्त नहीं हुआ। ज्योतिषी कहते थे, संसार के लोग कहते थे, यह बालक बड़े होकर बड़े भाग्यवान होंगे। वह सब कुछ यूं ही गया। हाय! वह जो माता की गोद में पले थे, जो बड़े होकर वेद मन्त्रों के उच्चारण के साथ शैय्या त्यागते थे, वनों में कठोर भूमि पर सोते रहे होंगे, उन वनों में जहाँ हाथी चिंघाड़ते हैं। हां वह कोमलांगी राज-पुत्री कृष्णा भी कुरु सभा का अपमान सहकर उनके साथ ही पाँव-पाँव चलती और कष्ट उठाती फिरती है। हाय! इतने वर्ष

व्यतीत हो गये वह मुझे मृतक ही समझते होंगे।

श्याम—बूआजी ! आप यह क्या कह रहीं हैं ? आज विश्व में आप से बढ़कर सौभाग्यवती स्त्री कौन है ? आप महाराज शूरसेन की कन्या और अजमीढ़ कुल की बहू हैं, आपके पति महाराज पण्डु आपका जितना मान करते थे वह किसी से भूला नहीं। आप वीर पति की पत्नि, और वीर पुत्रों की माता हैं। सुख और दुःख आना-जाना है। आप जैसी बुद्धिमती देवी से यह भूला नहीं। वनवास ने पाण्डवों को निद्रा, आलस्य, भूख, प्यास, शीत, उष्ण इत्यादि पर विजयी बना दिया है। शूरवीरों का नियम है कि या तो अत्यन्त घोर कष्ट भोगते हैं अथवा भारी सुख को ग्रहण करते हैं। पाण्डवों के दुःख के समय का अन्त हो गया, अब उनके सुख के दिन आ रहे हैं। उन्होंने और कृष्णा ने आपको प्रणाम करके आपकी कुशल पूछी है, आपको उनका साहस बढ़ाना चाहिये, न कि रो-रो कर निज को नष्ट करना।

कुन्ती—श्याम जी ! आप को देख लिया अपने पुत्रों को देख लिया। अच्छा वह जहां कहीं रहें सुख से रहें, मेरा यह आशीर्वाद है। पर मेरी ओर से उन्हें यह सन्देशा दे देना, कि वह समय जिसके लिये वीर माताएँ पुत्र उत्पन्न किया करती हैं आ गया।

यदि वह इस समय को हाथ से खोकर राज्य खो बैठेंगे, यदि वह क्षात्र-धर्म का पालन न करके कुछ और विचार करेंगे, तो मैं कभी उनका मुख न देखूंगी। मैंने इतने वर्ष इस आशा पर

व्यतीत कर दिये हैं कि समय आने पर वह प्रमाणित करेंगे कि वह वीर पिता के पुत्र हैं, और उन्होंने क्षत्राणी के गर्भ से जन्म लिया है। वह समय अब आ गया है, इसलिये उन्हें अपने धर्म का पालन करते हुए जगत के सन्मुख अपना मुख उज्ज्वल करना चाहिये। (इस देह ने एक दिन मिटना ही है फिर यह धर्म-कार्य में क्यों न लगे ?)

श्याम—बूआजी ! मैं आपका सन्देशा भ्राताओं तक पहुंचा दूंगा। आशा है वह इसे सिर आँखों पर रखेंगे।

कुन्ती—श्याम जी ! मैं दुःख से पगली हो रही हूं। ज्ञात नहीं क्या कह गई हूँ। तुम धर्म, नीति, विद्या, बुद्धि, पराक्रम, सब बातों में अद्वितीय हो, इसलिये अब यहां आये हो तो ऐसा कुछ उपाय करो कि जिस में तुम्हारे भ्राताओं का हित भी हो जाय, और धर्म में भी बाधा न पड़े। मेरी यह इच्छा नहीं कि राज्य के लिये मेरे पुत्र धर्म त्याग दें अथवा छल-कपट से कार्य लें। आप से बढ़कर इस समय हमारा न ही कोई हितैषी है और न ही कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की मीमांसा करने वाला। तुम मेरे पितृगृह के धर्म, सत्य और तप के अवतार हो, तुम जो कुछ करोगे वह ठीक ही होगा।

× × ×

बूआ कुन्ती से विदा होकर श्याम सीधे सुयोधन के भवन में पहुंचे। उस समय वहां सभा एकत्रित थी। कर्ण, शकुनि भिन्न-भिन्न देशों के राजे और सुयोधन के कनिष्ट भ्राता अवसर के अनुसार यथोचित स्थान पर विराजमान थे। उन्होंने श्याम जी

को आते देख कर उठकर उनका स्वागत किया। श्याम जी सब की कुशल-क्षेम पूछ एक सुनहरी आसन पर विराजमान हो गये। सुयोधन ने उस समय समयानुकूल जलपान इत्यादि वस्तुयें अर्पण करते हुए कहा "यह सब कुछ आप ही का तो है", परन्तु श्याम ने किसी वस्तु को छूना स्वीकार न किया। तत्पश्चात् सुयोधन ने श्याम को भोजन का निमन्त्रण दिया, परन्तु जब वह भी अस्वीकार हुआ तो उसने आश्चर्य से पूछा:—

सुयोधन—भगवन ! हम ने भोज्य सामग्री अर्पण की उसे आपने छूआ नहीं और अब आप भोजन अस्वीकार करते हैं, आखिर इसका कारण ? आप पाण्डव और कौरव दोनों पक्ष के सहायक हैं, दोनों के हितचिन्तक हैं, पिता जी के भी वैसे ही सम्बन्धी हैं जैसे पाण्डवों के, वह भी आप से वैसा ही प्रेम करते हैं जैसे पाण्डव, फिर आप हम से रूठे-रूठे क्यों हैं।

श्याम—राजकुमार ! दूत तब भोजन करते और पूजा स्वीकार करते हैं जब वह अपने कार्य में सफल हो जाये। मैं जब अपने कार्य में कृतकार्य हो जाऊंगा तो आप मुझे और मेरे सारे साथियों को भोजन करायें, यदि उस समय हम मना करें तो तुम्हारी आपत्ति उचित होगी उससे पूर्व नहीं।

सुयोधन—इस कार्य में सफलता का प्रश्न नहीं आता, क्यों कि आप सदैव ही हमारी पूजा के पात्र हैं। इसलिए हमने यह सब कुछ अर्पण किया था। आप के साथ हमारी कोई शत्रुता नहीं, कोई विरोध नहीं, फिर भी आप हमें निराश करें तो हम क्या

कह सकते हैं ?

श्याम—(मुसकरा कर) सुयोधन ! राजकुमार ! श्याम काम, क्रोध, यश, स्वार्थ, कपट से ऊपर है। सुनो ! दो रूपों में किसी का अन्न खाया जाता है, या तो प्रेम और प्रीति से या विपत्ति में पड़ कर मुझे ज्ञात है कि तुम्हारे भोजन का निमन्त्रण प्रेम और प्रीति से प्रेरित होकर नही है, और मुझ पर भी कोई विपत्ति नहीं आई। इसलिये भोजन का प्रश्न उत्पन्न नही होता। मैं जानता हूं कि तुम्हारे भोजन के निमन्त्रण के पीछे कोई न कोई बात है, इसलिये मैं तुम्हारे इस दूषित अन्न को नही छूऊँगा। मुझे यदि भोजन कराना है तो अपने अङ्ग के अङ्ग, अपने बन्धु पाण्डवों से मित्रता स्थापित करो। मैं उनका दूत हूँ इसलिये उन से भिन्न नहीं हूं, उन से शत्रुता करके तुम मुझ से प्रेम नहीं कर सकते।

सुयोधन के लिये यह निष्कपट वार्त्तालाप आशा के विरुद्ध था, सुन कर उसका क्रोध बढ़ने लगा, परन्तु पूर्व इसके कि वार्त्तालाप आगे बढ़े, श्याम उस मित्र-मण्डली से बाहर निकल कर रथारूढ़ हो गये। इस समय भीष्म, द्रोण, कृपा इत्यादि अन्य कौरव सभासदों ने उन्हें अपने यहां निमन्त्रण दिया। पर सब को इनकार कर उन्होंने विदुर की झोंपड़ी में रहना स्वीकार किया। रात्रि का एक पहर बीत चुका था, श्याम जी भोजन से निवृत्त होकर शैय्या पर लेटने को थे, चारों ओर सन्नाटा था जबकि विदुर जी ने उन्हें सम्बोधन करके कहा :—

विदुर—श्याम जी ! क्षमा करना आपने यहां आने में उचित नहीं किया । सुयोधन जिद्दी, हठीला, क्रोधी, आत्मसेवी और मनमानी करने का अभ्यस्त है । भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, कर्ण, जयद्रथ इत्यादि को वह भारी वेतन देकर रख रहा है । उसका विश्वास है कि इन महारथियों से दृष्टि मिलाने का किसी में साहस नहीं । इनके बल पर उसने और उसके भाइयों ने यह निर्णय किया है कि पाण्डवों को उनका राज्य नहीं दिया जायगा, इसलिये उनके सामने आपका कुछ कहना सुनना अन्धे के सन्मुख दीपक जलाने के समान है । विशेष कर उस समय जबकि उसने ग्यारह अक्षोहिणी सेना एकत्रित कर ली है, फिर आज उन सब लोगों में आपका जाना और उन्हें स्पष्ट रूप से सब कुछ कहना जिन्हें वह कभी श्रवण नहीं कर सकते उचित नहीं था । आप जानते हैं कि आप से परास्त राजा लोग इस समय सुयोधन की पृष्ठ पर हैं, ऐसी अवस्था में यद्यपि मैं आपके बल और बुद्धि से भली प्रकार परिचित हूं फिर भी आपका शत्रुसभा में जाना मुझे पसन्द नहीं ।

श्याम—आपने जो कथन किया वह आप जैसे बुद्धिमान, नीतिमान के योग्य है परन्तु मैं यहां किसी और विचार को लेकर आया हूं । मैं सुयोधन को जानता हूं, उनके मित्रों से परिचित हूं, उनके सखाओं को समझता हूं, परन्तु यह सब कुछ जान कर मैं संसार के विनाश को रोकने का यत्न करना चाहता हूं । इसमें सफलता न भी हो तो कोई बात नहीं । कर्ण और सुयोधन के

दोष से इस समय कौरव वंश पर भारी आपत्ति आ रही है। मैं शक्ति भर यत्न करूँगा कि इस विनाशकारी अग्नि में मनुष्यों की आहुति न पड़े। सफलता अथवा निष्फलता का विचार मेरे लिये नहीं है। संकट में पड़े हुए बन्धु को जो पुरुष बचाने का यत्न नहीं करता वह नीच और पापी है। बुद्धिमान मित्र के लिये कष्ट सह-कर भी उसे अनुचित कार्यों से बचाते हैं क्योंकि यह कर्त्तव्य है। यदि वह इन बुरे कामों से न रुके तो रोकने वाला निन्दा का पात्र नहीं होता। सुयोधन और अन्य राजाओं की भलाई के लिये मैं जो कहना चाहता हूं यदि उसे सुन कर वह न मानें तो मेरी क्या हानि है? मैं अपने कर्त्तव्य से उऋण हो जाऊँगा। मैं यदि पाण्डवों और कौरवों में मेल कराने में सफल न भी हुआ, तो भी आगामी इतिहासवेत्ता यह तो न कहेंगे कि श्याम देश और जाति के ध्वंस को देखता रहा और समर्थ होने पर भी उसने उसे रोकने के लिये कुछ न किया। शेष रही मेरा अकेले सुयोधन की सभा में जाने की बात, तो इसके लिये न मुझे आज पर्यन्त कोई भय हुआ है न ही भविष्य में होगा। क्योंकि मैं स्वयं को जानता हूं और मुझे ज्ञात है कि किसी शत्रु में यह शक्ति नहीं कि वह मुझ पर हाथ डालने का साहस कर सके।

श्याम जी के भाषण

रात्रि समाप्त हुई, ब्रह्म मुहूर्त्त का समय हो गया, वैतालकों ने भगवान की स्तुति और आराधना आरम्भ कर दी। देश-भक्त श्याम भी शैय्या से उठे, नित्य-कर्म से निवृत्त होकर स्नान, संध्या, हवन, जाप किया और चलने की तैय्यारी कर रहे थे कि राज-कुमार सुयोधन और शकुनि ने उपस्थित होकर सन्देश दिया कि सभा में महाराज धृतराष्ट्र अन्य राजाओं सहित उनकी बाट देख रहे हैं। यह सुनना था कि दारुक रथ आगे ले आया और श्याम जी विदुर जी को साथ लेकर रथारूढ़ हो गये। सुयोधन और शकुनि का रथ पीछे-पीछे था। सात्यकि, कृतवर्मा और अन्य यादव सरदार घोड़ों, रथों और अन्य वाहनों पर आसीन थे। चलते-चलते जलूस राजमार्ग पर पहुंचा, जहां सहस्रों नर-नारी घण्टों से प्रतीक्षा में खड़े थे। उन्हें देखते ही "देश-भक्त श्याम की जय" "शान्ति के दूत की जय" "प्रेम के देवता की जय" के शब्द वायु में गूंजने लगे। कुछ काल में ही भीड़ की यह दशा हो गई, कि रथों का चलना कठिन हो गया क्योंकि दर्शकगण एक बार दर्शनों से तृप्त न होकर श्याम जी के रथ के साथ-साथ भागे जा रहे थे। प्रतीत होता था कि हस्तिनापुर प्रेम के देवता के प्रेम में स्वयं को भूल गया है। उधर छतों पर, चौबारों में, स्त्रियों और बालकों

का जमघट था, बोझ से छतें टूटी पड़ती थीं। श्याम हस्तिनापुर निवासियों के असीम स्नेह को देखकर प्रभावित हो रहे और कर जोड़ कर सब के स्वागत का उत्तर दे रहे थे। चारों ओर से वायु में पुष्प उड़ रहे थे। जिधर से सवारी जा रही थी इत्र, गुलाब, और पुष्प वायु को सुगन्धित कर रहे थे।

एकाएक कई शंखों की एक साथ ध्वनि हुई। यह जलूस के कुरु सभा के द्वार तक पहुंचने की सूचक थी। यहां पर श्याम रथ से उतर पड़े, सुयोधन और शकुनि आगे बढ़ कर मार्ग दर्शाते हुये चले। उस समय श्याम, विदुर और सात्यकि के हाथ में हाथ दिये जा रहे थे। कृतवर्मा और अन्य यादव पीछे-पीछे आ रहे थे। श्याम जी को आते देख कर भीष्म, द्रोण ही नहीं स्वयं महाराज धृतराष्ट्र भी एकाएक स्वागत के लिये उठ खड़े हुये। उन्हें उठता देख कर अन्य राजाओं ने भी खड़े हो कर सन्मान किया। महाराज की आज्ञा से श्याम जी को एक बहुमूल्य आसन पेश किया गया परन्तु उनकी दृष्टि सभा के द्वार पर थी। यह देख कर सभा की दृष्टि उधर ही को उठ गई। उस समय श्याम ने भीष्म जी को सम्बोधन कर के कहा:—

श्याम—पितामह जी! वह देखिये आंगिरस घोर, परशुराम और अन्य महात्मा पुरुष द्वार पर खड़े हैं। पूर्व इस के कि हम आसन ग्रहण करें उन का सत्कार आवश्यक है, कृपा होगी यदि आप उन्हें आसन देने का कष्ट करेंगे।

आज्ञा पालन हुआ, और अल्पकाल में ही समस्त ऋषिगण

आसनासीन होगये। तदनन्तर श्याम ने भी आसन ग्रहण किया। उसी समय दुशासन ने सात्यकि को, और दिविंषती ने कृतवर्मा को, आसन अर्पण किया। सुयोधन कर्ण के साथ एक ही आसन पर श्याम जी से कुछ दूर बैठ गये। शकुनि अपने अंगरक्षकों समेत एक ओर था और विदुर श्याम जी के तनिक पीछे। उस समय सब की दृष्टि श्याम जी के श्याम मुख-मण्डल पर थी और प्रत्येक व्यक्ति दत्तचित्त हो कर उन के वक्तव्य को सुनने के लिये अधीर हो रहा था। सभा में चारों ओर सन्नाटा था जिस समय श्याम जी ने महाराज धृतराष्ट्र को सम्बोधन करके कहा:—

श्याम—भरत कुल दीपक श्री महाराज! मैं आप की सेवा में उपस्थित हुआ हूं ताकि किसी भाँति पाण्डव और कौरव लोगों में मिलाप हो जाये और भारत के शूरवीर सपूत विनाश से बच जायें। आप का कुल विद्या, सदाचार शूरवीरता, आदि गुणों में अन्य राजकुलों से श्रेष्ठ समझा जाता है। दया और उदारता, सरलता, क्षमा और सत्य ये गुण कुरु कुल में विशेष रूप से विद्यमान हैं। इसलिये इस कुल में किसी प्रकार का अनुचित कार्य नहीं होना चाहिये। आप इस कुल के नेता और शासक हैं, परन्तु आप से गुप्त रूप से और प्रगट भी कपट का व्यवहार हो रहा है। आप के राजकुमार लोभ वश प्राचीन मर्य्यादा को भूल रहे हैं। धर्म और अर्थ को भुला कर अपने बन्धुओं के साथ क्रूरता और बेईमानी का बर्त्ताव कर रहे हैं। इस कारण कुरुकुल पर विपत्ति के मेघ मण्डरा रहे हैं। यदि

आपने इस अवस्था को न सम्भाला, तो निश्चय ही युद्धाग्नि में पृथ्वी के असंख्य योद्धा भस्मीभूत हो जायेंगे। परन्तु यदि आप चाहें तो यह मेघ सहज ही में उड़ सकते हैं, यह अग्नि प्रदीप्त होने से रोकी जा सकती है। इस समय दोनों पक्षों को शान्त करना बहुत कठिन नहीं है। कौरवों और पाण्डवों का मेल आप के और मेरे हाथ में है। आप अपने पुत्रों को समझा कर अथवा डांट कर शान्त कीजिये और पाण्डवों को रोकने का दायित्व मैं लेता हूं। शान्ति स्थापना में दोनों पक्षों का कल्याण है, इसलिये व्यर्थ की शत्रुता त्याग कर शान्ति का यत्न कीजिये। युद्ध में आप का पाण्डवों को पराजित करना सन्देहयुक्त है। किन्तु यदि वह आप के सहायक और रक्षक हो जायें तो पृथ्वी के राजा तो एक ओर देवता भी आप की ओर दृष्टिपात करने का साहस नहीं कर सकेंगे। भीष्म, द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा, जयद्रथ, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, कृतवर्मा यदि एक हो जांय, तो कौन माई का लाल है जो उन का सामना कर सकेगा? उस समय पृथ्वी भर के बलवान से बलवान महीपति भी आप के चरणों में गिर कर आप को अपना शिरोमणी बनाना चाहेंगे, और आप अपने पुत्रों और भतीजों के प्रताप से सहज ही में अन्य शत्रुओं को परास्त करके, समग्र भूमण्डल को विजय करके, ऐश्वर्य्य भोग कर सकेंगे। संग्राम का परिणाम और कुछ हो अथवा न हो, पर महाक्षय, और विध्वंस अवश्य है। पाण्डव मरें अथवा कौरव, आप को दुःख अवश्य मिलेगा।

कौरव आप के पुत्र हैं पाण्डव भतीजे, इसलिये आप इस भावी अनर्थ में दोनों पक्षों की रक्षा कीजिये और पाण्डव और कौरवों की एक दूसरे के हाथ से मृत्यु को रोकिये। इस समय पृथ्वी भर के पृथ्विपति क्रोधवश एक दूसरे का गला काटने के लिये एकत्र हुये हैं, आप प्रजा की रक्षा करते हुये उन्हें बचाइये। यदि आप सत्वगुणी वृत्ति धारकर भ्राताओं के परस्पर विरोध को मिटाना चाहें तो वह मिट सकता है। पाण्डवों के पिता बाल्यकाल में ही मर गये थे, तभी से वह आपको पितृवत् समझते हैं इसलिये आप भी उसी भाव से प्रेरित हो कर उन की रक्षा करें। उन्होंने आप को प्रणाम करके आप के चरणों में यह सन्देशा भेजा है:—

"हम ने आप को पिता मान कर आप की आज्ञा से द्वादश वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञात वास करके भारी क्लेश सहे हैं। यह बात बनवासी ब्राह्मण जानते हैं। अब आप ऐसा उपाय कीजिये जिस से हमें अपने भाग्य का राज्य प्राप्त हो जाय। आप धर्म और अर्थ के तत्व को भली प्रकार समझते हैं, इसलिये विपत्ति में हमारा हाथ पकड़िये। आप हमारे गुरू हैं, हम यदि पथ भ्रष्ट हों तो हमें सीधा मार्ग दर्षाइये।"

(सभासदों को सम्बोधित करके) पाण्डवों ने आप लोगों के नाम मुझे यह सन्देशा दिया है:—

"आप जैसे सभासदों के होते सभा में न्याय होना उचित नहीं। यदि सभासदों के सन्मुख अधर्म से धर्म का और

असत्य से सत्य का विनाश हो तो वह भी नष्ट हो जाया करते हैं। जिस सभा में अधर्म के हाथों धर्म को हत्या होती है और सभासद् धर्म की रक्षा नहीं करते, तो मरता हुआ धर्म उनको भी मार देता है। नदी जैसे तट के वृक्षों को उखाड़ डालती है, उसी प्रकार धर्म ऐसे सभासदों को नष्ट कर देता है। (महाराज की ओर मुड़कर) श्री महाराज! मृत्यु मुँह फाड़े चला आ रहा है, आपके पुत्र और यह राजा लोग उसके मुख में भागे चले जा रहे हैं, इन्हें बचाइये। मुझे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहना। पाण्डवों को अग्नि में भस्म करने का प्रयत्न किया गया, उन्हें देश से निर्वासित किया गया, फिर भी वह आप की शरण में आये। आप ने उन्हें खाण्डव वन रहने को दिया, उन्होंने आपकी आज्ञा शिरोधार्य की और उस भयङ्कर वन को मुस्कराते हुए देश में परिवर्तित कर दिया। उन्होंने अपने बाहुबल से अनेक राजाओं को परास्त किया। उसी बीच में कपट के द्यूत से उन की समस्त सम्पत्ति हर ली गई। इस पर सन्तोष न करके भारत सम्राज्ञी कृष्णा का भरे दरबार में अपमान किया गया; परन्तु वह फिर भी आपके चरणों में उसी प्रकार शीश झुका रहे हैं। आप उनके साथ युद्ध ठान कर अपनी प्रजा के धर्म, अर्थ और सुख का नष्ट न कीजिये। आपके पुत्र यदि लोभवश अनर्थ को अर्थ और अर्थ को अनर्थ समझ रहे हैं, तो उन्हें शासन में लाइये। पाण्डव सन्धि और युद्ध दोनों के लिये प्रस्तुत हैं, आप की रुचि क्या है? यह आपने बताना है।"

श्याम जी का वक्तव्य समाप्त हुआ तो सभा में पुनः सन्नाटा छा गया। उन्होंने सभा के चारों ओर दृष्टि डाली, उनकी वह दृष्टि ललकार थी उनको जो इस वक्तव्य के विपरीत कुछ बोलना चाहें; परन्तु किसी में यह साहस न था। कुछ क्षणों की निस्तब्धता के उपरान्त धृतराष्ट्र बोले :—

धृतराष्ट्र—श्याम जी! आपने जो कथन किया वह लोक हितकारी, धर्म-संगत और न्याय-पूर्ण है। किन्तु मैं स्वाधीन नहीं हूं। सुयोधन मेरा कहा मानने को तैय्यार नहीं, विदुर जी, गान्धारी, भीष्म और अन्य शुभचिन्तक इसके साथ माथा मार चुके परन्तु सफलता नहीं हुई। अब आप यत्न करके देख लीजिये। यदि आप इसे पथ पर ला सके तो महान कार्य होगा।"

यह सुनकर श्याम जी ने सुयोधन की ओर मुड़कर बड़े नम्र शब्दों में कहना आरम्भ किया :—

श्याम—कुरु श्रेष्ठ राजकुमार! तुम युद्ध के लिये हठ कर रहे हो। यह ठीक नहीं। तुम उस वंश में उत्पन्न हुए हो जो बुद्धिमानों की खान रहा है, और तुम भी शास्त्रज्ञान में चतुर, सदाचारी और ऐश्वर्य आदि गुणों से भूषित हो। इसलिये मेरा कथन स्वीकार करके पांडवों से सद्व्यवहार करो। भैय्या! जिस बात को तुम कर्त्तव्य समझ रहे हो, उसका अनुमोदन नीच कुलोत्पन्न, दुराचारी, निर्लज्ज लोगों के अतिरिक्त और कोई नहीं करेगा। देखो, युद्ध में विजय प्राप्त करना तुम्हारे वश की बात नहीं। यदि यह विचार त्याग दो तो इस में न केवल तुम्हारा ही कल्याण होगा,

प्रत्युत् तुम्हारे बन्धु-बान्धवों सब का। पाण्डव शूरवीरता, उत्साह, बुद्धि, ज्ञान और धैर्य्य से युक्त हैं, उन से सन्धि करने से तुम्हारी राज्य-वृद्धि की आकांक्षा स्वयंमेव पूर्ण हो जायेगी, क्योंकि इससे विश्व भर में शान्ति स्थापित हो जायेगी। तुम श्रेष्ठ कुल के दीपक हो, पिता की आज्ञा पालन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। सुपुत्र सदैव से ऐसा करते आये हैं। तुम्हारे पूज्य पिता यह इच्छा रखते हैं कि पाण्डवों से सन्धि करली जाय, इसलिये तुम्हें उनकी इच्छा पूर्ति में सहायक होना चाहिये। भरत-श्रेष्ठ राजकुमार! तुम सिंह समान अपने शूरवीर भ्राताओं से विरोध करके असमर्थ, मूढ़ पुरुषों को अपनाते और उनका आश्रय लिये हो, यह कहां की बुद्धिमत्ता है? सोचो तो इस जगत् में तुम्हारे अतिरिक्त और कौन होगा जो महारथी भ्राताओं से शत्रुता रखकर अन्य पुरुषों का आश्रय ढूंढ़ता और उन पर अपनी रक्षा के लिये विश्वास रखता हो? तुम ने आज पर्य्यन्त पाण्डवों को इतने क्लेश दिये हैं, परन्तु उन्होंने सदैव हँस कर टाल दिया। तुम्हें भी अब क्रोध त्याग कर उन से उचित व्यवहार करना चाहिये और बुरे पुरुषों का संग त्याग कर उनके साथ एक सूत्र में बँध जाना चाहिये। यदि वह तुम्हारे पार्श्व में हो जाय तो तुम्हारी सब मनोकामनाएं सहज ही पूर्ण हो सकती हैं। तनिक विचारो तो सही, क्या यही राज्य जिसे तुम भोग रहे हो, पाण्डवों के बाहुबल का फल नहीं है? परन्तु उन्हीं से द्वेष करके तुम अन्य पुरुषों से रक्षा की आशा रखते हो। राज्य का समस्त भार तो तुम उठा ही नहीं सकते। उसे कर्ण, शकुनि, दुःशा-

सन के कन्धों पर डाल रहे हो। तुम्हारे यह मन्त्री किसी भाँति भी पाण्डवों की तुलना नहीं कर सकते। शेष रहा युद्ध, सो अकेले अर्जुन का साहस विराट युद्ध में तुम ने देख लिया। भावी युद्ध में वह अकेला नहीं होगा। इसे तुम जानते ही हो। इसलिये मैं कहता हूं, जो कोई शूरवीर उसे जीतने का साहस करता है निस्सन्देह दोनों हाथों से पृथ्वी-मण्डल को उठा सकता है और देवताओं को स्वर्ग से नीचे गिरा सकता है।

यदि सन्धि हो गई तो महाराज युधिष्ठिर तुम्हीं को युवराज और महाराज धृतराष्ट्र को महाराज स्वीकार करने को उद्यत हैं। इसलिये आती हुई राज्यलक्ष्मी को धक्का न दो। पाण्डवों से सन्धि करने से तुम्हारे अपने लोग प्रसन्न होंगे और तुम्हारा कल्याण होगा।"

श्याम जी मौन हुए तो भीष्म पितामह ने कहा :—

भीष्म—पुत्र! बन्धुओं की कल्याण-कामना के लिये श्याम जी ने जो कहा है, उसे स्वीकार करलो। इन का इस आज्ञा पालन में किसी भान्ति भी तुम्हारी हानि नहीं। इनका कथन धर्म-अर्थ को सन्मुख रख कर है, व्यर्थ प्रजा का नाश बुद्धिमत्ता नहीं। आज श्याम जी पाण्डवों को मनाने का दायित्व लेते हैं, परन्तु युद्ध छिड़ जाने पर यह असम्भव हो जायेगा। तुम्हारे पूज्य पिता जो कह रहे हैं इस भरी सभा के सन्मुख उस का अपमान करके अपने भाई, बन्धुओं, और मित्रों के जीवन संकट में न डालो। मैं फिर कहता हूं कि कुलघाती, कायर, कुमति, कुपथ-गामी होकर माता

पिता को शोक सागर में न डालो।

द्रोण—राजकुमार ! श्याम जी और भीष्म पितामह से अधिक तुम्हारा हित-चिन्तक कोई नहीं हो सकता। वह जो कुछ कहते हैं धर्म के अनुकूल है, इसलिये इसे स्वीकार कर लो। बुद्धि-भ्रम में पड़कर श्याम जी का निरादर न करो। जो लोग तुम्हें युद्ध के लिये उत्साहित कर रहे हैं वह स्वयं तुम्हें विजय नहीं दिला सकेंगे, वरञ्च युद्ध के आने पर दूसरों के कन्धों पर समस्त भार डालकर स्वयं कौतुक देखेंगे। इसलिये पुत्रों, बन्धु-बान्धुओं, मित्रों और सेना के दुःख का कारण न बनो और पांडवों से सन्धि हो जाने दो, जिसका प्रस्ताव श्याम जी रख रहे हैं।

सुयोधन के नेत्र उस समय अग्निमय हो रहे थे, नासिका फड़फड़ा रही थीं, जब कि विदुर जी ने कहा :—

विदुर—सुयोधन ! मुझे तुम्हारे लिये इतना शोक न होता, परन्तु प्रतीत होता है युद्ध का परिणाम तुम्हारे इन वृद्ध माता-पिता को शोक सागर में डुबाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। इस लिये भला होगा यदि इसे यहीं पर रोक दिया जाय।

धृतराष्ट्र—पुत्र ! श्याम जी ने जो शुभ वचन कहे हैं यदि हम उन्हें स्वीकार करलें तो क्या हानि है ? इस से हम इनको अपना सहायक बना सकेंगे और समस्त राजागण तुम्हारे आधीन हो कर तुम्हारा सन्मान करेंगे। इसलिए मेरी इच्छा है कि तुम श्याम जी के साथ युधिष्ठिर के पास जाकर शान्ति स्थापन का निर्णय कर आओ। सन्धि-स्थापन का यही समय है, इसे हाथ से न जाने

दो। श्याम जी ने जो कुछ कहा है वह सर्वहितकारी है। यदि उसे अस्वीकार कर दोगे तो युद्ध अवश्यंभावी है। सेना दोनों ओर प्रस्तुत है।

चारों ओर से एक ही स्वर निकलने पर सुयोधन से न रहा गया। वह उस समय पर्य्यन्त अपने भावों को संयत करके यह सब कुछ सुन रहा था। परन्तु अब अधिक समय पर्य्यन्त मौन असम्भव था। इसलिये उसने श्याम जी से कहा—

सुयोधनः—श्याम जी! यदि आप कुछ विचारते, तो जो कुछ आपने कहा है, आप के मुख से न निकलता। आप पाण्डवों का पक्ष ले कर मेरी निन्दा कर रहे हैं; परन्तु मैं पूछता हूं कि इस का कारण? मैंने इस विषय पर इस से पूर्व भी विचार किया है और अब फिर कहता हूं कि युधिष्ठिर को द्यूत का चस्का था, शकुनि ने उसे खेल में जीत लिया, इस में मेरा क्या दोष? मैंने तो उस समय भी उस का जीता हुआ धन लौटा दिया था, परन्तु यदि वह नवीन शर्त लगा कर द्यूत पर बैठ गया, तो दोष उस जुआरी का अथवा मेरा? मैं पूछता हूं कि पाण्डव हमें शत्रु समझ कर युद्ध की तैय्यारियों में क्यों लग रहे हैं? पांचाल हमारे प्राचीन शत्रु हैं, उनके सहित मिल कर उन्होंने हमें हानि पहुंचाने की कामना क्यों की? हम युद्ध की धमकियों से किसी प्रकार भी भयातुर होने वाले नहीं। पाण्डव तो एक ओर, देवताओं में भी यह सामर्थ्य नहीं कि भीष्म, द्रोण, और कर्ण के सन्मुख खड़े हो सकें। परन्तु ऐसा होते हुये भी यदि अपना धर्म पालते हुये हम मारे गये, तो

स्वर्ग के द्वार खुले हैं। क्षत्रीय जाति में उत्पन्न होकर कौन शूरवीर इस प्रकार की मृत्यु का स्वागत नहीं करेगा? क्षत्रीय का धर्म है टूट जाये पर झुके नहीं। पिता जी ने पहिले भी पाण्डवों को जो राज्य दे दिया था, वह मेरी सम्मति के विरुद्ध था और अब तो पाण्डवों की यह इच्छा मेरे जीते पूर्ण होने से रही। जब तक पिता जी जीवित हैं, हम लोग अथवा पाण्डव पृथक् राज्य नहीं ले सकते। उनके पश्चात् जैसे होगा निपट लिया जायेगा। अविचार से पहिले जिसे स्वीकार कर लिया था, देख-भाल कर वह भूल अब पुनः नहीं की जा सकती। इसलिये युद्ध के बिना सूई की नोक बराबर भूमि भी आप कहें तो नहीं दी जाएगी।"

सुयोधन की इस ललकार के उत्तर में श्याम जी ने मुस्कराते हुये कहा:—

श्याम—सुयोधन! युद्ध दूर नहीं है। यदि तुम इसी प्रकार अपनी हठ पर अड़े रहे, तो ज्ञात नहीं अल्प-काल में ही किस-किस का शिर पृथ्वी पर पड़ा चील-कौओं का भोजन बन रहा होगा। मैं चाहता हूं और मेरे साथ महाराज धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण आदि कुरुवृद्ध यह चाहते हैं कि उस समय को टाल दिया जाय। पर तुम पुरानी बातों को कुरेद कर उसे निकट लाने का यत्न कर रहे हो। मैं तुम से पूछता हूं, तुम से, जो स्वयं को प्रत्येक विषय में निर्दोष सिद्ध करने पर तुले बैठे हो, यह प्रश्न करता हूं कि क्या यह सत्य नहीं कि तुम्हारे हृदय में पाण्डवों का ऐश्वर्य

देख कर ईर्ष्या उत्पन्न हुई और तुमने शकुनि के साथ षड़यन्त्र रच कर उन्हें जूआ खेलने को ललकारा ! क्या यह सत्य नहीं कि युधिष्ठिर ने उस द्यूत में सम्मिलित होने को मना किया ? क्या यह असत्य है कि उसे ललकार कर जूआ खेलने के लिये विवश किया गया ? यह भी न सही मैं तुम से ही पूछता हूं और इस सभा के लोगों से पूछता हूं, कि क्या महारानी कृष्णा का अपमान भी उस जूए-बाजी का ही कोई भाग हो सकता था ? वह अपमान जिस के लिये कुरु-वृद्धों को सदैव लज्जा से शीश झुकाना पड़ेगा ! क्या आज पर्य्यन्त कोई ऐसा पुरुष देखा गया है जिस ने एक-वस्त्रा अपने ज्येष्ठ भ्राता की रजस्वला स्त्री को भरे दरबार में केशों से पकड़ कर खींच मंगाया हो ? जूएबाजी भी हुइ, स्त्रियों का अपमान भी हुआ, फिर बन-गमन के समय पाण्डवों को दुःशासन ने जो बातें कही थीं उन्हें किस कुरु-वंशी ने नहीं सुना ? इस बात को भी छोड़ दो, उन लोगों ने बनवास और अज्ञात-वास की शर्त भी पूरी कर दी, तेरह वर्ष प्रत्येक विपत्ति सहन करके अपने वचन को पूरा किया, और अब जो वह अपनी धरोहर लौटाने को कहते हैं तो इसे मना किया जाता है। आश्चर्य्य है कि भाँति-भाँति से उन लोगों को कष्ट देकर आज तुम अपने को निर्दोष सिद्ध कर रहे हो। मैं फिर एक बार कहता हूं कि पुरानी बातें विस्मरण की जा सकती हैं, वह कष्ट, वह विपत्तियां, भुलाई जा सकती हैं, यदि तुम इस समय सन्धि करके उन्हें विस्मरण करने दो। निस्सन्देह इसी में दोनों

पत्तों का कल्याण है।

श्याम जी मौन हुए तो दुःशासन ने सयोधन को उकसाने के लिये कहा :—

दुःशासन—भ्राता! यदि इस समय पाण्डवों के साथ सन्धि करना अस्वीकार करोगे तो कुरुवंश के लोग, पिता, पितामह, आचार्य आपको, मुझे, कर्ण और शकुनि को, बाँध कर पांडवों के सुपुर्द कर देंगे। देखते नहीं श्याम जी ने सभा पर कैसा जादू फेर दिया है?

यह चेतावनी सुनते ही सुयोधन के नेत्र रक्त वर्ण हो गये, अधर फड़फड़ाने लगे, और वह कोई शब्द कहे बिना सभा से बाहर निकल गया। उसके जाने के पश्चात उसके अन्य भ्राता और शुभचिन्तक भी उठकर चलते बने। यह देखकर भीष्म जी ने श्याम जी से कहा :—

भीष्म—सुयोधन अभिमान से चूर, क्रोध और लोभ के हाथों में खिलौना बन रहा है। इसके साथी राजा लोग भी पके हुए फल की भान्ति शीघ्र ही गिरने वाले हैं!

श्याम—महाराज धृतराष्ट्र और कुरु सभा के सभासदो! समझ नहीं आता कि आप लोग ऐश्वर्य मद में मत इस सुयोधन को क्यों दण्ड नहीं देते? आपके कल्याण का यदि कोई उपाय हो सकता है तो केवल यही कि आप लोग कर्ण, शकुनि, दुःशासन और सुयोधन को बांध कर पांडवों को सौंप दें। आप को भूला नहीं होगा कि महाराज उग्रसेन के जीवन में कंसराज ने उनका राज्य

छीन कर प्रजा पर अत्याचार करने आरम्भ किये थे, तो मैं ने उसे मार कर महाराज उग्रसेन को उनका राज्य दे दिया था। कंस मर गया, पर अब समस्त यादव सुख से दिन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे ही समय के लिये नीतिमानों का कथन है कि "कुल के लिये एक पुरुष को, ग्राम के कारण एक कुल को, देश के लिये एक ग्राम को और अपने लिये समस्त पृथ्वी को त्याग देना चाहिये।"

धृतराष्ट्र—(विदुर को सम्बोधन करके) जाओ, महारानी गान्धारी के पास जाओ। उन्हें सारी कथा बता कर कहो, कि हो सके तो सुयोधन को समझाएँ। प्रतीत होता है कि इस अभागे की हठ सारे देश का सर्वनाश करके रहेगी।

सभा का अधिवेशन समाप्त नहीं हुआ था, महारानी गान्धारी राजकुमार सुयोधन के साथ माथा मार कर हार चुकी थीं, और अब सभा इस बात पर विचार कर रही थी कि भविष्य में क्या करना चाहिये ? कि भगवान् श्याम को एक चोबदार ने एक पत्र लाकर दिया, उसे पढ़कर वह अपने स्थान से उठ खड़े हुए और एक क्षण भर में साथ के कमरे में महारथी सात्यकि के साथ वार्त्तालाप कर रहे थे। यह वार्त्तालाप अधिक काल पर्य्यन्त नहीं हुआ। सात्यकि सभा से बाहर चले गये और भगवान श्याम भीतर जाकर महाराज धृतराष्ट्र से बोले :—

श्याम—श्री महाराज ! यदि राजकुमार सुयोधन को एक क्षण के लिये अवकाश हो तो पधारने का कष्ट दीजिये, मुझे उन्हें एक अन्तिम सन्देशा देना है।

इस प्रार्थना के उत्तर में युवराज कुछ क्षण में ही सभा-मंडप में उपस्थित हो गये। उन्हें आया देख श्याम जी ने कहा :—

श्याम—श्री महाराज! आपको विदित है कि मैं इस समय आपके समीप पाण्डव लोगों की ओर से दूत के रूप में उपस्थित हुआ हूँ, और दूत प्रत्येक देश और जाति के धर्मानुसार अवध्य है। उसे भेजने वाले राजा की जिह्वा कहा जाता है, इसलिये यदि वह मुख से अपशब्द भी निकाल दे, तो उसे दण्ड नहीं दिया जाता। इसके अतिरिक्त मेरी दूसरी प्रस्थिति आपके सम्बन्धी की है। उस सम्बन्धी की, जिसकी सेवा में अभी बहुत काल व्यतीत नहीं हुआ, राजकुमार सुयोधन सहायता के प्रार्थी होकर उपस्थित हुए थे। परन्तु शोक और लज्जा का स्थान है कि आज इस देश में, इस राज्य में, इस नगर में, जहाँ महाराज धृतराष्ट्र ने अपने युवराज को सर्व अधिकार दे रक्खे हैं, जहाँ भीष्म, द्रोण और विदुर सरीखे कुरु वृद्धों और आचार्यों की सम्मति का निरादर करके कर्ण, शकुनि और दुःशासन की वाणी सुनी जाती है, हाँ इस देश और इस राज्य में दूत को बाँधने के प्रस्ताव किये जाते हैं! न केवल प्रस्ताव ही किये जाते हैं वरन उनकी पूर्ति के सम्पूर्ण साधन जुटाए जाते हैं!!

महाराज! आप विस्मित न हों, यह सत्य है और युवराज स्वयं यह स्वीकार करेंगे कि उनकी अन्तरंग सभा ने मुझे जकड़ने के सारे सामान पक्के कर लिये हैं। यह पकड़, यह बन्धन, कहां और किस स्थान पर होगी? ऋषियो! मुनियो! और इस

सभा के सभासदो ! सुन लो, महाराज की सभा में, महाराज धृतराष्ट्र के सामने, भीष्म द्रोण आदि सभासदों के सन्मुख, मुझे हथकड़ियां और बेड़ियां पहनाने के लिये कुरु शूरवीर और योद्धा चले आ रहे हैं, जो यदि इस समय पर्य्यन्त स्वयं हथकड़ियां नहीं पहन चुके तो कुछ क्षणों में यहां होंगे।

(सुयोधन को सम्बोधन करके)

युवराज ! मैं तुम्हारा शत्रु न था और न हूँ। तुम्हें स्मरण होगा कि भावी युद्ध में भी, जो अब निश्चित है, मैंने तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है, फिर तुमने यह अधर्म करने का साहस क्यों किया ? क्या इसलिये कि मैं इस सभा में अकेला हूँ ? (अट्टहास करके) युवराज ! तुम भूलते हो, श्याम को हथकड़ियां और बेड़ियां पहनाने वाले पुरुष ने अभी माता के उदर से जन्म नहीं लिया। उस शूरवीर योद्धा ने अभी इस जगत की हवा नहीं खाई जो श्याम के शरीर पर सफलता से हाथ डाल सके। तनिक मेरे नेत्रों से नेत्र मिलाओ और इस सभा के बाहर दृष्टि डालो। देखते हो कितने शूरवीर अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर हस्तिनापुर के बाजारों में रक्त की नदियाँ बहाने को तैयार खड़े हैं। क्या तुम यह समझ बैठे हो कि कृत-वर्मा तुम्हारा सहायक होकर पाण्डवों से युद्ध करने को उद्यत है तो वह श्याम का भी शत्रु बन गया ? और मेरी अपनी नारायणी सेना तुम्हारी सेना में सम्मिलित होने से मेरे प्रेम से विमुख हो गई है ? यदि तुम इस भूल-भुलैयां में पड़े हो तो आओ मेरे

शरीर को हाथ लगा कर देखो और तुम्हें ज्ञात हो जायेगा कि कौरव पाण्डव अथवा कुरु पांचाल युद्ध से प्रथम कौरव यादव युद्ध का खेल खेला जाता है वा नहीं। स्मरण रखो ! मैं इतने शूरवीरों के सहित ही नहीं वरन अकेला तुम्हें बांधकर पाण्डव सेना में ले जा सकता हूं, परन्तु नहीं, तुम अपने धर्म से पतित हुए हो तो श्याम ऐसा नहीं करेगा, यद्यपि यह अनुचित नहीं।

यह कहकर श्याम जी ने ऋषियों को नमस्कार किया, और कृतवर्मा और सात्यकि के हाथ में हाथ दिये हुए सभा से बाहर निकले, जहाँ पर दारुक सारे अस्त्रों-शस्त्रों से सुसज्जित रथ लिये खड़ा था। श्याम कृतवर्मा के साथ रथारूढ़ होकर चलने को ही थे, कि महाराज धृतराष्ट्र विदुर के कन्धों का आश्रय लिये हुए आ पहुंचे और दुखी हृदय से कहने लगे :—

धृतराष्ट्र—श्यामजी ! पुत्रों पर मुझे जो कुछ अधिकार है वह आपने देख ही लिया। यह भी आपने देख लिया कि इन लोगों के कल्याण के लिये मैंने अनेक प्रकार से यत्न किया। मैंने ही नहीं भीष्म, द्रोण, विदुर और गान्धारी ने भी शक्ति भर यत्न किया। पर भावी अटल है आप उसके लिये मुझे दोष न दीजिए। मैं चाहता हूं कि भाइयों-भाइयों में प्रेम बढ़े। पाण्डव भी मुझे वैसे ही प्रिय हैं जैसे कौरव, परन्तु वश न चले तो क्या करूं ?

श्याम—(सब को सम्बोधन करके) कौरव सभा में जो घटना हुई, सुयोधन ने जिसे दुर्योधन कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्रोध के वश होकर जो कुछ करने की चेष्टा की और महाराज

धृतराष्ट्र ने निज को जिस प्रकार असमर्थ बताया, यह आप लोगों ने श्रवण कर लिया। अब मेरे लिये और कुछ करना शेष नहीं। इस लिये आप सब से विदा मांगता हूं।

यह कह कर वह रथासीन हो गये। दारुक ने घोड़ों की बागें उठाईं और विदुर जी के निवास का रुख किया। क्योंकि श्याम जी जाने से पूर्व महारानी कुन्ती से विदा होना चाहते थे

× × ×

बूआ कुन्ती से मिल और पुत्रों के नाम उनका सन्देश लेकर श्याम जी विदुर जी के निवास-स्थान से बाहर निकले, तो कुरु श्रेष्ठ भीष्म, द्रोण, कृपा और कर्ण आदि शूरवीर उन्हें विदा करने के लिये उपस्थित थे। उन से समयानुकूल वार्तालाप करने के पश्चात् श्याम जी ने रथ पर सवार होते हुए कर्ण को खींच कर अपने साथ बिठा लिया। रथ अल्प-काल में ही नगर से बाहर पहुँच गया। उस समय कर्ण से श्याम जी ने कहा :—

श्याम—महात्मन्! आपने वेदों को पढ़ा है, शास्त्रों का पाठ किया है, नीति का अध्ययन किया है, क्या आपको ज्ञात है कि कुमारी से जो पुत्र उत्पन्न हो वह "कानीन" कहलाता है और उस पिता का पुत्र कहा जाता है जिसके साथ वह व्याही जाय?

कर्ण—हाँ मुझे ज्ञात है।

श्याम—तो मुझे आज आप पर एक रहस्य प्रकट करना है जिसके लिये मैं आपको हस्तिनापुर से बाहर ले आया हूं।

कर्ण—आज्ञा कीजिये।

श्याम—आपको विदित है कि आपके जन्म के सम्बन्ध में एक कथा प्रसिद्ध है ?

कर्ण—हां, मैं यह जानता हूं कि मैं अधिरथ सूत और उन की स्त्री राधा का औरस पुत्र नहीं हूं, यद्यपि उन्होंने वास्तविक माता-पिता से अधिक मुझ पर कृपा दृष्टि रक्खी है।

श्याम—आपके जन्म की कथा केवल कुछ ही मनुष्यों को विदित है, परन्तु समय आ गया है कि विश्व इस तथ्य को जान ले कि शूरवीर कर्ण महाराज पण्डु और महारानी कुन्ती के कानीन पुत्र हैं और पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता।

कर्ण—श्याम जी! मैं जन्म से अधिरथ को अपना पिता और राधा को अपनी माता समझता आ रहा हूं। उन्होंने मेरा पालन-पोषण किया और मुझे बड़ा किया, उन्होंने अपने सजातियों में मुझे ब्याहा, वही इस समय पर्य्यन्त मेरे दुःख और कष्ट के साथी रहे। माता कुन्ती ने यदि मुझे जन्म दिया तो इसलिये कि मुझे नदी में बहा दे, क्योंकि मेरी उत्पत्ति उसके लिये लज्जा का कारण थी। इसलिये मैं अब राधा को माता कुन्ती के लिये त्यागने को उद्यत् नहीं।

श्याम—पाण्डव इस समय पर्य्यन्त इस रहस्य से अनभिज्ञ हैं। मैं चाहता हूं कि आप मेरे सहित चलें। मेरे यह घोषणा करने पर महाराज युधिष्ठिर आपको राज्य अर्पण करने में गर्व अनुभव करेंगे, भीम और अर्जुन फूले नहीं समायेंगे, नकुल और सहदेव आप की सेवा में आनन्द प्राप्त करेंगे। देशों-देशों के राजा आपके

चरणों में शीश झुकायेंगे।

कर्ण—श्याम जी! मैं आपकी कृपा के लिये कृतज्ञ हूँ। निस्सन्देह आप जो कथन कर रहे हैं, मेरे हित के लिये है। परन्तु शोक है कि मैं आपकी इच्छा पूर्ण करने में असमर्थ हूँ।

श्याम—क्यों?

कर्ण—मैं महाराज युधिष्ठिर को जानता हूं, उनके धर्मभाव से परिचित हूं और यह भी समझता हूं कि यदि उन्हें झूठे भी इस रहस्य का, जो आपने कथन किया, ज्ञान हो गया तो वह समस्त राज्य मेरे समर्पण कर देंगे। परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा से विवश होकर वह सारा राज्य सुयोधन के अर्पण कर दूंगा। इस प्रकार आपकी इच्छा पूर्ण न हो सकेगी।

श्याम—(मुस्करा कर) प्रतीत होता है कि विधाता ने राज्य तुम्हारे भाग्य में नहीं लिखा। मैं तुम्हें पृथ्वी का राज्य दे रहा हूं और तुम अस्वीकार कर रहे हो!

कर्ण—श्याम जी! सुयोधन केवल मेरे बल पर पांडवों से युद्ध के लिये तत्पर है, यह विश्व जानता है। यदि मैं इस समय उसका साथ छोड़ कर आपका कथन स्वीकार कर लूं तो मुझ से अधिक कृतघ्न और नीच और कोई न होगा। क्षमा कीजिये। न तो मृत्यु के भय से, न राज्य के लोभ से, मैं उसे मँझधार में छोड़ सकता हूं। युधिष्ठिर धर्मराज हैं, वह अपना समस्त जीवन धर्म कार्यों में बिता चुके हैं, वह इस योग्य हैं कि भारत पर निष्कंटक राज्य करें, आप से आश्रय पाये हुए, भीम, अर्जुन

से सुरक्षित, वह अखंड पृथ्वी-मंडल का राज्य प्राप्त करेंगे। प्रजा उन से सुखी होगी और वह प्रजा के दुःख क्लेश को दूर करने का उपाय करेंगे। इसलिये इस समग्र वार्त्तालाप को अपने हृदय में रख कर कर्ण को भूल जाने की चेष्टा कीजिये। वह यदि बच गया तो आपके दर्शन फिर करेगा। अधिक आशा तो यही है कि स्यात स्वर्ग में ही उसे आपके साथ मिलने का अवसर प्राप्त हो। मैं आपका धन्यवाद करता हूं कि आपने मुझे हृदय से लगाने का यत्न किया, परन्तु मैं जिस पथ पर चल चुका हूं उस में इतना मार्ग कट चुका है कि लौटना असम्भव है।

श्याम—महात्मन ! मैं आपकी कठिनाई को अनुभव करता हूं, इसलिये अधिक हठ नहीं कर सकता। यदि दैव ने निश्चित कर रक्खा है कि भारतवर्ष में भाई-भाई का गला काटें तो मैं इसे कहां रोक सकता हूं ? अच्छा ! इतना ही पर्य्याप्त है कि मैंने अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर दिया। प्रतीत होता है कि जब विनाश का समय निकट आता है तो मनुष्यों की बुद्धि में अन्तर पड़ जाता है, वह बुरी बात को भली और भली को बुरी समझने लग जाते हैं।

× × ×

तत्पश्चात् दोनों शूरवीरों ने परस्पर आलिंगन किया और कर्ण रथ से उतर कर हस्तिनापुर को चल दिये। दारुक ने बागें उठाईं और अल्प काल में अश्व वायुवेग से पांडव सेना के समीप पहुंच गये।

भीष्म प्रतिज्ञा

कुरुक्षेत्र के पवित्र स्थान को रक्तक्षेत्र बनने से बचाने, भारत को विध्वंस के मार्ग से हटाने और लाखों बालकों को अनाथ और सहस्रों पतिव्रताओं को विधवा बनाने से रोकने के लिये भारत नहीं विश्व भर के सर्वोत्तम पुरुष से जो हो सका उस में कोई उपाय शेष नहीं रक्खा गया। परन्तु भावी अटल है। होनहार को रोकना किसी की शक्ति में नहीं। इस कारण ऊँच-नीच समझाने और भावी विनाश का पूर्ण चित्र प्रत्यक्ष दिखाने पर भी सुयोधन की हठ में कमी न हुई। रक्तपात को रोकने के लिये यहां तक भी कह दिया गया कि पाण्डव सुयोधन को युवराज स्वीकार करने के लिये प्रस्तुत हैं, यदि वह उन्हें जीविका-निर्वाहमात्र के लिये कम से कम पांच गाँव देने को तैय्यार हो जाये परन्तु यह सुझौती घृणा पूर्वक अस्वीकार कर दी गई। अब इसके अतिरिक्त और क्या चारा था कि लोहे से लोहा बजे, एक मनुष्य की हठ पर लाखों मनुष्यों का बलिदान किया जाय और फिर जिसे दे ईश्वर!

देशभक्त-श्याम की हस्तिनापुर से असफल वापिसी, युद्ध के नक्कारे पर चोट का अर्थ रखती थी, उन्होंने उपप्लव में आकर बताया कि महाराज धृतराष्ट्र नाममात्र के राजा हैं, सभा केवल दिखावा

है और उसके सदस्य विवश। उन में से किसी में भी यह शक्ति नहीं कि यह स्वीकार करने पर भी कि पाण्डव सत्यपर हैं और उन की मांग अत्यन्त अल्प है, यह स्वीकार करते हुये भी कि यदि उनकी मांग को न माना गया तो लाखों करोड़ों मनुष्यों के शरीर चील-कौओं के भोज्य बनेंगे और कौन जाने यह राजा और महाराजा, यह सदस्य और यह सेनापति युद्ध का अन्त देखने को जीवित रहेंगे वा नहीं। हां इस पर साक्षी देने पर भी कि पांडव इतने निर्बल नहीं कि उनकी मांग को पांव की ठोकर मार कर कोई मनुष्य सुख की नींद सो सके, किसी में यह साहस नहीं कि भावी रक्तपात को रोक दे।

उन्होंने पाण्डवों की युद्ध समिति को यह सुनाया कि जहां पर शान्ति स्थापना के लिये न्यून से न्यून मांग उपस्थित की गई थी वहां पर यह भी कह दिया गया था कि यदि एक मनुष्य (सुयोधन) की हठ देश और जाति के विनाश का कारण हो रही है तो क्यों न उसे बन्दी बना दिया जाय। इसके समर्थन में कंसराज का उदाहरण भी दिया गया, परन्तु यद्यपि कौरव सभा रथी और महारथियों से भरपूर थी, उस में बड़े-बड़े वीर और योद्धा विद्यमान थे, तो भी किसी में यह साहस नहीं हुआ कि सुयोधन से यह पूछ सकता कि भय्या! तुम्हारे मुख में के दांत हैं?

इसलिये महाराज युधिष्ठिर के लिये इस के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं रहा कि अपने अधिकारों की रक्षा के लिये शरीर और प्राण की बाजी लगा दी जाय। इसलिये उपप्लव में स्त्री और

बालकों को एक बलवान सेना के संरक्षण में छोड़ कर शेष सेना को कूच की आज्ञा दी गई।

महाराज यज्ञसेन के सुपुत्र धृष्टद्युम्न सेनापति बनाये गये। सेना के सात भाग कर के एक अक्षौहिणी* का नेतृत्व सीधे सेनापति के हाथों में और शेष छः अक्षौहिणियों का सात्यकी, यज्ञसेन, विराट्, शिखण्डी, धृष्टकेतु और महाराज जरासन्ध के सुपुत्र

---

*अक्षौहिणी का विवरण निम्नलिखित है :—

नाम—	—हाथी	—रथ	—अश्व	—पदाती
पत्ति	१	१	३	५
सेनामुख	३	३	९	१५
गुल्म	९	९	२७	४५
गण	२७	२७	८१	१३५
वाहिनि	८१	८१	२४३	४०५
पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५
चमू	७२९	७२९	२१८७	३६४५
अनीकिनि	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५
अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०

अथवा ३ पत्ति= १ सेना मुख

३ सेनामुख=१ गुल्म

३ गुल्म= १ गण

३ गण= १ वाहिनी

सहदेव के सुपुर्द किया गया। अर्जुन उन सेनापतियों और प्रधान सेनापति के प्रधान नियुक्त हुए, देशभक्त-श्याम उनके परामर्श-दाता थे।

कुरुक्षेत्र में पहुंच कर अनुभवी सेनानायक ने सात्यकि और अर्जुन के परामर्श से हिरण्यवती नदी के तट पर डेरा डाल दिया।

कौरव सेना भी विश्व-विख्यात सेनापति भीष्म पितामह के आधीन हस्तिनापुर से चली। गुरु द्रोण उनके दक्ष और और कर्ण, जयद्रथ इत्यादि शूरवीर उन के वाम पक्ष में थे। सेनापति के पद को स्वीकार करते हुये वृद्ध सेनापति ने सुयोधन को सम्बोधन कर के कहा।

भीष्म—राजकुमार! देवों के देव को नमस्कार करके आज मैं यह पद ग्रहण करता हूं। सेना के संचालन, व्यूह रचना, वैतनिक और अवैतनिक सेना से कार्य लेने, आक्रमण और युद्ध इन कार्यों में मैंने केश श्वेत किये हैं। देवता, गन्धर्व और मनुष्य तीनों प्रकार के युद्ध से मैं पाण्डव सेना का नाश करके विजय प्राप्त का यत्न करूंगा। जब तक शरीर काम देता है तुम्हें चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

सुयोधन—पितामह जी! जब आप और आचार्य्य जी मेरे

---

३ वाहिणी=	१	परतिना
३ परतिना=	१	चमु
३ चमु=	१	अनी किणि
१० अनी किणि=	१	अक्षौहिणी

पार्श्व में हैं, तो मुझे चिन्ता क्यों होने लगी ? पर भगवान् श्याम अर्जुन के सहायक हैं, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति यह कहता सुना जाता है कि वह अजेय हो गया है।

भीष्म—राजकुमार ! मैं मानता हूं श्याम इस समय अपनी उपमा स्वयं हैं, विश्व में उन के जोड़ का शूरवीर, नीतिमान और धर्म के मर्म को समझने वाला दूसरा कोई नहीं, परन्तु उन की प्रतिज्ञा है कि वह इस युद्ध में शस्त्र नहीं उठायेंगे।

सुयोधन—मेरे विचार में इसी लिये तो वह पूर्व से अधिक भयानक हो गये हैं।

भीष्म—(आवेश से) यदि उधर श्याम हैं तो इधर भीष्म है। यदि श्याम जी की प्रतिज्ञा को न तुड़वाया तो शान्तनु-पुत्र कहलाना छोड़ दूंगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।

अमर उपदेश

वर्त्तमान कुरुक्षेत्र और थानेसर से भोया जाने वाले राज मार्ग पर, स्थानेश्वर से कोई पांच मील के अन्तर पर एक छोटा सा गांव है जिस के साथ सम्मिलित एक छोटा सा जौहड़ ज्योतिसर नाम से प्रसिद्ध है। इस जौहड़ के नाम पर ही उस गांव को ज्योतिसर के नाम से पुकारा जाता है। आज यह जौहड़ गांव के पशुओं को जल पिलाने और स्नान कराने के काम आता है, परन्तु उस समय जिस का हम वर्णन कर रहे हैं यह हिरण्यवती नदी का पाट था, जो कुरुक्षेत्र के मैदान को सींचती हुई भोया की ओर मुख किये बहती थी। इस नदी का जल भारत के लाखों सपूतों के रक्त से रंजित होने को तैय्यार था। दूर-दूर तक जिधर दृष्टि जाती थी साहसी और निर्भय शूरवीरों के कवच पर पड़ कर चका-चौन्द हो जाती थी, जो एक मनुष्य के हठ को निबाहने और तोड़ने के लिये अपने शरीर और प्राणों को युद्धाग्नि में झोंकने के लिये निकट व दूर से इस स्थान पर एकत्र हुये थे। व्यक्तिगत रूप में न उन में कोई शत्रुता थी न कुछ और, फिर भी वह एक दूसरे के शरीर को शस्त्रों से बींधने के लिये शस्त्रों को सम्भाल कर आज्ञा की प्रतीक्षा में थे। चारों ओर वातावरण आवेश पूर्ण था। मनुष्य, पशु, सैनिक, जरनैल, घोड़े, हाथी सब के सब

अधीरता पूर्वक उस समय की प्रतीक्षा में थे जब उभय पक्ष के सेनापतियों का एक शब्द दियासलाई की भाँति भुस में चारों ओर उस अग्नि की लपटें प्रज्जवलित कर देगा जो भारत ही नहीं संसार को एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक जला कर भस्मीभूत कर देगी। उस समय शूरवीर अर्जुन ने ज्योतिसर के स्थान पर अपने सारथी से कहा: —

अर्जुन— श्याम जी ! यदि मैं भूल नहीं करता तो वह सन्मुख पाण्डव और कुरुओं के शिरोमणि भीष्म पितामह हैं, जो श्वेत वस्त्र धारण किये, श्वेत घोड़ों के रथ पर आरुढ़, ध्यान पूर्वक हमारी ओर घूर रहे हैं। उनके दक्षमें मुझे गुरुजी सेना को उपदेश देते दृष्टि-गोचर होते हैं। वाम भाग में कृपाचार्य्य जी हैं। वह आगे ब्राह्मण-कुल भूषण अश्वत्थामा जी दीख पड़ते हैं।

श्याम—हां, हां सामने जिस पताका पर कमण्डल, वेदी और धनुष का चिन्ह है, आचार्य्य शिरोमणी द्रोण जी की है। अश्वत्यामा जी का झण्डा सिंह की पूंछ से पहचाना जाता है, और सुयोधन नाग के चिन्ह वाले झण्डे के नीचे सेना का निरीक्षण कर रहे हैं। इसी प्रकार वाराह के चिन्ह से जयद्रथ और सिन्धु देश की ध्वजा पहचानी जाती है। तुम लोगों के, विशेषरूप से नकुल और सहदेव के सगे मामा महाराज शल्य उस ओर एक अक्षौहिणी सेना सुसज्जित किये खड़े हैं।

अर्जुन—(कुछ काल पर्य्यन्त सोचते हुये) श्याम जी ! आज पर्य्यन्त हम लोग केवल कल्पना से ही इस दृश्य का चित्र दृष्टि के

सन्मुख लाते रहे हैं। परन्तु जो कुछ कहा करते थे आज नेत्रों के सन्मुख है। इसे देख कर मेरे मन में आ रहा है कि क्या सत्य ही मुझे भीष्म जी के शरीर पर बाण वर्षा करनी होगी? क्या वास्तव में गुरुदेव हम लोगों को धरती तल से उठा देने के लिये कृपाण ले कर हम पर चढ़ दौड़ेंगे? क्या महाराज शल्य अपने भगिन पुत्रों का रक्त निज कर से बहायेंगे?

उफ! मेरा तो इस दृश्य को देख कर शरीर पानी-पानी हुआ जाता है। मुख सूख रहा है। टांगें काम करने से जवाब दे रही है! क्या कोई उपाय नहीं जिस से इस रक्त-पात को रोका जा सके?

श्याम—(अर्जुन के मुख पर एक गम्भीर दृष्टि डालते हुये) शत्रु सेना को सन्मुख खड़ा देख कर शूरवीरों के रक्त आवेश से उबला करते हैं, परन्तु तुम यह क्या असमय की रागनी छेड़ रहे हो! तुम्हारे विचार इस समय किस ओर चल रहे हैं?

अर्जुन— श्याम जी! यह तो शत्रु सेना नहीं। हम लोगों के ही अंग के अंग, हम लोगों के ही बन्धु बान्धवों की सेना है। क्या मैं द्रोण जी को शत्रु कह सकता हूं? क्या मैं भीष्म जी को शत्रु का नाम दे सकता हूं? क्या मैं अश्वत्थामा, कृपा, और अन्य आचार्य्यों को इस घृणित नाम से पुकार सकता हूं? नहीं, नहीं, सुयोधन और उस के भ्राता भी तो हम लोगों के सगे हैं, वह किसी विचार के प्रभाव से हम लोगों को मारने और हमारा रक्त-पात करने के लिये यहां एकत्र हुये हैं तो क्या मुझे भी इन्हीं की

भान्ति पागल हो जाना चाहिये ? श्याम जी ! यदि हम लोगों ने युद्धाग्नि में ईन्धन डाल दिया तो कुरु-कुल का नाम इस संसार से मिट जायेगा। इस कुल की स्त्रियां दुराचारणी हो जायेंगी। देश में चारों ओर विधवाओं और अनाथों की भरमार हो जायेगी, वर्णसंकर सन्तान उत्पन्न होगी। कुल धर्म मिट जायेंगे। मेरा तो उस समय को दृष्टि के सन्मुख लाते हृदय डोल रहा है। श्याम जी ! आप विद्वान हैं, आप धर्मावतार हैं, आप मेरे मित्र हैं, मेरे गुरु हैं। मुझे आगा-पीछा कुछ नहीं सूझता। मेरी सहायता कीजिये। मुझे सीधा मार्ग दर्शाइये। राज्य प्राप्ति के लिये, विश्व भर की लक्ष्मी एकत्र करने के लिये, मुझ से भ्राताओं पर, पितृजनों पर, गुरु पर, आचार्यों पर, सम्बन्धियों पर, शस्त्र वर्षा नहीं हो सकेगी। क्या हम लोग इतने नीच होगये हैं कि गुरुजनों के रक्त से सने हुये अन्न के टुकड़ों से अपना उदर पालेंगे ? श्याम जी ! भीष्म जी के श्वेत वस्त्र, उन का श्वेत रथ, उनके श्वेत केश क्या मेरे बाणों द्वारा रक्त रंजित होंगे ? क्या आचार्य्य जी ने हमें अस्त्र-शस्त्र विद्या की शिक्षा इसी लिये दी थी कि हम उससे उन्हीं के शरीर पर प्रहार करें ? नहीं नहीं ! मुझ से यह नहीं हो सकेगा ! मुझ शस्त्रहीन का यह रक्त बहा दें, परन्तु मैं इन पर शस्त्र नहीं चलाऊंगा।

यह कह कर शस्त्र फैंक कर अर्जुन रथ पर बैठ गया। उस समय उसके नेत्र अश्रुपूर्ण थे और बलिष्ठ शरीर आत्मावेश से कांप रहा था।

श्याम—अर्जुन ! तुम्हारे मनमें यह कायरता के विचार कहां से आगये ? यह नपुंसकता तुम्हें शोभा नहीं देती। हृदय की इस दुर्बलता को त्यागो ! अपने आस-पास देखो, शूरवीर किस प्रकार युद्ध के लिये सुसज्जित हो रहे हैं ?

अर्जुन—पितृजनों पर आक्रमण करने की अपेक्षा भिक्षा मांग कर खालेना उत्तम है। गुरुजी का रक्त-पात करके मिलने वाले भोगों से भूखा रहना अच्छा। ईश्वर जाने इस युद्ध में पराजय किस की होगी और जय किस की ? परन्तु भाई-बन्धु, सम्बन्धियों के लिये ही तो विश्व की समस्त सम्पत्ति एकत्र की जाती है, वही न रहे तो यह किस काम की ? श्याम जी ! इस समय मेरा सारा शरीर मोह और शोक वश निकम्मा हुआ जा रहा है। मैं जानता हूं, सन्मुख खड़े बन्धु-बान्धवों को मार कर मुझे संसार का राज्य मिल गया तो भी यह शोक मेरे आत्मा को शान्त नहीं होने देगा। मेरे नेत्रों के सन्मुख इस समय चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार है। धर्म मुझे नहीं सूझता। इसलिये आप से प्रार्थना है कि मेरे लिये जो उचित हो उस का उपदेश कीजिये।

श्याम (हँसकर) अरे ! आज तो अर्जुन बड़े भारी ज्ञानी और वैरागी बन गये ! परन्तु शोक उस बात का कर रहे हैं जिस पर शोक नहीं करना चाहिये (फिर गम्भीरता पूर्वक) भाई ! जो विचारशील हैं; जिनकी बुद्धि भ्रम में नहीं है, वह जीवित अथवा मृतक का शोक नहीं किया करते। उन्हें विचार होता है केवल अपने धर्म का। जानते हो कि तुम, मैं, और यह समस्त राजा,

और अन्य लोग पूर्व में भी थे, अब भी हैं, और भविष्य में भी होंगे। इस शरीर में आत्मा को जिस प्रकार बाल्यकाल, युवावस्था, और वृद्धावस्था आया करती है उसी प्रकार मृत्यु भी आया करती है, जो बुद्धिमान पुरुष हैं वह इन बातों से व्याकुल नहीं हुआ करते। इन्द्रियां जिस समय अपने-अपने विषयों के सम्बन्ध में आती हैं, शीत, ग्रीष्म, सुख, दुःख इत्यादि उत्पन्न हो जाते हैं। यह सम्बन्ध स्थायी नहीं होते इसलिये इन्हें सहन करना ही पड़ता है। जिस पुरुष को यह अस्थायी संयोग-वियोग दुखी नहीं करते वह अमरत्व को प्राप्त होकर जीवन मुक्त हो जाता है। तत्व-दर्शी लोग कहते हैं कि "जो नहीं वह हो नहीं सकता। और जो है वह कभी नहीं नहीं हो सकता।" इस शरीर में जिसने यह सारा ताना-बाना तना है वह अविनाशी है। उसका नाश नहीं हो सकता। यह शरीर अनित्य है. इसके भीतर इस का स्वामी जीवात्मा नित्य निवास करता है। जो इस जीवात्मा को मारने वाला अथवा मरने वाला समझता है वह मूर्ख है। यह न किसी को मारता है, न कोई इसे मार सकता है। इस का न जन्म है, न मरण। न यह बार-बार उत्पन्न होता है, न बढ़ता-घटता है। जिस प्रकार सर्व-साधारण पुराने वस्त्र उतार कर नवीन वस्त्र धारण कर लेते हैं, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर का परिवर्तन किया करता है। इसे शस्त्र काट नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, वायु सुखा नहीं सकता। यह नित्य है, स्थिर है, सनातन है, इन्द्रियों की पहुँच से

परे है इसे ऐसा जानने वाला प्रत्येक प्रकार के शोक से ऊपर हो जाता है। यदि इसे अनित्य भी समझ लिया जाय, तो भी शोक का कोई कारण नहीं। क्योंकि जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा अवश्य। इसी प्रकार जो मरता है, वह जन्म अवश्य लेगा। फिर उस न रुकने वाले चक्र के लिये रोने-धोने से क्या? हां स्वधर्म को सन्मुख रख कर कर्म करना आवश्यक है। कर्म से छोट नहीं। तुम्हें ज्ञात ही है कि क्षत्रिय का धर्म है, प्रत्येक प्रकार की कायरता को त्याग कर धर्म-युद्ध करना। वर्त्तमान युद्ध से अधिक धर्म-युद्ध और हो ही कौन सकता है, जिसे तुम ने सत्य की रक्षा के लिये लड़ना है? यह तो खुला हुआ स्वर्ग का द्वार है, जो किसी-किसी को ही प्राप्त होता है। यदि तुम इस से मुख मोड़ोगे तो अपनी आज तक की मान मर्य्यादा और प्रसिद्धि को बट्टा लगाओगे। लोग सदैव तुम्हारी निन्दा करते रहेंगे। जो तुम्हें आजतक शूर-वीर समझते रहे हैं, तुम्हें कायर, भीरु और डरपोक समझेंगे। शत्रु तुम्हारे हृदय के भावों को न जानते हुए सदैव के लिये तुम पर कलंक लगाते रहेंगे। शूरवीर के लिये इस से अधिक बुरी बात क्या हो सकती है? इस के विरुद्ध यदि तुम युद्ध में विजय प्राप्त करोगे, तो पृथ्वी-मण्डल का राज्य तुम्हारे चरणों में होगा। यदि मर भी जाओगे तो स्वर्ग के द्वार तुम्हारे लिये खुले होंगे। पर यह विचार ही क्यों करो? क्यों न सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय इन सब बातों को त्याग कर क्षात्र-धर्म को पूर्ण करने का यत्न करते हुए युद्ध के लिये अग्रसर हो? सारे वेदों का सार यह

है कि "तुम्हें कर्म करने का ही अधिकार है, कर्म करो किन्तु कर्म-फल की इच्छा न करो।" न तो कर्म-फल के लिये कारण बनो, न ही कर्म-त्याग की ओर तुम्हारी रुचि हो। आसक्ति त्याग कर, ईश्वर अर्पण कर के, सिद्धि और असिद्धि के विचार से ऊपर होकर कार्य करना ही कर्मयोग कहलाता है। जिस की बुद्धि कर्मयोग में लगी है, वह इस लोक में पुण्य और पाप दोनों से ऊपर हो जाता है। कर्मयोग से ही बुद्धिमान मनुष्य कर्मफल त्याग कर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं। तुम ने इस समय तक जितनी बातें कही हैं उन से प्रतीत होता है कि तुम्हारी बुद्धि कई प्रकार की उल्टी सीधी वैदिक और लौकिक बातों को सुनकर चकरा गई है। इसे स्थिर करने की आवश्यकता है, जिस का साधन केवल कर्मयोग है।

अर्जुन—स्थिर बुद्धि पुरुष के क्या लक्षण हैं?

श्याम—जिसका चित्त दुःख में डोलता नहीं, जो सुख की इच्छा नहीं रखता, जिसने राग, द्वेष, भय, क्रोध को जीत लिया है, जो इन्द्रियों को उन के विषय से इस प्रकार खींच लेता है जैसे कछुआ अपने अङ्गों को सकोड़ लेता है, वह स्थिर-बुद्धि है। वैसे तो खाना-पीना छोड़ देने से भी इन्द्रियाँ अपने विषयों को छोड़ देती हैं, परन्तु यह स्थिर बुद्धि होने का चिन्ह नहीं। क्योंकि इस में मन उन विषयों से बाहर नहीं निकलता। परन्तु जब मन वश में हो जाता है तो वह इन्द्रियों के विषयों को भोगता हुआ भी आत्मप्रसाद को पा लेता है। जिसे आत्मप्रसाद (सन्तोष) प्राप्त

हो जाता है, उसके सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं। उस की बुद्धि स्थिर हो जाती है। सब नदियाँ जैसे शान्त समुद्र में जाकर मिल जाती हैं, वैसे ही सब इच्छायें जिस में लीन हो जाती हैं वह योगी शान्ति पाता है।

अर्जुन—एक ओर तो आप कर्म पर बल दे रहे हैं और मुझे युद्ध में कूदने का उपदेश कर रहे हैं, दूसरी ओर मन को सब विषयों से खींच कर स्थिर करने को कह रहे हैं। मुझे इन दोनों बातों में बड़ा अन्तर दृष्टि-गोचर होता है। इसलिये कृपा कर के स्पष्ट कहिये। भूल-भुलैयां में न डालिये।

श्याम—इस जगत में कोई पुरुष ऐसा नहीं जो एक क्षण भर भी कर्म के बिना रह सके। उसकी इच्छा हो अथवा न हो, प्रकृति के गुण उसे बल-पूर्वक कर्म में लगा देते हैं। जो लोग यह कहते हैं कि हम कर्म नहीं करते, जगत को धोखा देते हैं। क्योंकि यद्यपि उनकी बाह्य इन्द्रियाँ कर्म में न प्रवृत्त हों परन्तु उनका मन इन्द्रियों के विषयों में भटकता फिरता है। इसलिये कर्म से मुक्ति असम्भव है। हां, यदि फल की इच्छा त्याग कर केवल अनासक्त भाव से कर्म किये जांय, तो वह बंधनकारी नहीं रहते। इसीलिये सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ने यज्ञ से सारी प्रजा को उत्पन्न कर के आशीर्वाद दे दिया था कि इसी 'यज्ञ से तुम फूलो और फलो"। यज्ञ उस कर्म को कहते हैं जिस में अपने स्वार्थ का लेश-मात्र भी न हो। इस प्रकार के कर्म से देवता प्रसन्न होते हैं और देवताओं के प्रसन्न होने से प्रत्येक वस्तु की वृद्धि होती है। इसी

लिये कहते हैं कि जो पुरुष देवताओं को अर्पण किये बिना पदार्थों को स्वयं भोग करता है वह चोर है। सज्जन पुरुष यज्ञ से बचा हुआ पदार्थ ग्रहण करके सब पापों से मुक्ति पाते हैं। देखो! प्रत्येक प्रकार के प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं; अन्न मेघ से उत्पन्न होता है, परन्तु मेघ उस यज्ञ-कर्म का फल है जो सूर्यदेव कर रहे हैं। उन्हें किसी फल की इच्छा नहीं, तद्यपि वह सागर से, नदियों से और अन्य स्थानों से, जल उठा कर वर्षा के रूप में पुनः उस को पृथ्वी पर पहुंचा देते हैं। यह देवताओं का यज्ञ है, इसे वह करते हैं इसलिये नहीं कि इस में उन्हें फल की इच्छा है, वरञ्च इसलिये कि यह उन का स्वाभाविक धर्म है। वृक्ष आदि सृष्टि खाद, जल आदि खा कर फल, पुष्प उत्पन्न करती है, फल की आकांक्षा से नहीं, वरन इस लिये कि यह कर्म उसका स्वाभाविक धर्म है। इसी प्रकार मनुष्य को इस संसार में अपना धर्म पूर्ण करते हुए विचरणा चाहिये, इस विचार से नहीं कि उसे उस में अमुक फल मिले, वरन इसलिये कि यह उसका धर्म है, जिसे किये बिना वह नहीं रह सकेगा। इस प्रकार किया हुआ कर्म बन्धन का हेतु नहीं होता, ठीक उसी प्रकार जैसे कि योद्धा युद्ध में सहस्रों पुरुषों को मार कर भी अवध्य रहता है, जिस प्रकार फांसी देने वाला कर्मचारी सैंकड़ों पुरुषों के गले में फांसी की रज्जु डाल कर भी उस कर्म का फल नहीं भोगता, यद्यपि कोई चोर, डाकू या अन्य पुरुष जो किसी अन्य को किसी प्रतिकार अथवा फल की इच्छा से मारता है उसका दण्ड पाता है।

अर्जुन! मनुष्य जाति को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्णों में विभक्त किया गया है। इन चारों वर्णों के धर्म भिन्न-भिन्न हैं। माना जाता है कि ब्राह्मण का धर्म इनमें सब से कठिन धर्म है, परन्तु क्षात्र धर्म का पालन भी सुगम नहीं। क्षत्रिय जगत में राज्य पाट अथवा लक्ष्मी प्राप्त करने के लिये ही नहीं भेजा जाता है, वरन इसलिये कि शक्तिशाली पुरुष निर्बलों पर अत्याचार न करने पावें और वह बल-हीन मनुष्यों का हाथ पकड़कर उन्हें बलवान मनुष्यों के अन्याय से सुरक्षित करें। जिस समय वह स्वधर्म पालन में कटिबद्ध होता है, उसके सन्मुख से भ्राता, बन्धु, पिता, पुत्र का भेद उड़ जाता है। उसके निकट यदि कोई देखने वाली बात होती है तो केवल यह कि अमुक मनुष्य ने पाप किया है, उसे इसका दण्ड देना है। यदि वह इस धर्म से पतित होकर भाई, बन्धु, पिता, पुत्र से पक्षपात करता है, तो क्षात्र धर्म से गिरता है; जिसका परिणाम यह होता है कि जगत में पाप की वृद्धि हो जाती है और संसार के लोग धर्म त्याग कर पापी हो जाते हैं।

आज तुम्हारे सन्मुख भी यही प्रश्न है। तुम्हें इस समय यह नहीं देखना चाहिये कि तुम पितामह की प्रतिद्वन्दता में खड़े हो अथवा पौत्र के, तुम मामा को दण्ड दे रहे हो अथवा भानजे को। देखना यह है कि तुम्हारे सन्मुख कौन खड़ा है, पापी अथवा पुण्यात्मा? यदि सामने वाली सेना पुण्यात्मा है, यदि इस सेना को समर भूमि में लाने वाले पुरुषों ने कोई पाप नहीं किया

तो विना इस विचार के कि वह तुम्हारे सम्बन्धी हैं अथवा कोई और, तुम्हारा धर्म कहता है कि उनकी रक्षा करो। परन्तु यदि उन लोगों ने पाप में भाग लिया है, यदि प्रत्येक प्रकार की प्रेरणा करने पर भी वह पाप को त्यागने और उसके लिये पश्चात्ताप करने को उद्यत नहीं हुये हैं, और यदि उन्हें पाप कर्म से हटाने का कोई और उपाय नहीं रहा, तो विना किसी फल की इच्छा के, विना किसी संकोच के, और विना इस विचार के कि वह तुम्हारे इस जन्म के सम्बन्धी हैं, तुम्हें युद्ध की अग्नि में पड़ना होगा। तुम हिचकिचाते हो, परन्तु मैं कहता हूं कि तुम्हारी प्रकृति तुम्हें अधिक समय पर्य्यन्त हिचकिचाने नहीं देगी। तुम अधिक समय पर्य्यन्त पाप को प्रफुल्लित होते नहीं देख सकोगे। इसमें उन लोगों का भी भला है। तुम्हारे ऐसा करने से वह भविष्य में पाप कर्म से रुक जायँगे। तुमको इस समय यह भी नहीं देखना, कि इसका परिणाम क्या है! तुम्हें अपने कर्म को ईश्वरार्पण करके केवल इस विचार से करना होगा कि यह धर्म है। इसमें सफलता हो अथवा न हो, तुम्हें प्रशंसा अप्रशंसा का कोई विचार नहीं करना। इसलिये हृदय को बलिष्ठ बनाओ और अपना धर्म पूर्ण करने के लिये उद्यत हो जाओ। आज तुम्हारा परीक्षा दिवस है। परीक्षा के समय यदि तुम पीछे हट गये, तो इसके स्पष्ट अर्थ यह होंगे कि तुम उन लोगों से तो न्याय करसकते हो जो तुम्हारे अपने नहीं, अपने सम्बन्धी नहीं, परन्तु जिस समय अपने सम्बन्धियों के विरुद्ध न्याय करना पड़े, तो तुम

परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सकते। एक क्षत्रिय के लिये जो सारे संसार के साथ न्याय करने के लिये जन्म लेता है, इससे बुरी कोई बात नहीं हो सकती कि वह अपनों से न्याय करते समय फिसल जाय। मुझे आशा है, नहीं तुम्हें इतने दीर्घकाल से जानते हुये मैं कह सकता हूं, कि भीष्म हो अथवा द्रोण, युधिष्ठिर हो अथवा श्याम, यदि वह पापी के रूप में तुम्हारे सन्मुख आयेंगे, तो तुम उनसे वैसा ही न्याय करोगे जिसके वह अधिकारी होंगे। उनका पितामह, गुरु, अथवा भ्राता होना उन्हें पाप कर्म के फल से नहीं बचा सकेगा।

अर्जुन—हा क्षात्र धर्म ! क्या तुझे पालन करते हुये मुझे कुल को नष्ट करना पड़ेगा !

श्याम—हां ! यदि तुम सदैव के लिये कलंक का टीका अपने मस्तक पर नहीं लगवाना चाहते, तो तुम्हें इस अग्नि में प्रवेश करना होगा।

अर्जुन—हा ! धर्म की मर्यादा कितनी कठिन है ! यह मार्ग कितना अगम्य है !!

श्याम—अर्जुन ! मैं पुनः कहता हूं तुम भूल भुलैयां में पड़े हुये हो, इतने विद्वान होकर, इतने महानात्मा होकर तुम आज सम्मोहित हो रहे हो। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि इस समस्त चराचर जगत के, इस समस्त सृष्टि के परमपिता परमात्मा हैं। यह सब कुछ उन्हीं का रूप है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पुत्र पिता का रूप हुआ करता है। परन्तु वही परमपिता जो प्राणी मात्र को अपना रूप

समझते हैं, जब जीवों को कुमार्ग पर चलता देखते हैं, तो उन्हें दन्ड देने में संकोच नहीं करते। वह इस समय पापियों का संहार करने के लिये तुम्हें और इन सर्व शूरवीरों को नमित्त मात्र बनाना चाहते हैं। हम लोगों ने उनकी इस इच्छा के मार्ग में खड़ा होने का यत्न किया, हमने भावी को रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु सफलता न हुई; क्योंकि यह उनकी इच्छा के विरुद्ध था। अब हमें इस इच्छा के साथ-साथ चलना होगा।

अर्जुन—क्या सत्य ही परमात्मा इन सारे शूरवीरों का, इन सारे राजाओं का, इन सारे महानुभावों का संहार करना चाहते हैं ?

श्याम—अर्जुन! मोह ने तुम्हारे नेत्र वन्द कर दिये हैं। तुम्हारा मस्तिष्क जो सदैव ठीक ठीक विचार किया करता था, इस समय मोहवश हुआ ठीक नहीं सोच रहा, परन्तु यदि तुम उस दृश्य को देख सकते जो मेरे नेत्रों के सन्मुख है, तो कभी वह शब्द मुख से न निकालते जो इस समय तुम्हारी जिह्वा से निकल रहे हैं। भाई! मैं तुम्हें दोष नहीं देता। एक समय था जब कि मुझे भी इसी प्रकार विचार करना पड़ा था जिस प्रकार तुम कर रहे हो। तब एक ओर मामा कंसराज का पापाचरण था और दूसरी ओर उसका हम लोगों से प्राकृतिक सम्बन्ध, परन्तु हमने तत्व को समझ कर ईश्वर इच्छा के सन्मुख शीश झुका दिया, और कंसराज को अपने पापों का फल चखना पड़ा। यदि हम उस समय ऐसा न करते, तो कौन जाने कितने पापों और कितने

अत्याचारों का उत्तरदायित्व हम लोगों पर होता ? क्योंकि निःसन्देह वह जो पाप करता है, जो पाप करने में उसकी सहायता करता है, और वह जो उसे इससे रोकने के लिये हाथ नहीं उठाता सारे के सारे पापी हैं।

अर्जुन—तो क्या मेरे विचार मुझे पाप की ओर ले जा रहे हैं ? क्या मैं जो कुछ कह रहा हूँ ठीक नहीं है ?

श्याम—क्षत्रिय जगत में प्रभु का रूप बन कर आता है। यदि वह अपनों से पक्षपात करके उस रूप का अपमान करता है, तो पाप की वृद्धि का कारण बनता है। पर अब तो समय आ गया है, यदि तुम चाहो भी तो ईश्वर इच्छा के मार्ग में नहीं ठहर सकते। पापी के पाप का प्याला भर चुका है और अब उसमें एक बूंद और पड़ने का स्थान नहीं रहा॥

अन्तिम शब्द सुनकर अर्जुन चौंके और उन्होंने श्याम जी के मुख की ओर निहारा तो ऐसा प्रतीत हुआ कि वह इस प्राकृतिक जगत से ऊपर उठे हुये कह रहे हैं :—

श्याम—अर्जुन ! देखते नहीं, यह सब लोग जो इस स्थान पर एकत्र हुये हैं, आत्मा हैं। न कोई इन्हें मारने वाला है न कोई मरने वाला है। हां पापियों ने पाप का दण्ड भोगना है, इस के लिये तुम्हें केवल साधन बनाया गया है, नहीं तो वह देखो यह सब के सब किस प्रकार स्वयं काल के मुख में भागे जा रहे हैं !!

अर्जुन ने उधर दृष्टि की जिधर श्याम जी ने अंगुली

उठाई थी, तो वह दृश्य देखा जो आज पर्य्यन्त किसी मनुष्य ने नहीं देखा। महाभारतकार के शब्दों में उसकी दृष्टि के सन्मुख से एक आवरण सा हटा। उसके पीछे एक प्रकाश था, जो सहस्रों नहीं करोड़ों सूर्यों को अपने प्रकाश से चकाचौंध कर रहा था। उसे देख कर उसके नेत्र मुंद गये, तो उसके दिव्य नेत्रों के सन्मुख एक मूर्ति दृष्टिगोचर हुई, जो पृथ्वी से लेकर आकाश पर्य्यन्त फैली हुई, बल्कि उस से भी बहुत आगे निकल गई थी। वह मूर्ति यहां, वहां, सब स्थान पर थी। पृथ्वी, आकाश, वायु जल सब स्थानों के मनुष्य, जीव जन्तु, मच्छ, कच्छ, पर्वत, नदियां उसके एक अंग में समा रहे थे। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, उसे चरण वंदना कर रहे थे। उसके चारों ओर फैले हुये लाखों भुजायें, लाखों नेत्र, और सहस्रों पेट थे। अर्जुन ने उस समय फिर कुरुक्षेत्र के स्थल की ओर दृष्टि डाली तो ऐसा प्रतीत हुआ कि भीष्म, द्रोण कर्ण, दुर्योधन, सात्यकि, कृतवर्मा शल्य, द्रुपद, विराट और अन्य राजागण सब के सब उस मूर्त्ति की ओर मुख किये भागे जा रहे थे। उसने उन्हें रोकने का यत्न किया। परन्तु अँगुली भी न हिल सकी। उस समय अर्ध मूर्छितावस्था में उसके अन्तरात्मा से शब्द निकला:—

अर्जुन—भगवन ! आप कौन हैं ? यह मैं नहीं जानता। क्या आप इस संसार के कर्त्ता और विधाता हैं ? आपका यह रूप मेरे हृदय में भय का सँचार कर रहा है।

उत्तर में आवाज आई:—

'मैं काल हूँ, मृत्यु हूं, इस पृथ्वी पर पाप की वृद्धि हो गई, उसको रोकने के लिये तुम्हें और अन्य लोगों को निमित्त बनाया गया है। तुम्हारे सन्मुख तुम्हारे सम्बन्धी नहीं, हत्यारे खड़े हैं, पापियों को बाँध कर तुम्हारे सन्मुख लाया गया है कि तुम न्याय करने में हमारे सहायक बन कर यश लाभ करो। नहीं तो देख रहे हो यह स्वयम् हमारे ग्रास बने भागे चले आ रहे हैं !"

अर्जुन का शीश नम्रतापूर्वक झुक गया। उस समय उसका सारा शरीर कांप रहा था। परन्तु जिस समय उसने शीश उठा कर नेत्र खोले, तो सन्मुख श्याम जी खड़े मुस्करा रहे थे। उन्हें देख कर उसने कर जोड़ कर कहा—

अर्जुन—योगीराज ! योगेश्वर ! आपकी लीला अपार है। मेरे मन से अज्ञान का आवरण हट गया। निस्सन्देह आपकी दृष्टि जहाँ पहुंचती है, वहां तक हम लोगों की दृष्टि नहीं जा सकती।

युद्धारम्भ के लिये आज्ञा

युद्ध आरम्भ होने को था, उभय पक्षों के शूरवीर अपने अपने धनुषों की प्रत्यञ्चा पर हाथ रक्खे उन्हें चढ़ाने की तैयारियाँ कर रहे थे। प्रत्येक के हृदय में यह विचार था कि अभी एक क्षण में लाखों मनुष्य रक्त की नदी में स्नान करते हुये दृष्टिगोचर होंगे। अकस्मात पाण्डव सेना में से एक सुन्दर सेनापति निशस्त्र कौरव सेना की ओर जाता दीख पड़ा। लोगों ने नेत्र फाड़ कर देखा तो सेना के उत्कृष्ट सेनानायक, भारत के भावी सम्राट, महाराज युधिष्ठिर स्वयं पैदल जा रहे थे। उन्हें इस समय क्या सूझी ? क्या इस अन्तिम समय में अर्जुन की भाँति उनका कोमल हृदय भी हिल गया है और वह शत्रु के सन्मुख नाक रगड़ने को जा रहे हैं ? यह विचार उभय पक्ष की सेना और उनके सेनापतियों के मस्तिष्कों में विद्युत गति से चक्कर काट गया, और लोग इस अन्तिम यत्न का परिणाम देखने को श्वास रोक कर खड़े हो गए। अर्जुन रथारूढ़ थे, भ्राता को पांव पांव जाते देख कर रथ से उतरे और भागते हुये उनके साथ जा मिले। दूसरी ओर से वृकोदर भीम आ पहुँचे। उन्हें जाते देख कर नकुल और सहदेव भी भागते हुये आ गये, और उनकी देखा देखी अन्य राजागण भी उस जलूस में सम्मिलित हो गये। उस समय भीम ने विक्षिप्त

की सी अवस्था में भ्राता से कहा:—

भीम—भ्राता ! आप क्या कर रहे हैं ? क्या इस अन्तिम समय में सारी सेना को यूं ही कटवाओगे ?

युधिष्ठिर ने प्रश्न के उत्तर में केवल मुस्करा दिया; परन्तु श्याम जी ने सबको सम्बोधन करके कहा :—

श्याम—आप लोग घबरा क्यों रहे हैं ? क्या अभी तक आप की समझ में नहीं आया कि महात्मा युधिष्ठिर सीधे पितामह भीष्म की ओर जा रहे हैं कि युद्ध आरम्भ करने से प्रथम उनकी आज्ञा ले लें।

यह सुन कर सबकी जान में जान आई और वह गम्भीरता-पूर्वक अपने नेता के नेतृत्व में उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ श्वेत-केश भीष्मपितामह अपने श्वेत रथ पर आरूढ सेना को आदेश दे रहे थे।

समीप पहुंच कर युधिष्ठिर ने आदर पूर्वक उनके चरणों में शीश रखते हुए कहा:—

युधिष्ठिर—पितामह जी ! वह समय आ गया जिसे रोकने के लिये हम लोगों ने इतना यत्न किया। अब आज्ञा दीजिये कि कुरुकुल के नाश के लिये युद्ध आरम्भ हो !

यह शिष्टाचार देख कर पितामह जी के नेत्र जल स्रवित हो गये। उन्होंने मुर्झाये हुए स्वर में कहा :—

भीष्म—युधिष्ठिर ! वत्स ! आज अपनी नम्रता से तुमने मुझे जीत लिया ! कहो इस समय मैं तुम्हारे लिये क्या कर सकता हूं ?

युधिष्ठिर—पितामह जी ! आप हम लोगों से युद्ध करके क्षात्र-धर्म का पालन करेंगे। इसलिये मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता कि आप युद्ध की आज्ञा देकर हमें आशीर्वाद दें कि हम इस अग्नि-परीक्षा में उत्तीर्ण हों।

भीष्म—बेटा ! संसार धन का सेवक है, धन किसी का सेवक नहीं ! सुयोधन ने हम लोगों को स्वर्ण-शृङ्खलाओं से बांध रक्खा है, इसलिये यह जानते हुए भी कि धर्म तुम्हारे साथ है, तुम्हारे विरुद्ध शस्त्र धारण करने को उद्यत खड़े हैं। जाओ ! युद्ध आरम्भ करो, प्रभु तुम्हारी कामना पूर्ण करेंगे।

उत्तर में युधिष्ठिर ने ही नहीं, सब भ्राताओं ने शीश निवा दिये।

× × ×

जलूस आगे चला, और कुछ क्षणों में ही युधिष्ठिर द्रोण जी के चरणों पर शिर रक्खे कह रहे थे:—

युधिष्ठिर—गुरुदेव ! आज्ञा दीजिये कि युद्ध आरम्भ हो। आपके शिष्य आपसे प्राप्त धनुर्विद्या की परीक्षा देते हुए जी भर कर एक दूसरे का रक्त बहायें। कि कुल के किये हुए पापों का प्रायश्चित हो जाय।

द्रोण जी के वृद्ध नेत्रों से अश्रुओं की नदी वह निकली और वह युधिष्ठिर का शिर उठाते हुए कहने लगे :—

द्रोण—बेटा ! जाओ, युद्ध आरम्भ करो। हम लोग तो अर्थ के सेवक हैं, सुयोधन की स्वर्ण-शृंखलाओं में बंधे हैं, परन्तु तुम्हारे सहायक स्वयं श्याम जी हैं जो सदैव धर्म के रक्षक रहे हैं, उनकी

उपस्थिति में हम लाख यत्न करें, तुम्हें परास्त नहीं कर सकते।

× × ×

जलूस आगे बढ़ा। युधिष्ठिर कृपाचार्य्य जी से आशीर्वाद लेकर मामा शल्य के चरणों में शिर रख कर बोले:—

युधिष्ठिर--मामा जी! आज्ञा दीजिये कि युद्ध आरम्भ हो, आप अपने भानजों के हृदय अपने तीक्ष्ण बाणों से वेधें और आपके भानजे उत्तर में अपनी धनुर्विद्या के कौशल दिखायें।

शल्य—जाओ पुत्र! हमारा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। हम युद्ध करेंगे, परन्तु हमारी शुभ कामनाएं तुम्हारे साथ रहेंगी। प्रसन्नता पूर्वक युद्ध आरम्भ करो।

× × ×

इधर यह वार्त्तालाप हो रहा था, उधर श्याम जी कर्ण के हाथ में हाथ दिये कह रहे थे:—

श्याम--मैंने सुना है कि आपने भीष्म जी के दुर्व्यवहार से तंग आकर यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक भीष्म जीवित हैं आप कौरव-सेना में केवल दर्शक के रूप में ही रहेंगे?

कर्ण—यह सत्य है कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है कि जब तक भीष्म जीवित हैं मैं उनकी सहायता में शस्त्र धारण नहीं करूंगा।

श्याम— तो मैं एक प्रार्थना करूं जो स्वीकार करो तो?

कर्ण--कहिये।

श्याम— भीष्म पितामह को अपने बाहु बल पर और अपनी धनुर्विद्या पर अभिमान है, उसी के बल पर उन्होंने आपका

तिरस्कार किया है, फिर क्यों न आप उनके विरुद्ध अपनी शस्त्र-विद्या दिखा कर जगत को यह जानने का अवसर दें कि आप किसी अंश में भी उनसे हीन नहीं।

कर्ण—श्याम जी ! आप ठीक कह रहे हैं। परन्तु कर्ण जब भी युद्ध करेगा सुयोधन की ओर से। भीष्म जी ने उसका तिरस्कार किया है, वह सदैव से उसे कुदृष्टि से देखते आये हैं, परन्तु वह इस समय सुयोधन की सेना के सेनापति हैं और सुयोधन की विजय के लिये युद्ध करेंगे। इस कारण कर्ण का हाथ उनके विरुद्ध नहीं उठ सकता।

श्याम—धन्य हो महात्मा ! धन्य हो ! अच्छा, अब युद्ध आरम्भ की आज्ञा दो ताकि दोनों ओर शूरवीरों को इच्छापूर्ति का अवसर मिले।

कर्ण—जाइये ! प्रसन्नतापूर्वक युद्ध आरम्भ कीजिये ! परमात्मा सत्य की पीठ पर हैं।

× × ×

श्याम जी लौटे तो युधिष्ठिर ने भी लौटने की इच्छा प्रकट की; परन्तु उस समय तक सुयोधन और उनके अन्य सहायक राजागण और सेनापति समीप पहुँच चुके थे। उन सब को सम्बोधन करके धर्मराज ने उच्च स्वर से कहा :—

"शूरवीरो ! महापुरुषो, वृद्धों और आचार्य्य जी की आज्ञा प्राप्त हो गई। अब युद्ध आरम्भ होगा ताकि भारत की कृपाण सत्य और असत्य का निर्णय कर दे जिसे इस समय पर्य्यन्त महान-

तम पुरुषों की वाणी नहीं कर सकी; परन्तु इस समय भी आप में से जो कोई हमें सत्य पर समझता हो, वह यदि हमारी ओर आने की इच्छा करे तो हम धन्यवादपूर्वक उसे हृदय से लगायेंगे।"

इस अन्तिम अनुरोध के उत्तर में सन्मुख खड़े वीरों में निस्तब्धता छा गई। परन्तु कुछ क्षणों में एक ओर से एक सुन्दर युवक आगे बढ़ा और कर जोड़ कर युधिष्ठिर जी के चरणों में शीश झुका कर बोला :—

"भ्राता ! यदि आप वेश्या-पुत्र को अपनी सेवा में लेने से संकोच न करें, तो युयुत्सु[1] सेवा के लिये उपस्थित है।"

युधिष्ठिर ने उसे सब के सन्मुख हृदय से लगाया और कहा—"भाई ! तुम हमारे बने हो, हम तुम्हें शिर आंखों पर रखने को तैयार हैं। निस्सन्देह महाराज धृतराष्ट्र की वंश-रक्षा यदि होगी तो केवल तुम्हारे कारण।"

---

1 वेश्या के गर्भ से महाराज धृतराष्ट्र का पुत्र था।

क्षात्रधर्म ! तुझे धिक्कार है !

"पितामह जी ! दो दिन युद्ध होते हो गये परन्तु अभी तक हमें विजयश्री का दर्शन नहीं हुआ।" भीष्म जी को सम्बोधन करके राजकुमार सुयोधन ने कहा।

भीष्म—राजकुमार ! घबराते क्यों हो ? अभी तो युद्ध का आरम्भ ही है, फिर भी परसों पाण्डव सेना के दो भारी योद्धा और सेनापति उत्तर और श्वेत अपने पिता महाराज विराट को रोता हुआ छोड़कर यमलोक पहुंच गये हैं।

सुयोधन—परन्तु कल वृकोदर भीम ने जो उधम मचाया वह भी आप ने देख लिया, कलिंग देश की सेना और उसके राजा को कल जिस भांति उसने नष्ट किया, उससे सारी सेना के हृदय छोटे हो गये हैं।

भीष्म—तो भाई ! दूसरी ओर भी स्त्रियां तो हैं नहीं, तुम्हारे सरीखे ही शूरवीर योद्धा हैं, जिनको पृष्ठ पर श्याम जैसे अपूर्व धनुर्धारी सम्मति देने को उपस्थित हैं। यदि एक दिन उनका पल्ला भारी हो गया तो बात ही क्या है ?

सुयोधन—भगवन् ! मैं यह अस्वीकार करता हूँ कि आचार्य द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य और शल्यजी के होते पाण्डव हम पर विजय पा सकते हैं। पर आप युधिष्ठिर के मीठे-मीठे वचनों में

आकर हृदय से उसकी विजय चाहते हों तो युद्ध जिस प्रकार होना चाहिये वह कैसे हो सकता है ?

भीष्म—(हंसकर) राजकुमार ! हम लोग वृद्ध हो गये हैं, हमारी भुजाओं में वह बल नहीं रहा जो नवयुवकों में हुआ करता है, फिर भी अपनी ओर से जो सम्भव है उसमें त्रुटि नहीं रक्खी जाती, फिर भी तुम्हारे हृदय मे शंका उत्पन्न हो रही है।

सुयोधन—मैंने आपके ही बाहुबल के आश्रय पर युद्ध आरम्भ किया है और आप ही के कारण कर्ण अलग-थलग हुये बैठे हैं, इसलिये यदि मुझे आप से कोई शिकायत हो तो आपके सन्मुख न कहूं तो किससे कहूँ ?

भीष्म—राजकुमार ! तुम विजय के इच्छुक हो, बहुत शीघ्र उसकी कामना करते हो, परन्तु यह किसी के वश की बात नहीं। अपनी ओर से प्राणों की बाजी लगाई जा रही है परन्तु फल के दाता भगवान हैं। इस पर भी यदि तुम्हें सन्देह है तो तुम एक दो दिवस के लिये कर्ण को नेता बनाकर देख लो।

सुयोधन—मेरा अभिप्राय आपको क्रुद्ध करना नहीं। केवल यही कहना है कि यदि आप सम्पूर्ण शक्ति लगा दें, तो युद्ध का निर्णय बहुत शीघ्र हो सकता है। निस्सन्देह आपके सन्मुख खड़ा होने का साहस मनुष्य तो एक ओर देवता और गन्धर्वों में भी नहीं।

भीष्म—राजकुमार ! मैं पुनः तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि न पहिले भीष्म ने यत्न करने में त्रुटि की है, न ही वह भविष्य में

ऐसा करेगा; इसलिये जाओ सेना को सुसज्जित करो, परमात्मा जो कुछ करेंगे भला ही होगा।

राजकुमार के गमन के पश्चात् भीष्म जी के मुख से निकला—

"धिक्कार ! क्षात्रधर्म तुझे लाख बार धिक्कार !!"

× × ×

जिस प्रकार आवेश में आया हुआ मगर सरोवर में कोलाहल मचा देता है ठीक उसी प्रकार सुयोधन के शब्दों का कोड़ा खाये हुये भीष्म जी युद्ध-भूमि में प्रलय मचा रहे थे। आज उनके सन्मुख जो भी आया बचकर नहीं निकल सका। जिस ओर भी झुक गये परे के परे साफ हो गये। पाण्डवी सेना के सेनापति धृष्टद्युम्न ने उनके आक्रमणों की तीक्ष्णता को रोकने का यत्न किया, परन्तु उनका प्रयत्न तट से बाहर निकले हुये सागर में बंध बांधने के समान असफल सिद्ध हुआ। अभिमन्यु, भीम, घटोत्कच इत्यादि अन्य वीर उनके सन्मुख आये, परन्तु प्रतीत होता था कि भीष्म जी की वृद्ध अस्थियों में युवावस्था का बल और तेज भर रहा है। वह चारों ओर से घेरा डालती हुई सेना की टुकड़ियों की टुकड़ियाँ मृत्यु के घाट उतार कर अपने लिये मार्ग साफ किये जा रहे थे।

द्रुपद, विराट और धृष्टद्युम्न ने उनका मार्ग रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु पाण्डव सेना इस प्रकार विक्षिप्त हो रही थी कि कोई भी सेनापति उसे धैर्य बंधाने में सफल न हुआ। यह दशा देखकर वीर सात्यकि ने भागते हुओं को ललकार कर कहा

"अरे ! भाग कर कहां जाओगे ? मृत्यु तो आगे-पीछे सब स्थान पर उपस्थित है। क्या इसी बल-वीर्य्य पर सौगन्ध खाई थी कि हम युद्ध-भूमि से लौटेंगे तो विजय प्राप्त करके ?"

युद्ध की यह दशा देखकर श्याम जी ने घोड़ों की बागें उठाईं, बलवान अश्व रथ को लेकर उड़े और निमिष मात्र ही में अर्जुन को लिये हुए उस स्थान पर पहुंच गये जहां भीष्म पितामह विध्वंस में संलग्न थे। अब युद्ध का चित्र परिवर्तित होने लगा। एक ओर सात्यकि के अनुभवी वीर योद्धा चढ़े चले आ रहे थे, दूसरी ओर श्याम जी अर्जुन को लिये हुए बढ़ रहे थे। सात्यकि की ललकार के उत्तर में श्याम जी के मुख से निकला:—

श्याम—जो भागते हैं उन्हें भागने दो। परन्तु आज भीष्म बच कर नहीं जा सकते।

युद्धक्षेत्र गरमा-गरम हो गया, भीष्म और अर्जुन एक दूसरे के समान जोड़ थे, परन्तु कुछ समय की बाण वर्षा ने ही बता दिया कि जहां पर वृद्ध सेनापति आपे से बाहर हो रहा है वहां प्रतिद्वन्दी के बाण फीके पड़ रहे हैं। उस समय श्याम जी ने अनुभव किया कि अर्जुन पर उस विक्षिप्तता का जो प्रथम दिवस उस पर छाई थी, प्रभाव इसी प्रकार स्थिर रहा तो कुछ क्षणों में ही न केवल अर्जुन और सात्यकि वरन समस्त पाण्डव सेना वीर और साहसी भीष्म के हाथों रक्त रंजित दृष्टिगोचर होगी।

घमसान युद्ध हो रहा था, भीष्म जी की चुटकी से बाण इस प्रकार निकल रहे थे जैसे मैशीनगन से गोले, वह जहां

भी पड़ते थे कवच को तोड़कर शरीर में प्रवेश कर जाते थे। श्याम जी अपनी अद्वितीय अश्वविद्या के जौहर दिखाते हुये रथ को आगे-पीछे इधर-उधर इस प्रकार घुमा रहे थे कि प्रतिद्वन्दी को निशाना लेने का अवसर नहीं मिलता था, परन्तु अर्जुन की भुजाएं शिथिल थीं, वह लड़ रहे थे परन्तु वह आवेश जो घमासान युद्ध में वीरों को अपना पराया भुला दिया करता है अनुपस्थित था, श्याम जी देख रहे थे कि इस समय उनका सारथ्य भी रथी की रक्षा नहीं कर सकेगा। वह अनुभव कर रहे थे कि अर्जुन यदि साहसपूर्वक युद्ध के लिये कटिबद्ध हो जाय तो भीष्म के छक्के छुड़ा सकता है; परन्तु संकट काल था, वह उपदेश का समय नहीं था और न ही कोई उपदेश सुनने को उत्सुक, इसलिये उन्होंने वह कुछ करने का निर्णय कर लिया जिसके लिये न तो वह स्वयं और न ही कोई और प्रस्तुत था। उन्होंने घोड़ों की वागें छोड़ दीं, साहसी अश्व एक चक्र काट कर खड़े हो गये। लोगों ने देखा कि श्याम रथ से कूद कर भीष्म पर आक्रमण करने जा रहे हैं, सुदर्शन चक्र उस समय उनकी अंगुली पर नाच रहा था और वह उनके हाथों से छूट कर भीष्म का सिर धड़ से पृथक् करने को ही था कि भीष्म ने उच्च स्वर से कहा :—

भीष्म—आइये आइये भगवन् ! सुदर्शन को छोड़िये, ताकि भावी इतिहासवेत्ता इस युद्ध की कथा लिखते समय यह लिखें कि भीष्म के वध के लिये श्याम जी ने अपनी प्रतिज्ञा भंग कर दी ! इस से अधिक प्रतिष्ठा और कीर्त्ति किस बात में होगी ?

श्याम—(आवेशपूर्वक) तुम ही इस सारी विपत्ति के मूल कारण हो ! तुम्हारे ही कारण आज सुयोधन बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट होगा। मन्त्री और परामर्शदाता होते हुये तुमने द्यूत को बन्द न किया और बाल ब्रह्मचारी होते हुये कृष्णा को नग्न होते देखा ! निस्सन्देह यदि तुम सुयोधन से सहमत न होते तो इस समय पर्य्यन्त उसे त्याग सकते थे। तुम्हारा वध अधर्म नहीं। पापियों का विनाश करने से मुझे कोई भी प्रतिज्ञा नहीं रोक सकती।

भीष्म—आप जो कह रहे हैं सत्य है; परन्तु मैंने एक नहीं अनेक बार धृतराष्ट्र को यह सम्मति दी कि जिस प्रकार यादवों ने कंसराज का संहार किया था उसी प्रकार सुयोधन को त्याग दिया जाय, पर जब कोई न माने तो मैं क्या कर सकता था ?

उस समय तक अर्जुन भी रथ से कूद कर पहुंच चुके थे और श्याम जी की दोनों भुजाएं पकड़ कर पीछे को खींच रहे थे। परन्तु श्याम जी इतने आवेश में थे कि उन्हें दूर तक घसीटते हुये ले गये। कोई उपाय न देख कर अर्जुन ने चरण पकड़ लिये और अभिमन्यु और भ्राताओं की सौगन्ध खाकर कहा :—

अर्जुन—श्याम जी ! आप अपनी प्रतिज्ञा भंग मत कीजिये। जब लग मैं जीवित हूं ऐसा न कीजिये। मुझे अवसर दीजिये कि मैं आपका सशस्त्र हाथ बन कर पापियों के हृदय का रक्त बहा सकूं।

अभिमन्यु का नाम सुन कर श्याम जी का आवेश शान्त हो

गया, और उन्होंने सुदर्शन को अंगुली से उतार दिया और अल्प क्षणों में रथ पर आसीन हो फिर घोड़ों को हांकने लगे।

अब भीष्म और अर्जुन दोनों ने अपने-अपने धनुष उठाये और वह युद्ध आरम्भ हो गया जिसे दर्शकों ने आज पर्य्यन्त नहीं देखा था। अल्प क्षणों के इस समय में समस्त पाण्डव सेना अर्जुन और सात्यकि की सहायता के लिये घिर आई थी, दूसरी ओर सुयोधन और अन्य शूरवीर भीष्म जी को घेरे में आया देख कर टिड्डी दल की भान्ति उनके आस पास एकत्र हो गये थे। परन्तु दिन समाप्ति पर था, सूर्य्य देव अधिक काल पर्य्यन्त मानव रक्त की नदियों को देखते देखते ऊब गये थे। इसका प्रतिबिम्ब उनकी किरणें के द्वारा पड़ कर क्षितिज का दृश्य दिखाने लगा था। परन्तु इतने में भी जिस ओर देखो मनुष्यों के शिर घोड़ों की टापों से कन्दुक की भान्ति टक्कर खाकर उछलते फिरते थे। रक्त सरिता प्रवाहित थी और उसमें मर कर गिरे हुये गज, अश्व तथा मनुष्य मगर, मच्छवे और मछलियों की भान्ति तैर रहे थे।

युधिष्ठिर की चिंता

"दो दिन हो गये, भीष्म पितामह ने लाखों मनुष्यों का विनाश कर दिया, सेना उनके भय से कांप रही है। श्याम जी! अब कोई ऐसा उपाय कीजिये कि इस दुख से त्राण हो। मुझ से तो इतना रक्तपात अधिक समय पर्य्यन्त नहीं देखा जायेगा।"

श्याम—सम्राट ! जो कुछ आपने कथन किया सर्वथा सत्य है, परन्तु कठिनाई यह है कि शत्रु धर्मयुद्ध ❀ के समस्त नियमों को तोड़ कर केवल विजय प्राप्ति को लक्ष्य रख कर युद्ध कर रहा है, हम लोग उन नियमों का उल्लंघन करते हुये घबराते हैं।

युधिष्ठिर—फिर भी इसका कोई उपाय होना चाहिये। मेरी तो बुद्धि अब काम नहीं देती।

❀ धर्मयुद्ध के नियम युद्ध आरम्भ होने से पूर्व निर्धारित कर लिये गये थे वह निम्न लिखित थेः—

(१) युद्ध में छलकपट से काम न लिया जाय।

(२) रथी रथवान से युद्ध करे, हाथी का सवार हाथी वाले से भिड़े, अश्वारोही अश्वारोही से, और पैदल पैदल से शक्ति परीक्षा करे

(३) जो किसी और से युद्ध में संलग्न हो, जिसने आधीनता स्वीकार कर ली हो, जो युद्ध से भाग रहा हो, जो भयभीत हो, उस पर शस्त्र का प्रयोग न किया जाय।

यह नियम उन्हीं नियमोंके अनुसार कहे जा सकते हैं जो वर्त्तमान अन्तर्राष्ट्रीय नियम (International Law) कहे जाते हैं।

श्याम—इसका उपाय केवल एक ही है। आप मुझे आज्ञा दें कि मैं शस्त्र धारण करके आप के महारथियों और सेनापतियों को दिखाऊँ कि युद्ध किस प्रकार होना चाहिये।

युधिष्ठिर—(आश्चर्यपूर्वक) आप! शस्त्रधारण करके! अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करके?

श्याम—प्रतिज्ञा धर्मयुद्ध के लिये है। मैं देख रहा हूँ कि वर्त्तमान युद्ध अब धर्म युद्ध नहीं रहा। क्या आपको ज्ञात नहीं कि देवव्रत भीष्म जी ने सुयोधन के कटु वचनों से उत्तेजित हो कर प्रथम दिवस यह प्रतिज्ञा की थी कि वह दश सहस्र सेना का शीश प्रति-दिन काटेंगे? यदि यह धर्मयुद्ध होता तो वह उस प्रतिज्ञा के पूर्ण करने में कदापि सफल न हो सकते। वह उस प्रतिज्ञा को पूर्ण कर रहे हैं, महारथी योद्धा बन कर नहीं, बाल ब्रह्मचारी देवव्रत बन कर नहीं, वरन हत्यारे बधिक बन कर! यदि वह महारथी बन कर युद्ध करते तो उनका युद्ध महारथियों और अतिरथियों से होता। वह अपने जोड़ के शूरवीरों से टक्कर लेते। परन्तु वह तो सदैव ऐसे लोगों से बच कर पैदल और अश्वारोहियों का रक्तपान करके प्रतिज्ञा पूर्ण करते हुये भूमण्डल को भयभीत कर रहे हैं। ऐसे हत्यारे का वध करने के लिये धर्मयुद्ध के अतिरिक्त किसी और बात की आवश्यकता है।

युधिष्ठिर—तो आपके विचार में क्या करना चाहिये?

श्याम—समस्या यह है कि यद्यपि मैंने उन्हें बहुत ऊँच नीच समझाई है, परन्तु, अर्जुन अभी तक मन लगा कर युद्ध नहीं

कर रहे। वह जब भी भीष्म को देखते हैं पितामह रूप में देखते हैं। परन्तु यदि भीष्म के वश में हो तो आज ही आप पाँचों भ्राताओं की बोटी बोटी उड़ा दे।

युधिष्ठिर—मेरा अनुभव भी यही है। भीम, सात्यकि, धृष्टद्युम्न अपनी-अपनी स्थिति में प्राण होम रहे हैं, परन्तु भीष्म से युद्ध उनके वश की बात नहीं।

श्याम—क्षात्रधर्म का पालन बालकों का खेल नहीं, इसे वही पालन कर सकता है जो निजत्व और परत्व की भावना को त्याग सके, जो दुःख-सुख से ऊपर हो जाय, जो पिता और पुत्र के सम्बन्ध को तोड़ दे। क्षत्रिय को स्वयंम् परमात्मा का रूप बन कर अधर्मियों के विनाश के लिये तत्पर होने की आवश्यकता है। यदि वह ऐसा नहीं करता तो अपने धर्म से पतित हो जाता है।

युधिष्ठिर—निश्चय इस धर्म का पालन असिधार पर चलने के समान है।

श्याम—आपकी सेना में अर्जुन ही एक योद्धा है जो भीष्म के सन्मुख खड़े होने का साहस कर सकता है; परन्तु उसका मन छोटा हो रहा है, वह अभी तक पिता-पुत्र के सम्बन्ध से ऊपर नहीं उठ सका। मैं उसे अपना रूप समझता हूं, इसलिये उसे उसका धर्म दर्शाने के लिये मुझे शस्त्र धारण करने पड़ेंगे, क्योंकि अधर्म की विजय को सहन करना असम्भव है। आप कल से उसके लिये किसी और सारथि का प्रबन्ध कर दें।

युधिष्ठिर (कांप कर) निस्सन्देह अभी अवस्था इतनी विकट

नहीं हुई कि आप शस्त्र धारण करें। अपने जीवित रहते तो हम लोग आपको प्रतिज्ञा भंग की आज्ञा नहीं दे सकते। (अर्जुन को आते देख कर) अर्जुन आ रहे हैं, मैं आपकी इच्छा इनके सन्मुख रख देता हूं।

शिविर में प्रवेश करके अर्जुन ने दोनों भ्राताओं के चरण स्पर्श किये, और आशीर्वाद लेकर एक ओर आसन पर बैठ गये। उस समय युधिष्ठिर ने उनसे कहा :—

युधिष्ठिर—श्याम जो क्या कह रहे हैं ?

अर्जुन—क्या ?

युधिष्ठिर—इनका विचार है कि कल स्वयम शस्त्र धारण करें। अब तुम्हें किसी और सारथि की खोज करनी होगी।

अर्जुन—(घबरा कर) असम्भव ! अर्जुन अभी जीवित है। वह इन्हें अपने जीते प्रतिज्ञा भंग नहीं करने देगा।

श्याम (हंसकर) प्रतिज्ञा भंग का प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता। भाई ! प्रतिज्ञा मेरी है और मुझे ज्ञात है किस समय क्या करना है ? भीष्म को मैं देवव्रत के रूप में नहीं देख रहा, न ही वह मुझे तुम्हारी भान्ति पितामह दीख पड़ते हैं। नौ दिन में उन्होंने नब्वे हजार पदाति और अश्वारोहियों के रक्त से हाथ रंगे हैं, यद्यपि युद्ध के नियमों के अनुसार उन्हें इस समय में महारथियों से टक्कर लेना चाहिये था। ऐसे घातक हत्यारे को अब अधिक समय के लिये रक्त बहाने को खुला नहीं छोड़ा जा सकता। निरापराधियों की रक्षा करने के लिये यदि प्रतिज्ञा भंग होती है तो

मुझे इसके लिये किसी से क्षमा नहीं मांगना।

अर्जुन—आप जो कुछ कह रहे हैं सत्य है, पर मुझे एक दिवस की अवधि और दीजिये। कल यदि मैं पितामह जी को समर भूमि से हटाने में असमर्थ रहा, तो परसों आप जो इच्छा हो कर लें।

श्याम—यदि यह प्रतिज्ञा पूर्ण करनी है तो कल युद्ध का रूप परिवर्तित करना होगा। कल के युद्ध में वह अस्त्र-शस्त्र निकालने होंगे जिन्हें, अब तक हवा नहीं लगाई गई। कल पांचाल राजकुमार शिखण्डी भीष्म पर आक्रमण करेंगे। भीष्म उनके सन्मुख आते घबराते हैं। उनका विचार है कि वह जन्म से स्त्री थे, पीछे से पुरुष बन गये। इस लिये उन पर शस्त्र नहीं चलाना चाहते। कल को देखना है कि वह कहां तक अपनी इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करते हैं, अथवा यह भी महारथियों से युद्ध में बचने का एक ढङ्ग है। सुयोधन शिखण्डी को दूसरी ओर झुकाने का यत्न करेगा, इसलिये आप लोगों को प्रत्येक प्रकार से उसे सहायता देते हुये यह देखना होगा कि भीष्म किसी दूसरी ओर आक्रमण करने में सफल न हों। मैं तुम्हारे रथ को शिखण्डी के पार्श्व में रक्खूंगा। धृष्टद्युम्न और सात्यकि हमारे रथ की दोनों ओर से रक्षा करें। भीम और घटोत्कच धृष्टद्युम्न और सात्यकी की रक्षा का भार अपने शिर पर लें। (युधिष्ठिर से सम्बोधित होकर) आप, अभिमन्यु और अन्य महारथी, सेना के पार्श्व की देख भाल करें। कल संग्राम का समस्त भार भीष्म पर डाल कर सायंकाल से पूर्व इस झगड़े को मिटाना होगा।

युधिष्ठिर—ओ३म्।

भीष्म पितामह का पतन

नौ दिन के भयंकर युद्ध के पश्चात्, एक लाख के समीप सेना को कटवाने के उपरान्त, पाण्डवों के वह अस्त्र-शस्त्र जिनके आविष्कार में उन्होंने द्वादश वर्ष तपस्या की थी, जिन्हें पूर्ण करने के लिये उन्होंने काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक और बम्बई से आसाम पर्यन्त, भारतवर्ष की धूलि छानी थी; हां हां, जिनकी परीक्षा के लिये उन्होंने भयंकर वनों की शरण ली थी, क्रियान्वित होने लगे। राजकुमार शिखण्डी इसी प्रकार की* मैशीनों की आड़ में कौरव सेनापति का सामना करने के लिये युद्ध भूमि में आये। उन्हें सेनापति का पद देते हुए अर्जुन ने कहा—

अर्जुन—भ्राता शिखण्डी! आज देवव्रत भीष्मपितामह को युद्ध में पिछाड़ कर तुमने अपने नाम को जगत में उज्जवल करना है।

आज बालब्रह्मचारी को युद्ध-भूमि से खदेड़ कर तुमने अपनी

---

* मैशीन का नाम सुन कर घबराने की आवश्यकता नहीं। भारत युद्ध में जो शस्त्र प्रयुक्त हुये आज पर्यन्त उनके निर्माण और प्रयोग की विधियां ज्ञात नहीं हो सकीं; परन्तु सत्य यह है कि सहस्रों प्रकार के नवीन शस्त्र युद्ध में प्रयोग में आये।

शूरवीरता के जौहर दिखाने हैं। आज जिन अस्त्र शस्त्रों को आप की रक्षा का कार्य सौंप रहा हूं, संसार का मानचित्र उलट पलट करने के लिये इन्हें जन्म दिया गया है। यह प्रकृति माता के हाथों से छीन कर कुरुक्षेत्र युद्ध के स्थल पर लाये गये हैं ताकि तुम्हें अपने नाम को अमर बनाने में सहायता दें। आज तुम्हें अपना नेता बनाकर मैं और श्याम जी तुम्हारे पार्श्व की रक्षा करेंगे। भगवान श्याम जी जिसकी पृष्ठ पर हों उसे पीछे देखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि समस्त संसार की शक्ति उसकी पृष्ठ पर है। भीष्म तुम्हें स्त्री होने का व्यङ्ग कसा करते हैं। आज उन्हें दिखाना है कि शिखण्डी यदि स्त्री है तो वह, जिस पर भीष्म जैसे सहस्रों शूरवीर निछावर किये जा सकते हैं।

शिखण्डी ने उच्च स्वर से धर्मराज का जयघोष किया। साथ ही सहस्रों बाण वायुमण्डल में तैरते हुए शत्रु के रक्त से रंजित होने लगे।

भीष्म के अनुभवी नेत्रों ने यह दृश्य देखा, तो मुस्कराते हुये बोलेः—"राजकुमार! जिस सेना की रक्षा स्त्रियाँ करती हों वह भीष्म से युद्ध करेगी? असम्भव! आज अर्जुन और भीम कहां हैं? सात्यकि और धृष्टद्युम्न किस बिल में घुस गये? जो पाण्डव सेना स्त्री के संकेत पर चल रही है।"

इन शब्दों ने राजकुमार शिखण्डी के शरीर में आग लगादी; परन्तु वह स्वयं को संयत कर बोलेः—

शिखण्डी—देवव्रत! बड़े बोल का शिर नीचा! वीरता पर

इतने न फूलो, यह किसी की पैतृक सम्पत्ति नहीं। आज तुम्हारा अन्तिम समय आ पहुंचा। स्त्रियां जो पुरुषों की जन्मदाता हैं, उनसे अधिक वीर हो सकती हैं। उनके गर्भ से उत्पन्न होकर उनका अपमान करने वाला बालब्रह्मचारी अब अधिक काल पर्यन्त संसार में अधर्म करने के लिये नहीं छोड़ा जा सकता।

प्रस्तुत हो जाओ, कृष्णा के अपमान के परिशोध के लिये वह योद्धा आ गया जिसे प्रकृति माता ने तुम्हारी मृत्यु का हेतु बनने के लिये उत्पन्न किया है।"

यह कह कर वीर सेनापति ने आक्रमण की आज्ञा दी। उस समय देवव्रत ने देखा कि शिखण्डी की जिह्वा से जो कुछ निकला था एक मूर्ख की बढ़ नहीं थी। पाण्डवों के आविष्कार किये हुए अद्भुत अस्त्र चारों ओर प्रलय मचाते हुए बढ़े आ रहे थे। उनके प्रयोगकर्त्ताओं के शरीर दृष्टिगोचर नहीं होते थे, पर बाणों, बरछों, कृपाणों और अन्य प्रकार के शस्त्रों की आंधी थी जो चल रही थी। उनके निकट जो आया, बच कर निकल नहीं सका। जो सन्मुख आया भस्मीभूत हो गया। कौरवी सेना का वयोवृद्ध अनुभवी सेनापति इन शस्त्रों के आकार तथा उनकी ध्वंस शक्ति को निरीक्षण कर आश्चर्य से चकित रह गया, क्योंकि वह अभी तक भारतीय युद्धों में प्रयोग में नहीं आये थे। उसने शिखण्डी की उपेक्षा करते हुए दूसरी ओर आक्रमण करने का यत्न किया, परन्तु धृष्टद्युम्न और सात्यकि, भीम और घटोत्कच ने मार्ग रोक लिया। उसे बचने का यत्न करते देख कर शिखण्डी की प्रलय-

कारी टुकड़ी मुड़ी और भीष्म दो नदियों के मध्य टापू बन गये, जिसे हड़प करने के लिये पाण्डवी सेना अपनी सम्पूर्ण शक्ति से लड़ रही थी।

द्रोणाचार्य ने समय की भयंकरता को भांपा और अपने वीर सुपुत्र अश्वत्थामा को ललकारते हुए बोले :—

द्रोण—बेटा! भीष्म शत्रु का सामना कर रहे हैं। जिस प्रकार वन्य-सिंह वन में दहाड़ता है, उसी प्रकार वह शत्रुओं के मुक़ाबले में दहाड़ रहे हैं। परन्तु मैं देखता हूं कि शत्रु नवीन शस्त्र ले कर युद्ध-भूमि में उतर आये हैं। अर्जुन द्वादश वर्ष की तपस्या के पश्चात् उन शस्त्रों की प्राप्ति में सफल-मनोरथ हुए हैं, जिन्हें आज पर्य्यन्त न मैंने, न ही भीष्म जी ने देखा है। इसलिये सामना बेढब हो रहा है। जाओ पितामह जी की सहायता करते हुए सुयोधन के लवण का ऋण चुकाओ। दूसरी ओर से आक्रमण करके शत्रु की शक्ति तोड़ने का प्रयास मैं करूंगा।

पिता की आज्ञा सुन कर अश्वत्थामा अपनी सेना सहित पाण्डवी सेना पर आक्रमण करता हुआ बढ़ा और आते ही उसे असि धार पर रख लिया। दूसरी ओर से सुयोधन और दुःशासन, शल्य, शकुनि और अन्य शूरवीर घिर आये और घमासान युद्ध आरम्भ हो गया; परन्तु नवीन शस्त्रों का सामना, नव विपत्तियों का मुकाबला सुगम नहीं था। वह भयंकर मनुष्य-भक्षी राक्षस की भांति जिधर बढ़ते थे परे के परे साफ़ हो जाते थे, जिधर चलते थे युद्धस्थल शून्य हो जाता था। उनकी आड़ में अर्जुन

और शिखण्डी के भयङ्कर बाण भीष्म जी के शरीर में प्रविष्ट हो रहे थे। भीष्म जी ने उस समय कुछ सोचने का प्रयत्न किया ताकि उन भयङ्कर मैशीनों को नाश करने का कोई उपाय निकालें; परन्तु शत्रु समय देने को तत्पर नहीं था। इसलिये उन्होंने अपने अंगरक्षकों को आज्ञा दी कि जिस प्रकार भी हो सके आगे बढ़ कर उनको ध्वंस करके अपने लिये मार्ग बना लें। परन्तु यह सुगम नहीं था। स्वयं भीष्म जी सैनिकों का मार्ग-प्रदर्शन करते हुए आगे बढ़े, परन्तु शरीर छलनी-छलनी हो गया। एक क्षण में सहस्रों बाण शरीर में प्रविष्ट हो गये। उस समय श्याम जी ने रथ के घोड़ों की वागें उठाईं और पूर्व इसके कि विश्व को विदित हो कि क्या हुआ है, भीष्म जी के हाथ का धनुष टूट कर टुकड़े-टुकड़े हो गया। उन्होंने दूसरा धनुष ले कर उस पर प्रत्यञ्चा डालने का यत्न किया, परन्तु इससे पूर्व कि वह उसमें सफल हों अर्जुन के बाणों ने उसे भी काट दिया। तीसरे, चौथे, पांचवें, छठे, कितने ही धनुषों पर हाथ डाला पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने का अवसर न आया। यह देख कर क्रोध से नेत्र लाल किये हुए देवव्रत ने एक भयङ्कर शक्ति इस वेग से घुमा कर अर्जुन के रथ की ओर फेंकी कि यदि वह सफल हो जाती, तो अश्व और सारथी सहित सब को नाश कर देती। परन्तु श्याम जी की रथ-विद्या आड़े आई। पूर्व इसके कि शक्ति गिर कर किसी का शिर शरीर से जुदा करे, अर्जुन के भयङ्कर बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर छिन्न-भिन्न हो गई। उस समय उसके बाण तीव्रता

और तीक्ष्णता से भीष्म के शरीर में प्रवेश कर रहे थे। यह देख कर दुःशासन को सम्बोधन करके जो उनके रथ की रक्षा में उनके साथ-साथ पराक्रम दिखा रहा था, भीष्म जी ने कहा :—

भीष्म—दुःशासन ! यह बाण जो वज्र की सी शक्ति से मेरे शरीर में प्रविष्ट हो रहे हैं शिखण्डी के नहीं। यह बाण जो मूसल की भांति आकर मेरे कवच को भेद रहे हैं, शिखण्डी के नहीं। यह बाण जो ब्रह्म दण्ड के समान मेरी अस्थियों को विदीर्ण कर रहे हैं शिखण्डी के नहीं हो सकते। यह बाण जो क्रुद्ध नाग की भांति सरसराते हुए मुझे डस रहे हैं, मैं इनसे परिचित हूं। यह बाण अर्जुन की चुटकी से ही निकल सकते हैं और निकल रहे हैं। अपनी दिव्य धनुर्विद्या से आज उसने मेरे हाथ से धनुष छीन लिया है, शक्ति टुकड़े-टुकड़े कर दी है। परन्तु अभी तक भीष्म जीवित है, और वह हाथ जिसने परशुराम का गर्व खर्व किया था टूटा नहीं।

यह कह और कृपाण हाथ में लेकर रथ से कूदने को थे कि अर्जुन और शिखण्डी की निरन्तर बाण वर्षा ने उन्हें निरुपाय कर दिया। वह रथ से उतर रहे थे कि बाणों ने उठा कर शर-शय्या पर लिटा दिया।

भीष्म रथ से गिरे मानो भगवान भास्कर आकाश से गिरकर पृथ्वी पर आ पडे। वह वीर जिसने आज पर्यन्त रण में पीठ न दिखाई थी, अपने अन्तिम युद्ध में भी संसार के सन्मुख उदाहरण स्थापित करता हुआ यह कह गया कि वीर युद्ध क्षेत्र को इस भांति त्यागते हैं।

भीष्म जी के गिरते ही पंचजन्य* के घोष से कुरुक्षेत्र का स्थल गूंज उठा। उसके अनुसरण में चारों ओर से शंखनाद ने पाण्डवी सेना को विजय सन्देश दे दिया। कौरवी सेना का साहस इससे पूर्व ही क्षीण हो रहा था, अब उसका रहा-सहा धैर्य भी टूट गया और उसे पीछे हटने के लिये विवश होना पड़ा।

उस समय श्याम जी के परामर्श से महाराज युधिष्ठिर ने पितामह जी के शोक में आज का युद्ध समाप्त करने का निर्णय किया।

*श्याम जी के शंख का नाम

अभिमन्यु का अन्तिम युद्ध !

दो दिन और समाप्त हो गये, भीष्म पितामह जी के पतन के पश्चात् कौरवी सेना की अध्यक्षता का पद आचार्य्य द्रोण जी के सुपुर्द हुआ, जो उस युग में आबाल वृद्ध सब के गुरु माने जाते थे।

द्रोण जी सुयोघन के लिये विजय प्राप्ति की आकांक्षा से समस्त ढंग प्रयोग में ला रहे थे। वह जानते थे कि शत्रु सेना में यदि कोई योद्धा है जो उनके प्रत्येक प्रयोग का तोड़ सुगमतापूर्वक कर सकता है तो वह अर्जुन है जिसकी असीम धनुष-चातुरी और युद्ध-प्रवीणता के साथ श्याम जी के बुद्धि-बल और युद्ध-कुशलता ने सम्मिलित होकर उसे सचमुच अजेय बना दिया था। उन्हें ज्ञात था कि जब तक अर्जुन और श्याम की जोड़ी युद्ध-स्थल में उपस्थित है वह पाण्डव सेना को परास्त नहीं कर सकते। इसलिये उन्होंने अर्जुन को युद्ध क्षेत्र से हटाने के लिये एक उपाय सोचा जो दो दिन के इस युद्ध में सफल प्रमाणित हुआ। इस उपाय को क्रियान्वित करने के लिये कौरव सेना के चुने हुये वीरों की एक भारी सेना तैयार की गई, जो सुशर्मा की अध्यक्षता में सूर्योदय के साथ ही सर्वप्रथम अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में ललकारती। इस ललकार के उत्तर में अर्जुन अपनी अधीनस्थ सेना के साथ युद्ध के लिये तत्पर हो जाते। आज तृतीय दिवस था कि इस सेना,

जिसे संशप्तक कहते थे, का संहार करने के लिये अर्जुन अपनी सेना समेत प्रलय मचा रहे थे। दोनों ओर शस्त्र वर्षा आकाश को दृष्टि से ओझल कर रही थी। घमासान युद्ध था। जबकि कौरवी सेना ने धीरे-धीरे पीछे हटना आरम्भ कर दिया। अर्जुन उसका पीछा किये थे और संशप्तक भयंकर रक्तपात करते हुये युद्धक्षेत्र से बाहर निकलते जा रहे थे। अल्पकाल के लिये जम कर सामना होता था, उभय पक्ष के कुछ योद्धा धराशायी होते दृष्टिगोचर होते थे और शत्रु पीछे हट कर नये मोर्चे की रक्षा में संलग्न हो जाता था।

इस प्रकार वह पाण्डवी सेना के उस भाग को जो अर्जुन के आधीन था अन्य सेना से विभक्त करके समस्त दिन के लिये संलग्न रखने में सफल हो गया। शेष सेनापतियों ने अपनी-अपनी टुकड़ियों सहित शत्रु पर आक्रमण किया, परन्तु अल्पकाल के युद्ध के पश्चात् ज्ञात हुआ कि आज अनुभवी कमांडर ने अपनी कला की पराकाष्ठा दिखाते हुये अपनी सेना का इस प्रकार संचालन किया था कि उसके भीतर पक्षी भी प्रवेश कर जाये तो बाहर न निकल सके।

आचार्य्य जी उसी दिन से, जब अर्जुन भीष्म पितामह को गिराने में सफल मनोरथ हुये थे, पेच और ताव खा रहे थे। उनकी इच्छा थी कि युधिष्ठिर और उसके साथी राजकुमारों को दिखायें कि धनुर्विद्या वह अथाह जलनिधि है जिसे पार करना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है। अर्जुन और श्याम उनकी कामना-पूर्त्ति

के मार्ग में बाधा थे, इसलिये उन्हें इस सेना से विच्छेद करने का उपाय सोच लिया गया था और आज कौरवी सेना को चक्र-व्यूह के रूप में खड़ा किया गया था। यह गोल चक्र के समान व्यूह रचना थी, जिसमें एक विस्तृत गोल चक्र के भीतर सेना की एक रेजीमेंट के पश्चात् दूसरी युद्ध के लिये नियुक्त की गई थी और भिन्न-भिन्न नाकों की रक्षा बड़े-बड़े महारथी जरनैल कर रहे थे।

इस व्यूह रचना का सर्वोपरि लाभ यह था कि शत्रु एक समय में सेना के केवल एक भाग पर ही आक्रमण करके उससे युद्ध कर सकता था, शेष सेना सुगमतापूर्वक विश्राम कर सकती और समय पड़ने पर युद्ध में संलग्न सेना को सहायता दे सकती थी। इसके अतिरिक्त युद्ध करती हुई सेना जिस समय घेरे में आ जाये तो सुगमतापूर्वक कूच करती हुई पीछे हटती हुई नवीन सेना को अपने स्थान पर नियुक्त कर सकती थी। इस प्रकार चक्र व्यूह में अनुशासित सेना दुर्ग में सुरक्षित सेना से भी अधिक दुर्भेद्य थी।

इस व्यूह को भंग करके यदि कोई वीर उसके भीतर प्रवेश करने का यत्न करता तो वह बन्दी सिंह के समान प्रत्येक ओर से घेरा जा सकता था। उसका बाहर निकलना असम्भव था। महाराज युधिष्ठिर और सेनापति धृष्टद्युम्न ने जब विरोधी सेना का यह अनुशासन देखा तो उनके चलते हुये पांव थम गये। क्योंकि निरन्तर आक्रमण निज को नाश करने का सामान था।

उस समय एक छोटी सी युद्ध-समिति बुलाई गई। सेना के

सञ्चालक भागे-भागे आये, अर्जुन और श्याम इसमें सम्मिलित होने में असमर्थ थे। उपस्थित वीरों को सम्बोधन करके युधिष्ठिर ने कहा:—

युधिष्ठर—शूरवीरो! आज आचार्य जी ने धनुर्विद्या का चमत्कार दिखा कर हमारे प्रयत्न को निष्फल करने का यत्न किया है। इस समय हमें यह सोचना है कि चक्रव्यूह को जिसकी रचना आचार्य जी के मस्तिष्क की भाँति जटिल है, भेद कर शत्रु का कैसे नाश किया जाय? इस कारण मैंने आपको घोर युद्ध के समय बुलाना उचित समझा है। भगवान श्याम और वीर अर्जुन इस समय हमारे समीप नहीं। उनकी अनुपस्थिति में भी हमें आज के युद्ध के लिये उपाय सोचना है।

महाराज मौन हुए तो सभा में निस्तब्धता छा गई। उपस्थित सेनानायकों में एक भी ऐसा न था जिसने इससे पूर्व चक्रव्यूह का युद्ध देखा हो और उसे भंग करने के रहस्य से परिचित हो।

परन्तु यह निस्तब्धता जिसमें युधिष्ठिर की दृष्टि चारों ओर घूम रही थी, अल्पकाल में ही टूट गई जब कि एक ओर से एक छरहरे सुन्दर नवयुवक ने, जिसके अभी मसें भी नहीं फूटी थीं, उठ कर कहा:—

नवयुवक—भारत सम्राट के चरणों में इस समय यद्यपि पिता जी* और मामा जी× उपस्थित नहीं हैं तो भी जब तक उन

*अर्जुन से अभिप्राय है।

×श्याम की

दोनों का प्रतिनिधि अभिमन्यु उपस्थित है उन्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। वह आज इस सभा के सन्मुख यह सौगन्ध खाता है कि यदि एक चक्रव्यूह नहीं उस जैसे सहस्र व्यूह भी रचे जांय तो उन्हें छिन्न-भिन्न करके नष्ट-भ्रष्ट कर देगा। सम्राट् अपना हाथ जिसकी पृष्ठ पर रक्खेंगे वह साधारण मनुष्य होता हुआ भी लाखों को युद्ध में ललकार सकता है। इसलिये आज्ञा दें कि यह दास शत्रु का संहार करता हुआ उसे दिखाये कि पाण्डव सेना का एक-एक बालक उसके महानतम योद्धा को युद्ध के लिये ललकार सकता है।

युधिष्ठिर—(आश्चर्य्य से) बेटा अभिमन्यु! तुम से यही आशा थी; परन्तु तुम अभी बालक हो, व्यूह रचना का तुम्हें अनुभव नहीं। इस समय स्वयं आचार्य्य जी चक्रव्यूह के द्वार की रक्षा कर रहे हैं और बड़े-बड़े महारथी अपनी-अपनी सेना सहित उस मानवी दुर्ग में बुर्जों का कार्य कर रहे हैं। उसे भङ्ग करना इतना सुगम नहीं जितना तुम समझते हो।

अभिमन्यु—भारत सम्राट्! जो कुछ आपने कथन किया, सर्वथा सत्य है। इसीलिये तो आज इन समस्त महानुभावों के सम्मुख यह सौगन्ध खाता हूं कि यदि आज उन सारे महारथियों को पछाड़ कर चक्रव्यूह को तोड़ न सका तो फिर किसी को मुख न दिखाऊंगा और भविष्य के लिये सुभद्रा पुत्र कहलाना छोड़ दूंगा। आप पिताजी से अधिक मान्य और आदरणीय हैं। आपकी इच्छा मेरे लिये परमात्मा की आज्ञा है। इसकी पूर्ति में अपनी जान लड़ा

उन्होंने शेष सेना के साथ व्यूह पर आक्रमण करते हुए उसमें प्रवेश करने का यत्न किया, परन्तु आचार्य जी के युद्ध-कौशल ने उनके छक्के छुड़ा दिये। अभिमन्यु के प्रयत्नों के अनन्तर व्यूह की बाह्य पंक्तियां टूट चुकी थीं, पर उसकी आन्तरिक पंक्तियों में कोई अन्तर न आया था। जहां पर पाण्डवी सेना पूरी शक्ति से युद्ध करती हुई उसे तोड़ने का यत्न कर रही थी कौरवी सेना सदैव ताजा दम होकर उसके सम्मुख आती थी। उस समय सिन्धु नरेश महाराज जयद्रथ की वीरता अपनी पराकाष्ठा दिखा रही थी। उसने द्रोणाचार्य जी के साथ अपनी सारी शक्ति मिलाकर व्यूह द्वार को दुर्भेद्य बना रक्खा था। पाण्डवी सेना आक्रमण पर आक्रमण कर रही थी परंतु जिस प्रकार सागर चट्टान से टकरा कर झाग छोड़ता हुआ लौट जाता है उसी प्रकार वह असफल हो रही थी।

दिन का तृतीय प्रहर समाप्त हुआ जा रहा था। सूर्यदेव अस्ताचल की ओर जा रहे थे। परन्तु वीर अभिमन्यु की गति और तीव्रता में कोई अन्तर न आया था। उसका शरीर शत्रु के सैंकड़ों नहीं सहस्रों शस्त्रों के प्रहार से कई स्थान पर घायल हो चुका था, परन्तु घायल सिंह के समान उसकी तीव्रता प्रत्येक घाव के साथ बढ़ती जा रही थी। द्रोण, कर्ण, सुयोधन, दुश्शासन, शल्य इत्यादि कितने ही महारथियों ने बारी-बारी उसका मार्ग रोकने का यत्न किया, परन्तु उस घायल सिंह को अपने लक्ष्य से हटाना असम्भव देख कर कर्ण ने आचार्य जी से कहाः—

कर्ण—गुरु देव ! क्या यह छोकरा चक्रव्यूह को अकेला तोड़-

कर बाहर निकल जायेगा ? क्या यह इतने शूरवीरों के लिये लज्जा का विषय नहीं होगा ?

आचार्य—कर्ण ! तुम शूरवीर हो और शूरवीरों का मूल्य जानते हो। मुझे तो इस छोटे से शूरवीर की शूरवीरता देखकर जो आनन्द प्राप्त हो रहा है वह बड़े-बड़े योद्धाओं का युद्ध देख कर भी प्राप्त नहीं हुआ था। आज सत्य ही इसने अपने को अर्जुन का सुपुत्र और श्याम का भानजा प्रमाणित कर दिया है।

कर्ण—निस्सन्देह आप जो कुछ कह रहे हैं सत्य है। परन्तु इसकी शूरवीरता हम लोगों के लिये लज्जा का स्थान भी तो है।

आचार्य—भाई ! तुम लोगों ने अकेले-अकेले इससे युद्ध कर के देख लिया, कोई इसे जीत नहीं सका। इसे परास्त करने का अब एक ही उपाय है, वह यह कि तुम सब लोग मिलकर इसे घेर लो। इस पर भी मुझे सन्देह है कि जब तक इसके हाथ में धनुष है, जब तक इसका रथ सुरक्षित है, किसी से जीता जा सकेगा अथवा नहीं। मेरे विचार में आप लोगों को इस समय अपनी सारी शक्ति इसके सारथी और घोड़ों को मारकर इसके हाथ से शस्त्र छीनने में लगानी होगी, तब ही यह शार्दूल पुत्र पिंजरे में डाला जा सकता है।

× × ×

जयद्रथ के विरुद्ध पाण्डवी सेना अपनी सारी शक्ति व्यय करके भी सफल न हो सकी थी, परन्तु अकेला अभिमन्यु चक्र-व्यूह की समस्त पंक्तियों को तोड़कर उस मानवी दुर्ग के हृदय में

प्रवेश कर चुका था। उसे प्रातः से शस्त्र-वर्षा करते संध्या होने आई थी, परन्तु पता नहीं उसका शरीर वज्र का बना था कि उसकी गति में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता था। उस समय आचार्य जी का संकेत पाकर कर्ण ने बाण वर्षा से उसके धनुष की डोरी काट डाली। कृपाचार्य ने अपना सारा बल उसके सारथि पर लगा कर उसे घायल कर दिया। अश्वत्थामा और शल्य ने सारथि के घायल होते ही रथ के घोड़ों को लक्ष्य बनाकर उनकी गति धीमी कर दी। अभिमन्यु उस समय चारों ओर से शत्रुओं से घिरा हुआ था। उसके हाथ का धनुष टूट चुका था और दूसरा धनुष हाथ में लेने के पूर्व ही टुकड़े-टुकड़े हो चुका था। सारथि और घोड़े मर चुके थे। तो भी गदा हाथ में लेकर उसने शत्रुओं पर इस वेग से आक्रमण किया कि एक ही वार से शल्य के घोड़े चकनाचूर हो गये, दूसरे वार ने कई अन्य योद्धाओं के प्राण लिये। उस समय सुयोधन, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोण, अश्वत्थामा, शल्य, दुश्शासन का पुत्र यह सात महारथी अपनी सारी सेना सहित उसे घेरे में ले रहे थे। उनमें से प्रत्येक का यह प्रयत्न था कि उसके हाथों से शस्त्र छीनकर उसके प्राण लें। यह देख कर अभिमन्यु ने चक्र अंगुली पर चढ़ाया। चक्र उठाये हुए वह उस समय सर्वांश में श्याम जी का रूप दिखाई दे रहा था। परन्तु पूर्व इसके कि वह चक्र छोड़कर शत्रु के प्राण ले, निरन्तर शस्त्र वर्षा ने उसकी एक-एक अंगुली तोड़ दी। उस समय दुश्शासन के पुत्र ने पीछे से आकर उसके सिर पर इस प्रकार गदा का वार किया कि अभिमन्यु

त्योरा कर गिरा। उसका गिरना था कि सातों महारथियों की कृपाणें म्यान से निकलीं और उसके शरीर में घुस गईं और वह वीर जिसने चार प्रहर तक सहस्रों शत्रुओं को तलवार के घाट उतारा था सदैव ' निद्रा सो गया।

अर्जुन प्रतिज्ञा

"आज हमारा झण्डा पूर्ण ऊँचाई पर क्यों नहीं फहरा रहा ? शिवर में जिधर देखता हूँ दुःख, निराशा और शोक के चिह्न दीख पड़ते हैं ! मुझे देखकर लोग जयकार क्यों नहीं बुलाते ? श्याम जी ! क्या बात है ? चारों ओर जिधर देखता हूं सेना के मुख पर हवाइयाँ उड़ रही हैं । भ्राता सुखी हों ! गुरु जी ने भ्राता के पकड़ने की प्रतिज्ञा कर रक्खी है, क्या वही तो पूर्ण नहीं हो गई ? मुझे प्रति सायं लौटते हुए प्रणाम करने के लिये अभिमन्यु भागा हुआ आया करता था, आज वह कहीं दीख नहीं पड़ता ! सुना था गुरु जी ने चक्रव्यूह रचा था क्या वह.............. श्याम जी ! आप मौन हैं, बोलते क्यों नहीं ? लौटते समय मेरे कानों में युयुत्सु के यह शब्द पड़े थे जो उसने कौरव सेना को लक्ष्य करके कहे थे "नपुंसको ! प्रसन्न क्यों होते हो ? यह रोने का विषय है । पाण्डव सेना के लिये नहीं, कौरव सेना के लिये । अब तुम्हें अर्जुन के क्रोध के लिये कटिबद्ध होना होगा । एक बालक को अधर्म से..................." मेरे कान इससे अधिक नहीं सुन पाये थे। क्या वह अभिमन्यु के विषय में ही तो नहीं कहे गये थे ?...............परमात्मा ! मेरा हृदय क्यों बैठा जा रहा है ?...............क्या हुआ है ? कोई पता नहीं देता ?

................अच्छा..................." यह शब्द कहते हुए अर्जुन शिवर के भीतर प्रविष्ट हुए। महाराज युधिष्ठिर के शिविर के निकट पहुंच कर श्याम जी ने रथ रोक लिया और दोनों भीतर पहुँचे। युधिष्ठिर उस समय अकेले नहीं थे। शोकासन बिछा था और वह रथियों और महारथियों से घिरे हुए बैठे थे। अर्जुन और श्याम जी को आते देख कर उठ खड़े हुए। जिस समय दोनों शूरवीरों ने नियमानुसार चरणों में प्रणाम के लिये सिर झुकाये, तो उनके नेत्रों से अश्रुबिन्दु टप टप गिरने लगे। अर्जुन ने सिर उठाया तो रोते रोते महाराज की घिग्गियां बंध रही थीं। वह केवल यह कह पाये "अभिमन्यु..... ...." जिह्वा ने इससे आगे कोई शब्द बोलना अस्वीकार कर दिया।

यह सुनते ही अर्जुन ने चारों ओर देखा। उस समय उसके शरीर का बहता हुआ रक्त जम गया था। श्याम जी उसके मुख के समस्त उतार-चढ़ाव देख रहे थे। जब उन्होंने देखा कि "अभिमन्यु" यह शब्द जिह्वा से निकाल कर अर्जुन लड़खड़ा कर गिरने को हैं, तो दौड़ कर उन्होंने उसे गोदी में थामते हुए कहा:—

श्याम—अर्जुन भाई ! इतना शोक ! अभिमन्यु के लिये शोक करने का समय नहीं। वह तो इन प्राकृतिक बंधनों को तोड़ कर वहां पहुंच गया है, जहां जाने के लिये ऋषि, महर्षि और देवता सहस्रों वर्षों तक तप किया करते हैं। तुम उसे देखते नहीं, परन्तु मैं जानता हूं कि वह तुम्हारे दुखित होने के कारण अपने नव-प्राप्त सुख को भूल कर दुखी हो रहा है। क्या उसे इस प्रकार

दुखी करते रहोगे ? क्या पितृस्नेह यही है ?

यह सुन कर अर्जुन ने नेत्र खोल दिये और उसने श्याम जी के मुख की ओर देखते हुए महाराज युधिष्ठिर से कहा:—

अर्जुन—भ्राता ! क्या हुआ ? कैसे हुआ ? मैंने सुना था आचार्य जी ने चक्रव्यूह रचा था। अभिमन्यु ने अभी ऐसे व्यूह में प्रवेश करने की विधि सीखी थी। उसकी शिक्षा अपूर्ण थी। फिर मुझे क्यों सूचित न किया गया ?

युधिष्ठिर—(नेत्र पोंछते हुए) अभिमन्यु का आग्रह था कि वह चक्रव्यूह को तोड़ कर अपनी सेना के लिये मार्ग बना देगा। हम समझते थे कि एक बार मार्ग मिलने पर हम व्यूह-प्रवेश में सफल हो जायेंगे। उसने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की, परन्तु हम साथ न दे सके। हाय ! शूरवीर पुत्र को सात महारथियों ने घेर कर मार डाला। हम उसकी सहायता के लिये न पहुँच सके।

अर्जुन—इतनी बड़ी सेना ! इतने बड़े-बड़े महारथी और इतने रथी ! सब सामने देखते रहे, और अबोध बालक कौरव सेना के सागर को मन्थन करके उसके भीतर वाले राक्षसों का शिकार हो गया ! ओह !!! दुःख इस बात का है कि मेरे जीवित होते, रण में उपस्थित होते, यह सब कुछ हो गया। गाण्डीव अभिमन्यु की सहायता न कर सका। जयद्रथ ! जयद्रथ ! तुम मेरे पुराने परिचित* थे। तुम अभिमन्यु के प्राण लेने का कारण

---

* जब पाण्डव वनों में घूम रहे थे तो जयद्रथ ने अवसर देख कर कृष्णा को भगा ले जाने का यत्न किया था। अर्जुन ने उस समय उसे पकड़ कर उसका सिर मूंड कर छोड़ दिया था।

बने हो। तुम्हारे ही कारण पाण्डव सेना उसकी सहायता नहीं कर सकी; परन्तु स्मरण रक्खो तुम अब अधिक समय पर्य्यन्त इस पृथ्वी पर श्वास नहीं ले सकते। सात महारथियों ने एक बालक को घेर कर उसके प्राण लिये! यह अधर्म इस रण में, इसी युद्ध में हो सकता है। आचार्य्य जी, गुरुजी, इसे देखते रहे, नहीं स्वयम् उन हत्यारों में से एक थे। भारत से धर्म उठ गया! युद्ध में धर्म-अधर्म का विचार नहीं रहा! जयद्रथ! अभिमन्यु के वध के लिये मैं तुम्हें उत्तरदायी समझता हूं, और इस सभा के सम्मुख, इस सूर्य्य के सम्मुख, इस पृथ्वी के सम्मुख, इस आकाश के सन्मुख, यह प्रतिज्ञा करता हूं कि यदि तुम कायरों की भांति युद्ध से भाग न गये, तो कल सायंकाल से पूर्व, सूर्य्यास्त से पूर्व, इस पृथ्वी पर जीवित नहीं रहोगे। हां, हां, जिस भांति अभिमन्यु का शरीर इस समय मिट्टी में मिल रहा है, उसी भांति सन्ध्याकाल से पूर्व तुम्हारा शरीर मांस-भक्षी जीवों का खाद्य बन रहा होगा। अर्जुन की इस प्रतिज्ञा-पूर्ति के मार्ग में जो भी बाधा डालेगा, आचार्य्य हो अथवा मित्र, गन्धर्व हो व देव, मार्ग से हटा दिया जायेगा। यदि यह प्रतिज्ञा पूर्ण न हुई तो वह स्वयम् अग्नि में बैठ कर भस्म हो जायेगा, परन्तु आगामी सूर्योदय का दर्शन नहीं करेगा।

अर्जुन उस समय अपने आपे में नहीं थे। उनके नेत्र भावावेश से रक्तवर्ण हो रहे थे। शरीर कांप रहा था। अधर फड़फड़ा रहे थे। उनके मौन होते ही श्याम जी ने अपना शँख

उठाया और पंचजन्य के घोष से कुरुक्षेत्र स्थल मीलों तक गूंज उठा। इस शंख के बजते ही अन्य महारथियों ने भी अपने-अपने शंख उठाकर इस ज़ोर से बजाये कि पृथ्वी आकाश कांप उठे। चारों ओर जहां अभी-अभी निराशा, शोक और दुःख के अतिरिक्त कुछ न था, एक दैवी आवेश का दृश्य दृष्टिगोचर होने लगा। उस समय श्याम जी को सम्बोधन करके वीर अर्जुन ने कहा :—

अर्जुन—श्याम जी ! आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहिये। मेरे सम्मुख मार्ग खुला है। अभिमन्यु की आत्मा प्रतिकार के लिये पुकार रही है, इस पुकार का उत्तर दिया जायेगा; परन्तु अभिमन्यु-वध की सूचना रणवास तक पहुँच चुकी है। सुभद्रा और कृष्णा उसे जिस प्रकार स्नेह करती थीं, आप से भूला नहीं। इस सूचना को पाकर उनकी जो दशा हुई होगी, उसका विचार करके मेरा हृदय शिथिल हो रहा है। इस समस्त सेना में यदि कोई व्यक्ति गिरते हुओं को उठाने में समर्थ है तो केवल आप। मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप रणवास में जाकर अपनी भगिनि और महारानी कृष्णा को धीरज बंधायें। कल को ईश्वर-इच्छा पूर्ण होकर रहेगी।

दारुक ने घोड़ों की बागें उठाईं और वह कुछ ही क्षणों में रथ को लेकर उपलव्य में पहुंच गये। श्याम जी ने रणवास में प्रवेश किया तो सुभद्रा रोती हुई उनसे चिपट गई। उस समय उसकी हिचकियां और रोना देख कर आकाश का हृदय भी फट रहा था। श्याम जी का मन भी भर आया, परन्तु शीघ्र ही अपने

को संयत करके भगिनी को धैर्य्य देते हुये उन्होंने कहा :—

श्याम—सुभद्रा ! तुम क्या कर रही हो ? मुझे यह आशा नहीं थी कि तुम इतनी अधीर होगी।

सुभद्रा—(सिसकियाँ लेते हुये) "भ्राता......अभिमन्यु......"

इससे आगे जिह्वा ने बोलना अस्वीकार कर दिया। वह फूट फूट कर रोने लगी।

श्याम जी के आगमन का समाचार उस समय तक सारे रणवास में फैल चुका था। ठीक उसी समय जबकि सुभद्रा विलाप कर रही थी, महारानी कृष्णा भी रोती हुई भीतर प्रविष्ट हुई।

श्याम—सुभद्रा ! कृष्णा ! तुम वीर पिताओं की पुत्रियां हो ! वीर भ्राताओं की भगिनीयाँ तथा वीर पतियों की पत्नियां हो ! तुम्हें यह रुदन शोभा नहीं देता। तनिक उत्तरा की ओर तो देखो वह बेचारी किस प्रकार अपना आप खो रही है ! यदि क्षत्राणियाँ ही इस प्रकार अधीर होंगी तो शेष संसार का क्या कहना ?

सुभद्रा—भ्राता ! क्या अभिमन्यु को मैं पुनः न देखूंगी ? हाय ! आज प्रातः किन आशाओं से मैंने उसे युद्ध में भेजा था............हाय मेरा लाल...............सारी सेना ने घेर कर मार दिया—

कलेजे में एक हूक उठी और वह उसे पकड़े हुये बैठ गई।

श्याम—सुभद्रा ! जो मृत्यु अभिमन्यु को प्राप्त हुई है, हम सब लोग उसके लिये तरसते हैं। उसके लिये रोना अपनी मूर्खता

प्रमाणित करना है। उसे वह गति प्राप्त हुई है जिसकी देवता और गन्धर्व इच्छा रखते हैं और नहीं पाते। परन्तु यदि तुम इसी प्रकार रोती रहोगी तो विश्वास करो कि न केवल अभिमन्यु को पुनः न देख सकोगी, वरन उससे भी प्रिय वस्तु हाथ से खो बैठोगी।

सुभद्रा—(रोते हुये) भ्राता! मैं जानती हूं आप जो कह रहे हैं वह सर्वथा सत्य है। उत्तरा की इस समय जो दशा है उसमें यह दुःख सहना असम्भव है। सहस्र बार हृदय को समझाती हूँ, पर क्या करूं दिल की लगी को किस प्रकार बुझाऊं?

श्याम—मेरा तात्पर्य उत्तरा से नहीं था, यद्यपि उसकी रक्षा भी इस समय तुम दोनों (कृष्णा की ओर देखते हुये) के ऊपर है; वरन मैं तुम्हें यह बताना चाहता था कि भ्राता अर्जुन ने आज एक भीषण प्रतिज्ञा की है।

सुभद्रा—(आँसू पोंछते हुये) हैं क्या?

कृष्णा—क्या? कृपया शीघ्र बताइये।

श्याम—यदि तुम इस समय वीर पत्नि और वीर भगिनी न बनीं, तो कल सायंकाल से प्रथम हम दोनों अभिमन्यु के समान धूलि में लोटते होंगे। यह समय है जबकि मुझे तुम्हारा धैर्य्य बंधाने की अपेक्षा तुम्हारे आचरण से शक्ति ग्रहण करना है।

सुभद्रा और कृष्णा—(एक स्वर से) क्या हुआ? शीघ्र बताइये।

श्याम—शूरवीर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञा की है कि कल सूर्य्य

देव के अस्ताचल गमन से पूर्व वह जयद्रथ के शरीर को उसी प्रकार चील और कौवों का भोज्य बनायेंगे जिस प्रकार कौरव महारथियों ने अभिमन्यु को बनाया है।

कृष्णा—धन्य हो वीर अर्जुन! धन्य हो! तुम से यही आशा थी।

सुभद्रा—(आँसू साफ़ करके) तो वह मेरे लाल के वध का प्रतिकार लेंगे?

श्याम—अवश्य लेंगे और यदि वह इस कार्य में सफल मनोरथ न हुये, तो उन्होंने दूसरी प्रतिज्ञा यह की है कि प्रथम इसके कि दूसरा सूर्य उदय हो अग्नि में जल कर स्वयं भस्म हो जायेंगे।

यह भयङ्कर प्रतिज्ञा सुन कर कृष्णा और सुभद्रा का चलता हुआ रक्त रुक गया। कठिनतापूर्वक अपने को संभालते हुये कृष्णा ने कहा:—

कृष्णा—प्रतीत होता है कि कल का दिन इस युद्ध में भीषण हत्याकाण्ड का दिन होगा।

सुभद्रा—क्या उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकेगी? क्या इतनी विस्तृत सेना में वह जयद्रथ को ढूंढकर उसके वध में समर्थ हो सकेंगे? (आकाश की ओर नेत्र उठा कर) परमात्मा! गिरे हुओं को उठाने वाले प्रभु! पुत्र तो साथ छोड़ गया, क्या पतिदेव भी उसी का अनुसरण करेंगे? तू ही उनकी रक्षा करने वाला है!

श्याम—सुभद्रा! परमात्मा उनकी रक्षा करेंगे यदि तुम उन्हें पीछे से खींचना छोड़ दो। मैं पुनः कहता हूं कि तुम वीर पुत्री और

वीर पत्नि हो, श्याम की भगिनी हो, इस समय कायर बन कर हम लोगों के मरवाने का कारण न बनो। मेरी ओर तो देखो, क्या अभिमन्यु मेरे हृदय का टुकड़ा नहीं था ? क्या मैंने उसे प्रद्युम्न की भांति युद्ध-विद्या की शिक्षा नहीं दी थी ? क्या वह मुझे तुम लोगों से कम प्रिय था ? क्या उसकी मृत्यु मेरे हृदय को प्रभावित नहीं करती ? परन्तु मेरा धर्म इस समय रोना नहीं, मेरा धर्म इस काल में मृतकों के स्मरण में अश्रुपात करना नहीं, मुझे इस समय उनसे कार्य है जो जीवित हैं। स्मरण रक्खो कल यदि युद्ध में अर्जुन सफल मनोरथ न हुये तो श्याम भी इस शरीर को लेकर तुम्हारे सम्मुख नहीं आयेगा। अर्जुन का कल का युद्ध उसके लिये ही शिर और धड़ का खेल नहीं, श्याम के लिये भी है। रथी और सारथि दोनों एक ही रथ के सवार हैं। शत्रु की ओर से यह यत्न किया जायेगा कि सारथी को मार कर रथी को रथहीन कर दिया जाय जिस प्रकार अभिमन्यु को किया गया था, क्योंकि रथहीन योद्धा को मार लेना सुगम है। कल मुझे न केवल रथी की ही सेवा करनी है बल्कि स्वयं को भी सुरक्षित रखना है। रथी हाथ में शस्त्र लेकर अपनी रक्षा करता है और दूसरों पर शस्त्र प्रहार करता है, परन्तु मुझे केवल चाबुक और लगाम से काम लेना है। इन्हीं के बल पर सम्पूर्ण कौरव सेना सागर को पार करके जयद्रथ तक पहुंचना है। इस कारण मेरी तुम दोनों बहिनों से प्रार्थना है कि अभिमन्यु का रोना छोड़ कर परमात्मा से प्रार्थना करो कि वह कल के भयङ्कर युद्ध में हमारी सहायता करें,

उत्तरा बेचारी ने अभी इस संसार का कोई सुख नहीं देखा, यदि तुम वीर बनोगी तो वह भी धैर्य्य धारण करेगी। क्षत्राणियां पुत्र उत्पन्न करती हैं इन्द्रियों की शान्ति के लिये नहीं, अपने स्वार्थ के लिये नहीं, वरन इसलिये कि वह संसार में पाप की वृद्धि को रोकने का कारण बनें। यह युद्ध इसी लिये हो रहा है जिसमें शूरवीर योद्धा अपनी आहुतियां दे रहे हैं। अभिमन्यु कायर नहीं था, कायर पिता का पुत्र नहीं था, कायर कुल में उत्पन्न नहीं हुआ था, जो समर भूमि में पीछे रह कर अपने प्राणों की रक्षा करता। आज उसने दिखा दिया है कि शूरवीर अकेले सारे विश्व को किस प्रकार ललकारा करते हैं? यह उसके पिता के लिये, उसकी माता के लिये, उसकी स्त्री के लिये, हर्ष का कारण होना चाहिये न कि रोने का।

सुभद्रा—भ्राता! मैं अब नहीं रोती। आप उनकी रक्षा कीजिये, मैं उन्हें आप के सुपुर्द करती हूं। परमात्मा आप दोनों के सहायक होंगे।

श्याम—कल के युद्ध के लिये मुझे अभी बहुत कार्य करना है, आज्ञा दो, रात्रि अधिक जा रही है और दिन निकलते ही घोर संग्राम आरम्भ हो जायेगा, यदि ईश्वर इच्छा हुई तो कल सायं से पूर्व तुम्हें पूर्ण समाचार प्राप्त हो जायेंगे।

× × ×

"दारुक! तुम्हें कल के युद्ध के लिये तैयार होना होगा।" रथ से उतरते ही अपने रथवान को सम्बोधन करके श्याम जी ने

कहा "कल का युद्ध कौरव-पाण्डव युद्ध के इतिहास में अद्वितीय युद्ध होगा। अर्जुन की प्रतिज्ञा तुमने सुन ही ली है, कल वह अपनी पूर्ण शक्ति कौरव सेना को नाश करके जयद्रथ वध में लगायेंगे। कौरव सेनापति यत्न करेंगे कि जयद्रथ रण में होते हुये भी हमारी दृष्टि से ओझल रहे; परन्तु हमने उसे ढूंढना है। सम्पूर्ण कौरव सेना हमारे मार्ग में बाधा बनेगी, हमने उसे चीर कर जयद्रथ के शिर पर पहुँचना है। शत्रु यत्न करेगा कि मुझे मार कर अर्जुन को रथहीन कर दे। उसका यह भी यत्न होगा कि रथ के घोड़ों पर प्रहार करके हमें पैदल युद्ध करने पर विवश कर दे। इसका प्रबन्ध करना है। कल यदि अर्जुन की प्रतिज्ञा पूर्ण न हो सकी, तो उसका समस्त भार मेरे कन्धों पर होगा। यदि उसके जीवन पर आ बनी तो आश्चर्य न होगा यदि मुझे सुदर्शन को अंगुली पर नचाना पड़े। इस युद्ध में धर्म युद्ध के समस्त नियम टूट चुके हैं, इसलिये मैं भी अपनी प्रतिज्ञा से मुक्त हो चुका हूं। तुम्हें अपने रथ को मेरे साथ साथ रखना होगा। उसे ठीक ठाक करके मेरे समस्त अस्त्र शस्त्र साथ लेकर सोने से प्रथम मुझे दिखाते जाना ताकि समय पर कोई त्रुटि न रह जाये।

दारुक—जो आज्ञा भगवन !

× × ×

"अर्जुन भ्राता ! आज की प्रतिज्ञा तुमने अत्यन्त उतावली में कर दी, निस्सन्देह तुम्हें यह सोचने का अवसर नहीं मिला कि

इसे पूर्ण करना कितना कठिन कार्य है।"

अर्जुन—श्याम जी! आपके होते मैं इसे बाएं हाथ का कर्त्तव्य समझता हूं। आप देखेंगे कि कितनी सुगमता से यह पूर्ण होती है।

श्याम—अभी-अभी मेरे गुप्तचर, जो शत्रु-सेना में कार्य कर रहे हैं, यह समाचार देकर गये हैं कि तुम्हारी प्रतिज्ञा की सूचना जिस समय शत्रु-शिविर में पहुंची, तो जयद्रथ ने सुयोधन के पास जाकर कहा, "अपने देश को चला जाऊँ अथवा कौरव-सेना मेरी रक्षा करेगी?" इसके उत्तर में सुयोधन ने उसे धैर्य्य बंधाते हुए कहा, "एक ही भभकी में रण छोड़ कर भाग जाना किसी शूरवीर को शोभा नहीं देता। पाण्डवी सेना को हम जानते हैं, आज तुमने ही तो उसके छक्के छुड़ाये थे। यदि समूची पाण्डव सेना आज अभिमन्यु तक नहीं पहुंच सकी तो अर्जुन कल तुम तक पहुंचने में कैसे सफल हो सकता है? और यदि वह हमारी सेना को चीर कर उसमें प्रवेश करने में सफल हो भी जाय तो जो दशा अभिमन्यु की आज हुई है, कल वही उसकी भी होगी। और यदि वह सायंकाल पर्य्यन्त न भी मारा गया तो अपनी प्रतिज्ञा-पूर्ति में स्वयं ही अग्नि में जल मरेगा। क्या एक दिन तक उसे थामे रखना कुछ कठिन है? निस्सन्देह समस्त कौरव सेना की शक्ति तुम्हारी रक्षा में लगा दी जायेगी।"

इसके पश्चात् दोनों योद्धा आचार्य्य जी के शिविर में पहुँचे, वहाँ पर कुछ परामर्श के पश्चात् यह निर्णय हुआ कि कल को

नवीन ढंग पर सेना को सजाया जाय, उसमें उसका अग्रभाग शकट व्यूह रहे, उसके पश्चात् कमल व्यूह हो, फिर शूची व्यूह। शकट व्यूह की रक्षा का कार्य आचार्य्य जी अपने हाथ में लेंगे, कमल व्यूह में भिन्न-भिन्न स्थानों पर कर्ण, दुःशासन, शकुनि इत्यादि महारथियों की सेना होगी, शूची व्यूह के अगले भाग में सुयोधन और सबके अन्त में जयद्रथ युद्ध के लिये उपस्थित होंगे। इस प्रकार सेना को कई कोस तक फैला कर हमें रोकने का पूर्ण प्रयत्न किया जायेगा।

अर्जुन—मुझे ज्ञात है कि कल आचार्य्य जी अपनी सारी युद्ध-विद्या इस बात में समाप्त कर देंगे कि उनका सबसे प्रिय शिष्य अपनी प्रतिज्ञा-पूर्ति में निष्फल रह कर आत्महत्या कर ले! परन्तु मैं फिर कहता हूँ कि यदि आपकी कृपा-दृष्टि रही तो अर्जुन के मार्ग में खड़ी होकर कोई बाधा उसे रोक नहीं सकेगी। कल को अर्जुन संसार को दिखा देगा कि गत वर्षों में वनों और जंगलों में घोर तपस्या के परिणाम में उसने आज पर्य्यन्त प्रयोग किये गये अस्त्रों के अतिरिक्त और किस किस प्रकार के अस्त्र और शस्त्र आविष्कार किये हैं। निस्सन्देह उन्हें प्रयोग करने का समय आ गया है, और वह कल कौरव सेना के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करेंगे।

श्याम—मुझे विदित है कि कल के युद्ध में तुम अपनी सम्पूर्ण शक्ति समाप्त करने पर तुले हुए हो, इसलिये आवश्यकता है कि तुम कुछ काल विश्राम कर लो। प्रातःकाल जो होगा देखा जायेगा।

× × ×

श्याम जी के जाने के पश्चात् अर्जुन कुछ समय जागता रहा, तत्पश्चात् उस पर एक बेसुधी सी छा गई। उस समय उसने एक अद्भुत् चित्ताकर्षक स्वप्न में अपने को श्याम जी की सहायता से इस प्राकृत संसार से ऊपर उठे हुए पाया। उसे ज्ञात हुआ कि श्याम उसे अपने साथ लिये आकाश मार्ग से जा रहे हैं। नीचे दृष्टि डाली तो पृथ्वी एक कन्दुक की भांति लुढ़कती हुई चली जा रही थी। दूसरी ओर देखा तो सूर्य्य देव सहस्रों ग्रह और नक्षत्रों सहित आकाश में इस प्रकार भागे जा रहे थे मानो कोई डाकू किसी का धन लेकर भाग रहा हो।

दोनों मित्र आगे निकल गये तो इस सूर्य से लाखों गुणा बड़े असीम सूर्य्य, करोड़ो नक्षत्रों सहित, चारों दिशाओं में घूमते हुए चक्र खा रहे थे। उस दृश्य को देख कर अर्जुन का शिर चक्कर खाने लगा, क्योंकि नीचे देखने पर इस पृथ्वी का कहीं पता नहीं था। अत्यन्त परिश्रम करके कठिनतापूर्वक देखने से वह इस भयङ्कर विश्व में एक सूई से भी छोटी दीख पड़ी।

उस समय उसके हृदय में कई विचार प्रगट हुए; परन्तु उन्हें प्रकाश करने का अवसर नहीं था। सम्मुख एक आलोक दृष्टिगोचर हो रहा था, जिसके सामने उन लाखों सूर्यों का प्रकाश फीका प्रतीत हुआ। उसकी चकाचौंध से अर्जुन के नेत्र मुंदते हुए प्रतीत हुए और उसका शिर किसी अदृश्य शक्ति के सम्मुख शीघ्रता पूर्वक झुकता हुआ दिखाई दिया। उस समय उसके कानों में

यह शब्द गूंजे "तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हें जो दिव्य अस्त्र दिये गये हैं, वह तुम्हारी रक्षा करेंगे।" यह सुनते ही उसके नेत्र खुल गये, तो वही युद्ध-क्षेत्र था और वही शिविर, परन्तु उसका मस्तिष्क दिव्य अस्त्रों* को बनाने और प्रयोग करने के नये-नये ढंग प्रस्तुत कर रहा था जिन्हें पूर्ण करने में रात्रि का शेष भाग समाप्त हुआ।

---

* प्राचीन काल में शस्त्र दो प्रकार के प्रचलित थे—एक तो कृपाण, धनुष और शक्ति, परशा, तोमर, भिंदी पाल, परास, रिष्टि, भरव्यूह, गदा इत्यादि। यह सब के सब शस्त्र शब्द में गिने जाते थे। इनके अतिरिक्त दूसरी प्रकार अस्त्रों की थी। यह वह आयुध थे जो एक-एक समय में सहस्त्रों मनुष्यों पर फेंके जा सकते थे यह वर्त्तमान काल के मैशीनी आयुधों की भांति थे। इस प्रकार के आयुध नारायण अस्त्र, गन्धर्व अस्त्र, पाशुपत अस्त्र इत्यादि थे। इनसे भी बढ़कर दिव्य अस्त्र थे जो कुछ जातियों और वीरों के रहस्यों में कहे जा सकते थे। अर्जुन ने इसी प्रकार के अस्त्रों को प्राप्त करने में वनवास के द्वादश वर्ष व्यतीत करने के अतिरिक्त अपने जीवन का मुख्य भाग नवीन अस्त्र आविष्कार करने में समाप्त किया था। देशभक्त श्याम के आविष्कृत अस्त्र उनके अतिरिक्त थे।

शोक है कि कालचक्र ने उन अस्त्रों के आविष्कार और प्रयोग नियम विस्मृत कर दिये हैं, और आज हमारी विद्या केवल इतनी सी बात पर समाप्त हो गई कि हमारे पूर्वज कृपाण, गदा और बाण के धनी थे।

प्रतिहिंसक युद्ध

आचार्य्य द्रोण को उनकी अपनी युद्ध-रचना में परास्त करने, और अभिमन्यु की हत्या का प्रतिकार लेने के लिये, पाण्डवी सेना के एक-एक सैनिक और सेनापति का हृदय अर्जुन और देशभक्त श्याम के हृदय के साथ गतिवान था। प्रत्येक मनुष्य की यह इच्छा थी कि जिस प्रकार भी बने, कल की पराजय का हिसाब चुका कर कौरवी सेना को समाप्त कर दें। कौरवी जरनैल भी समय की विकटता को अनुभव करते हुए कील-कांटे से लैस हो रहे थे। कल की विजय से उनके साहस बढ़े हुए थे; यद्यपि अर्जुन की भयङ्कर प्रतिज्ञा किसी समय हृदयों में भय उत्पन्न कर देती थी। परन्तु उसे एक पराजित शत्रु की भभकी समझ कर परिहास किया जा चुका था। सारांश कौरवी सेना का एक-एक सेनापति चाहता था कि जिस प्रकार भी सम्भव हो अर्जुन को लक्ष्यच्युत करके इस बात पर विवश कर दे कि वह अपनी प्रतिज्ञा को चाट जाय अथवा अपने जीवन का अपने हाथों अन्त कर ले।

आचार्य्य जी का शकट व्यूह आज चौबीस मील में फैल रहा था। उसका पिछला भाग सुकड़ता-सुकड़ता दस मील रह गया था। उससे पीछे कमल व्यूह और फिर शूचि व्यूह सूई के समान बारीक होता चला गया था। उसके अन्तिम भाग में

जयद्रथ सात महारथियों की सेनाओं की सुरक्षा और अपने स्वामी-भक्त शूरवीरों की सहायता से शिर से पाओं तक शस्त्रों से सुसज्जित होकर आक्रमणकारी के स्वागत के लिये प्रस्तुत था।

शकट व्यूह से आगे बढ़ कर सुयोधन का कनिष्ठ भ्राता दुर्मर्शन एक सहस्र रथ, तीन सहस्र सवार, दस सहस्र पदाति सेना सहित अर्जुन को ललकारता हुआ उसका प्रतिद्वन्दी था। उसका दावा था कि शेष सेना तो एक ओर, वह और उसके शूरवीर ही अर्जुन को समाप्त कर देंगे। किसी और को कर हिलाने की आवश्यकता ही नहीं होगी।

× × ×

श्याम जी ने बागें उठाईं और निमिष मात्र में अर्जुन की सेना ने दुर्मर्शन के सिर पर काल की भांति पहुंच कर उसे दबोच लिया। अभी किसी को यह ज्ञात न हुआ था कि शत्रु सेना के सहस्रों युवा और अश्व क्या हुए, वह द्रोण जी का सामना करने को बढ़ गई। दुर्मर्शन चकित रह गया जब उसने अपने चारों ओर रणक्षेत्र शून्य देखा। वह विक्षिप्त की भांति द्रोण जी के पीछे से रथ दौड़ाता हुआ शकट व्यूह में पहुंच गया। उसे क्षेत्र से भागते देख कर दुश्शासन ने सहस्रों हाथियों को आगे बढ़ाया जो सिर से पाँव तक लोहे से ढके थे। इस काली कलूटी सेना को, जो प्राचीर की भांति पाण्डवी सेना के सम्मुख खड़ी होकर उसके मार्ग को रोकना चाहती थी, साधारण अवस्था में पार करना स्यात असम्भव हो जाता; परन्तु संसार ने देखा कि अर्जुन

की सेना चारों ओर न केवल लोहे बल्कि अग्नि की वर्षा कर रही थी, जिसकी चमक से हाथी व्याकुल होकर भागे और अपनी ही सेना को रौंदते और चीत्कार मचाते पलायमान हो गये। उस समय पाण्डवी सेना की मार और हाथियों की रौंद से कौरवी सेना में भगदड़ मच गई। नायक सेना की टुकड़ी जो यह निर्णय करके व्यूह से निकली थी कि पाण्डवी सेना को एक पग भी आगे बढ़ने नहीं देगी व्यूह के भीतर प्रविष्ट होकर उसका एक भाग बन गई।

विजयी अर्जुन ने अब व्यूह प्रवेश का निश्चय किया। उस समय श्याम जी ने पञ्चजन्य को उठा कर इस जोर से फूंका कि रणक्षेत्र दहल उठा। उनके साथ ही अर्जुन ने देवदत्त को अधरों से लगाया, उसमें से शब्द का निकलना था कि जगत ने एक अद्भुत दृश्य देखा, उनके रथ की❀ ध्वजा के ऊपर लगे हुए कृत्रिम कपि में से एक अमानुषी शब्द ने कुरुक्षेत्र में तहलका मचा दिया।

सहस्रों शंखों के शब्द से क्षेत्र को गुंजाते हुए धनंजय ने कूच की आज्ञा दी तो गुरुदेव उसे रोकने के लिये आगे बढ़े। उनके रथ को आता देखकर सुसंस्कृत शिष्य ने नव बाणों से चरण छूते हुए उच्च स्वर से कहा, "गुरुदेव! आशीर्वाद दो। आपका शिष्य अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करके सफल मनोरथ हो।"

❀ अर्जुन के रथ की ध्वजा पर बन्दर की मूर्ति थी इसलिये उसे कपिध्वज कहते हैं।

द्रोणाचार्य्य—(मुस्कराते हुए) मुझे परास्त किये बिना तुम्हारा आगे बढ़ना असम्भव है।

यह कहा और बाण-वर्षा से अर्जुन, श्याम, उनके घोड़ों तथा सेना को ढांप दिया। उस समय उनके धनुष से बाण ऐसे निकल रहे थे मानो श्रावन मास में आकाश से मूसलाधार वर्षा हो रही हो। वृद्धावस्था में उनके हाथों में यह शक्ति देख कर बुद्धिमान शिष्य विस्मित रह गया और उसने उत्तर में गाण्डीव पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई, जिसने एक बार में पंच शत, द्वितीय में सप्त शत और तृतीय में एक सहस्र मर्मभेदी बाण चारों ओर बिखेर कर आचार्य्य जी के समस्त बाण मार्ग में ही काट दिये।

युद्ध अब मनोरञ्जक हो गया। जहां पर होनहार शिष्य यह बता रहा था कि वह युद्ध-विद्या में गुरुजी से न्यून नहीं है, वहां अनुभवी गुरु यह प्रमाणित करने पर कटिबद्ध थे कि उन्होंने बिल्ली की भांति शिष्य को सारे गुण सिखा कर अपना कोष खाली नहीं कर दिया।

अल्प समय तक दोनों सेनाएँ इस मनोरञ्जक युद्ध को निहारती रहीं; परन्तु शीघ्र ही श्याम जी ने अर्जुन को सम्बोधन करके कहा, "हमें अभी दीर्घ यात्रा करनी है। यदि गुरु जी के साथ ही अटके रहे तो सारा समय यहीं व्यतीत हो जायगा।"

अर्जुन—सत्य है! चलिये! बढ़िये!

रथ को चक्र देते हुए श्याम जी ने उसका मुख दूसरी ओर कर दिया और पाण्डव सेना द्रोण जी को एक ओर छोड़ कर

आगे बढ़ी। उसे दूसरी ओर जाते देख कर आचार्य्य जी ने पुकार कर कहा, "अर्जुन! यह क्या? तुम तो आज पर्य्यन्त शत्रु को परास्त किये बिना कभी नहीं हटे थे। यह आज क्या हो रहा है?"

अर्जुन—सम्मुख शत्रु हो भी। मैं तो अपने सम्मुख आचार्य्य और गुरु को देखता हूं, जिनके समीप मैं स्वयं को अश्वत्थामा समझता हूं। इस समय कौन है जो मेरे गुरु को परास्त कर सके? गुरुदेव! प्रतिज्ञा-पूर्ति के लिये जा रहा हूं, मुझे आपका आशीर्वाद चाहिये, युद्ध नहीं।

यह शब्द वायु-मण्डल में गूंज ही रहे थे कि द्रुतगामी अश्व रथ को लेकर बढ़ गये। दारुक का रथ श्याम जी के साथ-साथ था। दोनों रथों की गति इतनी तीव्र थी कि यह सन्देह हो रहा था कि श्याम जी अर्जुन के रथ को चला रहे हैं अथवा अपने रथ पर आरूढ़ हैं। पांचाल कुमार युधामन्यु और उत्तमौजा अर्जुन के चक्र-रक्षक थे*। और उनकी सेना शीश हथेली पर रक्खे अर्जुन के शूरवीरों के साथ-साथ चल रही थी।

अर्जुन को आगे बढ़ते देख कर कृतवर्मा और काम्बोज नरेश ने मार्ग रोका। दूसरी ओर से शूरसेन, शिवि, कैकेय, मद्रक आदि देशों के शूरवीर, नारायणी सेना, गोपाल आदि आ गये जो श्याम जी के अपने सम्बन्धियों में से थे। अर्जुन ने उन्हें देखा तो

---

* रथ के चक्र के रक्षक, यह पद उन शूरवीरों को दिया जाता था जो सेनापति के फलैंक (Flank) के दोनों ओर चलते हुए उसकी रक्षा और सहायता करते थे।

हृदय ने चुटकी ली, परन्तु श्याम जी के यह शब्द कान में पड़े "सावधान ! यह दया के पात्र नहीं। हमको इनसे अधिक समय तक उलझना नहीं, मार्ग साफ़ करके आगे चलना है।" यह शब्द सुनते ही अर्जुन के नेत्रों के सम्मुख वह दृश्य घूम गया जब अभिमन्यु शत्रुओं से घिरा हुआ था, कोई सहायक साथ न था, चारों ओर जिधर देखता था चाचा, ताऊ और अन्य सम्बन्धी खड्ग, बाण, बरछे और नेजे लेकर हृदय छेदने को तैयार थे, और वह मूक वाणी से कह रहा था, "पिता जी ! कहाँ हो ? क्या मेरी मृत्यु के पश्चात् पहुंचोगे ?" कानों ने यह शब्द सुने और गाण्डीव में जोर की टंकार उत्पन्न हुई, फिर लाखों बाण, खड्ग, शक्ति और अन्य अस्त्र-शस्त्र चारों ओर प्रलय मचाते हुए गिरने लगे। शत्रुओं ने यह कड़ाका सुना तो अवाक् रह गये, उनकी समझ में यह नहीं आता था कि किस भांति एक साधारण धनुष इतने प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को चारों ओर बखेर सकता है।

परन्तु कौरवी सेना इतनी अल्प नहीं थी कि एक ही बाढ़ से समाप्त हो जाती, उसके दूरदर्शी नेताओं ने अपनी बिखरती शक्ति को एकत्र करके जोर से आक्रमण किया। वह चाहते थे कि केवल संख्या की शक्ति से ही अर्जुन और उसके साथियों को पीस डालें। परन्तु अर्जुन के दिव्य अस्त्रों ने इस बार पूर्व से अधिक विनाश किया, और अभी किसी को यह ज्ञात भी नहीं हुआ था कि यह अस्त्र किस प्रकार कार्य करते हैं, कि लाखों मनुष्य, हस्ति, अश्व धराशायी हुए दम तोड़ रहे थे।

क्षेत्र शून्य देख कर श्याम जी ने रथ आगे बढ़ाया, परन्तु अभी बहुत दूर नहीं जा सके थे कि कृतवर्मा, जो मूर्छित हो गया था, के होश ठिकाने आ गये और उसने अपने रहे-सहे सहायकों को ललकार कर युधामन्यु और उत्तमौजा का मार्ग रोक लिया। इन दोनों शूरवीरों ने बहुत यत्न किया कि अपने नेता का साथ दें, परन्तु शत्रु की बढ़ती हुई शक्ति ने बढ़ने न दिया।

श्याम जी का रथ आगे बढ़ा तो परनाषा नरेश शरुतायुध ने एक बड़ी सेना के साथ उन्हें चारों ओर से घेर कर रोकने का यत्न किया। परन्तु गाण्डीव धनुष अमानुषी शक्ति से कार्य कर रहा था, और अर्जुन की सेना में दिव्य अस्त्र इस प्रकार बटे हुए थे कि उनके निकट पहुँचना मृत्यु के समीप पहुँचना था। तो भी शत्रु अर्जुन को प्रत्येक प्रकार से आगे बढ़ने से रोकने पर तुल रहा था। उसकी समस्त शक्ति इस पर लग रही थी। शरुतायुध ने स्वयं अपना रथ आगे बढ़ा कर सहस्रों बाणों से अर्जुन का कलेजा छेदना और उसके धनुष को काटना चाहा, परन्तु श्याम जी की अश्व-विद्या ने सफल न होने दिया। यह देख कर उसने एक भयङ्कर शक्ति इस ज़ोर से श्याम जी पर फेंकी कि साधारण अवस्था में सारथी और रथ दोनों उसकी मार से चकनाचूर हो जाते। पर श्याम जी ने उसके आक्रमण को अपने दायें कन्धे पर लेकर उसे इतने ज़ोर से हिलाया कि शक्ति लौट कर पूर्ण शक्ति से अपने छोड़ने वाले के रथ पर जाकर गिरी, और जगत ने देखा कि न केवल स्वयं शरुतायुध वरन उसका

रथ, घोड़े और सारथी समस्त चकनाचूर होकर मिट्टी का ढेर हो गये।

शरुतायुध को गिरते देख कर काम्बोज राज के सुपुत्र सुदक्षिण की सेना आगे आई; परन्तु अल्पकाल के युद्ध के पश्चात् समाप्त हो गई। सुदक्षिण मारा गया तो शरुतायु और अच्युतायु दोनों भ्राता अपनी-अपनी सेना सहित शिवि और शूर सेना के सेनानियों को लेकर दक्ष और वाम से इस जोर से चढ़ आये कि प्रतीत होता था कि पाण्डवी सेना का यह भाग जो अर्जुन के सेनापतित्व में शूरवीरता दिखा रहा था, इन दोनों सेनाओं के मध्य ऐसे पिस जायेगा जैसे दो हाथियों के मध्य अकेला सिंह। परन्तु संख्या अधिक होते हुये भी कौरवी सेना उन नवीन अस्त्रों का सामना न कर सकी, जिन्हें अर्जुन और उनके सहायक प्रयोग कर रहे थे। शरुतायु और अच्युतायु की सेनाएं आगे बढ़ीं तो पाण्डवी सेना के एक-एक रथ से अर्धचन्द्र बाणों की एक बाढ़ ने निकल कर मृतकों के ढेर लगा दिये।

कौरवी सेना ने बाण और खड्ग की इस आंधी में से होकर आगे बढ़ने का यत्न किया, परन्तु सफलता न हुई। तो भी शूरवीरों का धैर्य कम नहीं हुआ और उन्होंने बड़े जोर से साखा करके अर्जुन के रथ को चारों ओर से घेर लिया। उस समय उनमें से एक का बाण अर्जुन के कवच में घुस गया।

अर्जुन घायल हुये तो शत्रु ने श्याम जी के हाथों को आहत करके उनसे रासें छीनने का यत्न किया। श्याम जी ने मुड़ कर

देखा तो अर्जुन मूर्छित थे। उन्होंने एक हाथ से उन्हें संभाल कर दूसरे से रथ को चलाने का यत्न किया। परन्तु शीघ्र ही अर्जुन संभल गये, और उन्होंने इन्द्रास्त्र को गाण्डीव पर चढ़ा कर प्रत्यञ्चा चढ़ाई तो क्षण भर में सहस्रों आयुधों ने शत्रु के अस्त्रों को निष्फल बना दिया। शरुतायु और अच्युतायु शत्रु को ललकारते हुये आगे बढ़े, परन्तु गाण्डीव की बाढ़ का सहन करना मानव-शक्ति से परे था। तथापि दोनों ही उसके आक्रमण से आहत होकर गिरे और पूर्व इसके कि कोई उन्हें सम्भाले, अर्धचन्द्र बाणों से उनके शिर और भुजाएं कट कर पृथ्वी पर गिर गये। उन शूरवीरों को धराशायी देखकर उनके वीर सुपुत्रों दीर्घायु और नियतायु के नेत्रों में रक्त उतर आया। वह आवेशपूर्वक नारा मारते हुये पाण्डवी सेना पर झपटे; परन्तु जिस बाढ़ को उनके वीर पिता न रोक सके थे उसके सन्मुख खड़ा होना उनके लिये असम्भव था। कुछ ही क्षण में गाण्डीव ने न केवल उनको, वरंच उनकी समस्त सेना को नष्ट-भ्रष्ट करके चारों ओर रक्त की नदियाँ बहा दीं।

अपनी सेना के इतने शूरवीरों को कटवा कर सुयोधन ने हाथियों की सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी, कि इस छोटे से दल को, जो कौरवी सेना में घुसता चला आ रहा था, कुचल कर अञ्जन बना दें। परन्तु पाण्डवी सेना के दिव्यास्त्रों में फिर अग्नि अस्त्र कार्य करते दीख पड़े। उन्होंने सहस्रों हाथियों को झुलस कर उनके महावत् और सवारों को जला डाला। हाथी चारों ओर

भागते हुये सम्पूर्ण सेना में भगदड़ मचा रहे थे, और उनके हौदों पर आरोहित सेनानी काले कोयले की बनी हुई मूर्त्तियों की भांति दीख पड़ते थे। उन्हें देख कर अन्य सेना कांप रही थी।

युद्ध का यह दृश्य देख कर सुयोधन आचार्य्य जी की सेवा में पहुँच कर बोला:—

"गुरुदेव! आपको ज्ञात है कि अर्जुन इस समय कहाँ पहुंच गया है। हम लोग अत्यन्त विश्वासपूर्वक कह रहे थे कि हमारी सम्पूर्ण सेना तो एक ओर अकेले गुरुदेव के सम्मुख से ही उसका आगे निकल जाना असम्भव है। परन्तु मुझे यह विस्मरण हो गया था कि अर्जुन गुरुदेव का प्रिय शिष्य है और वह उसकी प्रतिज्ञा को असफल होते देखना पसन्द नही करेंगे। हाय! जब बाड़ ही क्षेत्र को खाने लगे तो उसकी रक्षा कौन करे? यदि यह विचार मेरे मस्तिष्क में इससे पूर्व आ जाता तो मैं जयद्रथ को रात्रि में ही उसके देश को चले जाने की आज्ञा दे देता!

द्रोण—राजकुमार! यह तुम क्या कह रहे हो?

सुयोधन—गुरुदेव! मैं कथन कर रहा हूँ कि जैसे भी हो अर्जुन का अन्त करके इस युद्ध को सफल कीजिये। मैं यह मान नहीं सकता कि इस समय कोई शूरवीर आपको परास्त कर सकता है। निश्चय यदि आप मार्ग न देते तो अर्जुन का यह साहस कहां था कि वह आगे बढ़कर इतनी सेना का विनाश करता?

द्रोण—राजकुमार! तुम मुझ पर कितने भी दोषारोपण करो,

मैं बुरा नहीं मानता। इसलिये नहीं कि तुम्हारे कटु-वचन मेरे हृदय को चुभते नहीं, वरंच इसलिये कि मैं अपना धर्म-पालन कर रहा हूं। मैं स्वीकार करता हूं कि अर्जुन मेरा प्रिय शिष्य है, परन्तु मुझे यह भी ज्ञात है कि इस समय हमारा सम्बन्ध गुरु-शिष्य का नहीं शत्रुओं का है और मैं उसे उसी दृष्टि से देखता हूं। तिस पर भी तुम यदि मुझ पर दोषारोपण करो तो मैं इसे हम दोनों के दुर्भाग्य के अतिरिक्त और क्या कह सकता हूं ! मैंने यथाशक्ति अर्जुन का मार्ग रोकने का यत्न किया और उसे रोका, पर उसके सारथी को रोकने की शक्ति मुझ में नहीं । तुम्हें ज्ञात नहीं अथवा जानते हुए भी विस्मरण कर जाते हो, कि श्याम जी की शक्तियां क्या हैं और कैसी हैं ? वह जब अर्जुन को आगे ले जाने पर तुले हुये थे, तो उनके रथ की गति को रोकना मेरे लिये असम्भव था। मैं उस समय यदि उनका पीछा करता तो सम्पूर्ण पाण्डवी सेना व्यूह के भीतर प्रवेश करके उसे नष्ट भ्रष्ट कर देती । वह देखो इस समय भी भीम, सात्यकि, धृष्टद्युम्न और स्वयं महाराज युधिष्ठिर की सेना किस वीरता से हमारी सेना पर आक्रमण करके आगे जाने पर तुली हुई है। मैं उसे रोक रहा हूं, तुम यदि चाहो तो जाकर अर्जुन का सामना करके उसे अभिमन्यु की मृत्यु मरने पर विवश कर सकते हो।

सुयोधन—आचार्य्य जी ! आप क्रुद्ध न हों परन्तु मुझे सन्देह है कि जो योद्धा आप को, कृतवर्मा को, श्रुतायुध को, सुदक्षिण को,

शरुतायु को और अन्य सेनापतियों को परास्त करके आगे बढ़ सकता है, वह मेरे रोके रुक सकेगा ?

द्रोण—राजकुमार ! हृदय दुर्बल क्यों करते हो ? अर्जुन शूरवीर है पर अजेय नहीं । मैं वृद्ध हो गया, फिर भी उसे युद्ध में ललकार सकता हूं, तो क्या कोई कारण है कि तुम जो अभी युवक हो उसे युद्ध में परास्त न कर सको ? जाओ परमात्मा उसकी सहायता करते हैं जो स्वयं पर विश्वास करते हैं ।

सुयोधन—गुरुदेव ! आप सेनापति हैं, यदि आपकी यह आज्ञा है कि मैं अर्जुन का नाका रोकूं तो आज्ञा-पालन अवश्य है । आशीर्वाद दीजिये कि मैं शत्रु को नीचा दिखा कर आपके दर्शन करूं !

द्रोण—जाओ ! प्रसन्नतापूर्वक जाओ ! परन्तु ठहरो, मैं तुम्हें यह कवच पहना दूं ? इसे धारण करके तुम सुगमतापूर्वक अर्जुन का सामना कर सकते हो, अभी तक वह शस्त्र नहीं बना जो इस कवच को काट सके ।

× × ×

हाथियों की सेना को छिन्न-भिन्न करके यवन, पारद, शक, वाह्लीक, द्रविड़, पुण्डर, शूरवीरों को खंड खंड करके अर्जुन की वीर सेना आगे बढ़ी तो क्षेत्र शून्य था, क्योंकि रक्त में होली मचाते हुये इन शूरवीरों से दो-दो हाथ करना आज असम्भव था । मध्याह्न का सूर्य शिर पर पहुंच रहा था, पृथ्वी, आकाश ऋतु के ताप से तापमान हो रहे थे जबकि दूर फासले पर राज-

कुमार सुयोधन का स्वर्ण कवच जगमगाता हुआ दीख पड़ा। वह अपने व्यवहार से कौरवी सेना का उत्साह बढ़ाता हुआ सहस्रों हाथियों, अश्वारोहियों और पदातियों सहित बढ़ा आ रहा था। श्याम जी ने उसे आते देखा तो घोड़ों की बागें खींच लीं, ताकि वीर अश्व नूतन परीक्षा में पड़ने से प्रथम थोड़ा सुस्ता ले। रथ रुका तो उन्होंने नवागन्तुक शत्रु की ओर संकेत करके कहा:—अर्जुन पहचानते हो कौन आ रहा है ?

अर्जुन—(ध्यानपूर्वक देखकर) भली प्रकार पहचानता हूं। स्वयं राजकुमार सुयोधन आ रहे हैं, कि मंझधार में डूबती हुई कौरवी नैय्या को किनारे पर लगायें।

श्याम—इससे उपयुक्त अवसर फिर नहीं मिलेगा। यदि सुयोधन के साथ निपट लिया जाय तो सारा झगड़ा सुगमता पूर्वक समाप्त हो जाय।

अर्जुन—परमात्मा ने आज इसे मेरे सन्मुख स्यात् इसीलिये भेजा है, कि यह अपनी फैलाई हुई माया में आप ही फंस कर नाश हो जाय।

× × ×

कौरवी सेना ने इतने आवेश से आक्रमण किया कि अर्जुन और उसकी सेना चारों ओर उड़ते हुये बाण-रूपी मेघों में अदृष्ट हो गई। स्वयं राजकुमार सुयोधन धनुष को ऐसे हिलाते थे कि दर्शकों के मुख से वाह वाह निकली जा रही थी। वह एक ही समय में बाण, तलवार और गदा से ऐसे युद्ध कर रहे थे जैसे चार

हाथों वाला कोई मनुष्य हो जो एक ही समय में सारे हाथों से शस्त्र चला रहा हो। श्याम जी उसके हस्तलाघव को भली प्रकार देख कर यह अनुभव कर रहे थे कि अर्जुन के शस्त्र कुछ सुस्त से चल रहे हैं। यह देखकर उन्होंने रथ को नचाते हुये कहा—"अर्जुन! क्या थक गये? अभी तो बहुत कार्य शेष है।"

अर्जुन—न तो थका हूँ, न ही सुयोधन के आक्रमण की तीव्रता से घबरा रहा हूं, परन्तु............

श्याम—परन्तु क्या?

अर्जुन—सुयोधन के शरीर के कवच को देख रहा हूं।

श्याम—ओ३म्!

अर्जुन—मैं इस कवच से भली प्रकार परिचित हूं। गुरुदेव ने सुयोधन को मेरे सन्मुख इसे पहना कर भेजा है, क्योंकि इस का छेदन शस्त्र की शक्ति से परे है। स्वयम् मेरे शरीर पर भी इसी प्रकार का कवच काम दे रहा है।

श्याम—फिर?

अर्जुन—मैं अभी-अभी सुयोधन और आचार्य्य दोनों को दिखा दूंगा कि मांगे तांगे पंख लगा कर काग मयूर नहीं बन सकता।

यह कह कर उन्होंने गाण्डीव पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई जिसमें से छोटे-छोटे भयङ्कर बाणों की एक बौछाड़ निकली, उन्होंने सुयोधन के हाथों के दस्तानों को काट कर नखों से मिले हुए मांस में चुभ कर हाथों से शस्त्र छुटवा दिये। सुयोधन का हाथ रुका, परन्तु

शत्रु ने उसे अधिक समय न देते हुये दूसरी बाढ़ मारी, जिसने नखों के कोमल भाग को रक्तमय करके उसे क्षेत्र छोड़ने पर विवश कर दिया। उस समय अर्जुन ने जोर से शंख बजाते हुये कहा—"भारत सम्राट्! क्षत्रिय के लिये रणक्षेत्र से भागना मृत्यु से अधिक है। आओ इसी क्षेत्र में, इसी आकाश के नीचे, भूत और भविष्य के समस्त लेखे चुका लें।"

सुयोधन ने फिर कर देखा, उस समय उसका मुख क्रोध से रक्तवर्ण हो रहा था, परन्तु पृष्ठ मोड़ते ही गाण्डीव की टंकार फिर वायु में गूंजी और उसने देखा कि नवीन प्रकार के शस्त्र उसे बेंधने के लिये स्थान ढूंढ रहे हैं।

× × ×

एक ओर अर्जुन सुयोधन के आक्रमण की रोक-थाम में लगे थे, दूसरी ओर सम्पूर्ण पाण्डवी सेना उसकी सहायता के लिये अधीर होकर आवेश से बढ़ रही थी; परन्तु वृद्ध सेनापति द्रोण उसके मार्ग में लोह प्राचीर की भांति खड़ा था। वह यत्न करती थी कि कौरवी व्यूह को तोड़ कर मार्ग बनाये; परन्तु पर्वत से टकराते हुए सागर की भांति बार-बार पीछे हट जाती थी। इन बार-बार के आक्रमणों का परिणाम यह हुआ कि कौरवी सेना में छिद्र के चिह्न दीखने लगे और वह कृतवर्मा, जलसन्ध और द्रोणाचार्य तीन सेनापतियों के नेतृत्व में बटती हुई दृष्टिगोचर हुई। पाण्डवी सेना के सेनापति धृष्टद्युम्न उस समय अग्नि रूप हो रहे थे, उन्होंने शत्रु सेना को चीरते हुये अपना रथ आचार्य जी के रथ

से जा भिड़ाया। आचार्य जी के रथ के रक्तवर्ण घोड़े धृष्टद्युम्न के रथ के कपोत वर्ण अश्वों से ऐसे मिल गये मानो सन्ध्या समय नील मेघ लोहित आकाश से मिल रहे हों। धृष्टद्युम्न खड्ग हाथ में लेकर लपका और लोग यह देख कर विस्मित हो गये कि वह अपने रथ के जूए पर पाँव रखता हुआ आचार्य जी के रथ पर पहुँच गया। आचार्य जी भयङ्कर स्थिति में थे, परन्तु उनके मुख की मुस्कान बता रही थी कि वह नवयुवक प्रतिद्वन्दी की गति का आनन्द ले रहे हैं। उन्होंने अपने धनुष को उठा कर उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाई और उसमें से निकला हुआ एक बाण निकट पहुं-चते हुए धृष्टद्युम्न के हृदय को बेंधने को था कि यादव शूरवीर सात्यकि के धनुष से छूटे हुये एक बाण ने उसे काट कर दो टुकड़े कर दिये। आचार्य जी ने दूसरा लक्ष्य धृष्टद्युम्न के घोड़ों को बनाया, तत्पश्चात् उसके सारथी के प्राण लिये।

अपने को रथ-हीन देख कर धृष्टद्युम्न एक छलांग के साथ सात्यकि के रथ पर आसीन हो गया। आचार्य जी अब सात्यकि की ओर झुके और इन दोनों धनुर्धारियों में वह युद्ध आरम्भ हो गया जिसे जनता ने कम ही देखा था। आचार्य जी पुराने घाघ थे, धनुर्विद्या उनके सन्मुख हाथ बांधे खड़ी थी, उस समय वह युद्ध-कौशल में सर्वोच्च शिखर पर थे, उनके सन्मुख सात्यकि का ठहरना साधारण बात न थी। परन्तु इस युद्ध ने बता दिया कि यद्यपि आचार्य युद्ध प्रवीण थे, परन्तु उनका शरीर उस नव योद्धा की भांति स्फुर्त्तिमान नहीं था। उनका यत्न था कि अपने किसी

दाव-पेच से अपने शिष्य के शिष्य* को नीचा दिखायें, पर सफलता न हुई। यह देख कर उन्होंने रथ को दूसरी ओर फेर कर पाण्डवी सेना की एक अन्य टुकड़ी पर हल्ला बोल दिया। सात्यकि स्वयम् अर्जुन की सहायता को पहुंचने के लिये अधीर हो रहा था, आचार्य जी के दूसरी ओर फिरते ही उसने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दे दिया।

× × ×

कौरवी सेना का एक भारी भाग पाण्डवी सेना से युद्ध निमग्न था, इसलिये अर्जुन की सेना की रोक-टोक ढीली पड़ गई और उसने अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने का यत्न किया; परन्तु अभी थोड़ी ही दूर गये थे कि अवन्ति नरेश विंद और अनुविंद ने मार्ग रोक लिया। अर्जुन उन्हें आते देख कर भन्नाये सिंह की भान्ति लपका। विंद ने उसे इस प्रकार लपकता देख गदा का एक भरपूर वार श्याम जी पर किया। उस समय कोई अन्य होता तो हड़बड़ा कर गिरता, परन्तु श्याम जी के मुख की आकृति को देखने वाले कह सकते थे कि उन्होंने इसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। पर उन पर वार होते देख कर अर्जुन का क्रोध अन्तिम सीमा पर पहुंच गया और उसने गाण्डीव को चक्र देते हुये वह बाण वर्षा की कि कौरवी सेना के यह दोनों नायक अल्पकाल में ही अपनी सेनाओं सहित धराशायी हो गये।

× × ×

---

* सात्यकि ने अस्त्र विद्या की शिक्षा अर्जुन से ग्रहण की थी।

सूर्य देव मध्याह्न से उतर कर अस्ताचल की ओर जा रहे थे, श्याम जी ने अनुभव किया कि उनकी सेना के घोड़े प्रातः से इस समय पर्य्यन्त के संघर्ष के कारण थके से प्रतीत होते हैं, इसलिये यदि हो सके तो उन्हें विश्राम का अवसर देना चाहिये। शूरवीर अर्जुन भी यही सोच रहे थे और उन्होंने श्याम जी से कहा— "भगवन्! घोड़ों की गति ढीली पड़ रही है। प्रातः से यह भारी संकट में कार्य कर रहे हैं और अभी इनके सन्मुख विकट कार्य पड़ा है, यदि इन्हें थोड़ा विश्राम करने का अवसर दिया जाय तो हम सब के लिये उपयोगी होगा।"

श्याम—बात तो ठीक है पर यदि शत्रु ऐसा करने का अवसर दें।

अर्जुन—आप निश्चिन्त रहें। आपके अनुग्रह से हमारे दिव्यास्त्र शत्रु को समीप नहीं फटकने देंगे।

× × ×

सारी सेना ने घोड़े खोल दिये। उन्हें मल-दल कर उनकी थकान दूर की। दाना और नहारी खिलाई। जल पिलाया। रथी और महारथी कमरें खोल कर कुछ काल विश्राम करने को पृथ्वी पर लेट गये। शत्रुओं ने उन्हें इस प्रकार लेटा देख अवसर उपयुक्त समझा और चारों ओर से काले-काले मेघों की भांति उमड़ कर उनके विनाश का यत्न किया; परन्तु आश्चर्य से चकित रह गये जब निकट पहुँचते ही एक झटका सा लगा और आक्रमणकारी हाथी घोड़े और अश्वारोही निश्चेष्ट होकर गिरे। दूसरा रेला फिर आया, उसकी दशा प्रथम से भी बुरी हुई, परिणाम यह हुआ कि चारों

ओर त्रास फैल गया और आक्रमणकारी शिर पर पाँव रख कर चारों ओर भाग गये, जिससे कि उस अदृष्ट शक्ति से जो अर्जुन के सेना की रक्षा कर रही थी सुरक्षित हो जांय।

× × ×

गाण्डीव का घोष मौन हुआ। शूरवीर विश्राम करने लगे तो यद्यपि चारों ओर भगदड़ मची हुई थी फिर भी यह अनुभव होता था कि निस्तब्धता छा रही है। वायु में बाण और भाँति-भांति के शस्त्र उड़ रहे थे, परन्तु उस शब्द के मूक होने से जो गाण्डीव और पंचजन्य में से निकलता था, यही प्रतीत होता था कि पृथ्वी और आकाश स्तब्ध हो गये हैं। योद्धाओं ने इसे अनुभव किया, भारत के भावी सम्राट् महाराज युधिष्ठिर के हृदय पर यह अनुभव होते ही एक धक्का सा लगा। उन्हें ज्ञात था कि अर्जुन और श्याम अपने चुने हुये शूरवीरों सहित शत्रु के व्यूह को भेद कर बहुत दूर चले गये हैं। उन्हें यह भी ज्ञात था कि अपनी सेना यत्न करने पर भी उनका साथ नहीं दे सकी। इसलिये जिस समय वायुमण्डल में निस्तब्धता सी प्रतीत हुई, तो उनका रंग पीला हो गया और मुख विवर्ण हो गया, हृदय ने कहा कि अभिमन्यु की भांति अर्जुन भी शत्रु का शिकार हो गया!

यह विचार अति शीघ्र इतना बलवान हो गया कि उन्होंने निश्चय किया कि भले ही कुछ हो सत्य को खोजने में पूर्ण प्रयत्न होना चाहिये। यह सोचकर शूरवीर सात्यकि को बुलाने की आज्ञा दी। निमिष मात्र में सात्यकि महाराज के सन्मुख उपस्थित हो

गये। उन्हें देख कर महाराज ने कहा "सात्यकि भाई! तुम्हें ज्ञात है कि युद्ध की इस भीषणता में मैंने तुम्हें क्यों बुलाया है?"

सात्यकि—जब तक महाराज श्रीमुख से आज्ञा न दें, मैं यह कैसे जान सकता हूँ?

युधिष्ठिर—क्या तुम अनुभव करते हो कि इस समय वायु-मण्डल में निस्तब्धता छाई हुई है? यद्यपि दोनों ओर की सेनाएं युद्ध में प्रवृत्त हैं तथापि उनके भीतर वह जोश नहीं जो अब से कुछ काल पूर्व था। कारण इसके अतिरिक्त और कोई नहीं कि गाण्डीव का शब्द सुनाई नहीं देता और पंचजन्य शान्त हो गया है।

सात्यकि—महाराज सत्य कह रहे हैं, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि गुरुजी और श्याम जी आपत्ति-ग्रसित हैं। सम्भव है वह अति दूर निकल गये हों, जहाँ से गाण्डीव और पंचजन्य का शब्द यहाँ नहीं पहुंचता।

युधिष्ठिर—सम्भव है ऐसा ही हो, परन्तु सत्य की खोज आवश्यक है और मैं तुम्हें इस कार्य पर नियुक्त करता हूँ। तुम से अधिक और कोई शूरवीर इस समय ऐसा नहीं जो इसे पूर्ण कर सके।

सात्यकि—परन्तु............

युधिष्ठिर—कहो, क्या कहते हो?

सात्यकि—महाराज को स्यात् यह ज्ञात नहीं कि गुरुदेव जाते समय भगवान् के शरीर की रक्षा का भार मुझ पर डाल गये थे, क्योंकि आचार्य जी की प्रतिज्ञा है कि महाराज को पकड़ कर

सुयोधन के सुपुर्द करेंगे।

युधिष्ठिर—(हंसकर) सात्यकि ! मैं आचार्य जी की प्रतिज्ञा को भूला नहीं हूं, परन्तु यदि अर्जुन और श्याम जी पर कोई आपत्ति आ गई तो युधिष्ठिर स्वयम् को कभी क्षमा नहीं करेगा। इसलिये जाओ परमात्मा तुम्हारी भुजाओं में बल देंगे। तुम गुरु की सहायता करते हुये आचार्य-ऋण से मुक्त होने में सफल होगे। युधिष्ठिर की ओर से निश्चिन्त होकर जाओ, वह अपनी रक्षा करने में समर्थ है। यदि वह इतनी सेना होते हुये भी आचार्य जी के हाथों में पड़ सकता है तो उसकी रक्षा व्यर्थ है।

सात्यकि—महाराज की आज्ञा शिरोधार्य है, यदि यह शरीर उसे पालन करके और गुरुजी के चरणों तक पहुंच कर उनकी कोई सेवा करने में सफल हो सके तो और क्या चाहिये ?

युधिष्ठिर—ईश्वर उनकी सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं। मैं वृकोदर भीम को बुला रहा हूँ, वह तुम्हारी पृष्ठ पर रहेंगे। यदि तुम दोनों शूरवीर शत्रु सेना में से मार्ग बना कर अर्जुन और श्याम जी तक पहुँच जाओ तो आज की विजय अवश्य हमारी है।

जो सेवा सात्यकि को कही गई थी साधारण न थी, उसे पूर्ण करने में यदि कोई मनुष्य शिर और धड़ की बाजी लगा सकता था तो केवल वह ही। अर्जुन उसके गुरु थे, और श्याम जी के लिये उसकी भक्ति पूजा से भी आगे बढ़ चुकी थी। इन दोनों की धूलि की ओर भी कोई देखता तो वह सदैव उसके नेत्र निकालने

को तत्पर थे और आज तो वह संकट में थे। इस समय तक भी उसका यत्न यही था कि पाण्डवी सेना को कौरव सेना रूपी सागर में से निकाल कर अर्जुन और श्याम जी तक पहुँच जाय, और अब तो यह ड्यूटी (Duty) विशेषकर उसके ऊपर थी। इसलिये आदेश मिलते ही उसने अपने चुने हुये शूरवीरों को नवीन ढंग से ठीक-ठाक किया, युद्ध-सामग्री की देख-भाल की, और रणबांकुरों से बोला, "शूरवीरो! भारत-सम्राट् की आज्ञा है कि जैसे भी हो शत्रु की सेना को चीर कर गुरुदेव और श्याम जी के निकट पहुँच कर उनकी सहायता करो, इतनी दीर्घ सेना में से यह सेवा केवल आप लोगों को सौंपी गई है, इसे सौभाग्य समझ कर पंख लगा कर उड़ो और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि शत्रु चाहे कितना ही यत्न करे तुम्हारी गति में अवरोध उत्पन्न नहीं कर सकता।

आज्ञा की देर थी चारों ओर से बागें उठीं, सैंकड़ों रथों के ओजस्वी अश्व शत्रुओं के वक्ष पर पांव रखते हुये आगे बढ़े। आचार्य द्रोण ने उन्हें रोका, कृतवर्मा ने टोका, काम्बोज और वाह्लीक शूरवीरों ने सामना किया, परन्तु सात्यकि उस समय द्वितीय अर्जुन बन रहा था। उसका मार्ग रोकना असम्भव था। वह चारों ओर मारता-काटता अपने लिये मार्ग बनाता चला जा रहा था। जब उसकी दृष्टि अर्जुन के रथ पर पड़ी जो भूरिश्रवा, शल्य, कर्ण, वृखसेन, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और जयद्रथ सात सेनापतियों की सेना के भीतर घिरा हुआ वीरता दिखा रहा था, तो उसने एक जोरदार नारा लगाया, जिसे सुनते ही श्याम जी ने

पंचजन्य को इस जोर से बजाया कि मीलों पर्य्यन्त कुरुक्षेत्र स्थल दहल उठा। पंचजन्य का शब्द सुन कर वृकोदर भीम ने जो अपने शूरवीरों सहित सात्यकि के पीछे-पीछे सुयोधन के कई भ्राताओं और वीर सेनापतियों के रक्त से हाथ रंगता बढ़ा आ रहा था एक भीषण नाद किया, यह इस बात का द्योतक था कि अर्जुन और श्याम सुरक्षित हैं।

× × ×

युद्ध का केन्द्र परिवर्तित हो गया। अर्जुन, श्याम और उनके साथी शत्रु को नाकों चने चबवा रहे थे, सात्यकि और भीम की शक्तियों को अपने साथ सम्मिलित देख कर उनके साहस बहुत बढ़ गये, और उन्होंने शत्रु पर इस जोर से आक्रमण किया कि उसे पीछे हटते ही बनी; परन्तु आचार्य्य द्रोण समय को पहचानते थे, उन्हें ज्ञात था, उन्हें ही नहीं दोनों सेनाओं के एक एक सेनानी को यह ज्ञात था कि उस समय से लेकर सूर्यास्त तक का समय कितना अमूल्य है? क्योंकि शूरवीर अर्जुन की प्रतिज्ञा प्रत्येक के श्रोत्रों में गूंज रही थी। राजकुमार सुयोधन और उनके सेनापति जानते थे कि यदि वह कुछ घण्टे और जयद्रथ की रक्षा में सफल हो गये तो न केवल आज का ही युद्ध वरन् सदैव के युद्ध का अन्त हो जायेगा। इसलिये उन्होंने समस्त सेना को एकत्र करके अर्जुन के सन्मुख ला खड़ा किया। दूसरी ओर शकट व्यूह को टूटता देखकर महाराज युधिष्ठिर और उनके सेनापति धृष्टद्युम्न ने अपना ध्यान व्यूह के पृष्ठ भाग की ओर किया कि आव-

श्यकता पड़ने पर शत्रु को पीछे से भागने का समय न मिले।

युद्ध प्रचण्ड हो गया। शूरवीर वीरता के मद में उन्मत्त हो गये। ईश्वर जाने कौन-कौन से और किस-किस प्रकार के अस्त्र-शस्त्र उनके हाथों से छूट कर शत्रुओं के शरीर को बेंधने लगे? पृथ्वी पर, वायु में, आकाश पर, जिधर दृष्टि जाती थी इन अस्त्र-शस्त्रों के कारण अन्धकार मचा हुआ था, जिसमें अपने और पराये को पहचानना असंभव था। सहसा अर्जुन की सेना में एक नवीन प्रकार के अस्त्र के चलने का शब्द हुआ। तत्पश्चात् चारों ओर आंधी के चलने का दृश्य बंध गया। पाण्डवी सेना के शस्त्र इस आंधी के वेग से द्विगुण शक्ति से शत्रु के शरीर में प्रवेश होने लगे और शत्रु के नेत्र धूलि और मिट्टी के कारण बंद होने लगे। यह वारुण अस्त्र था।

शत्रु अभी इस अस्त्र का उत्तर दे न पाया था कि अर्जुन ने एक और दिव्य अस्त्र छोड़ दिया, यह इन्द्र अस्त्र था। इसने गाण्डीव में से अग्नि बाणों की वर्षा करके चारों ओर अग्नि फैला दी। आचार्य्य जी ने इस भयंकर अस्त्र का उत्तर देने का यत्न किया, परन्तु अभी अर्जुन को लक्ष्य न बना सके थे कि श्याम जी उसके रथ को लिये हुए सिन्धी सेना के भीतर प्रविष्ट हो गये।

शूरवीर अर्जुन के नेत्र व्यग्रतापूर्वक अपने लक्ष्य को ढूंढ रहे थे। जब उसे सिन्धी सेना के सेनापति के रथ पर सूअर की दुम का झंडा लहराता हुआ दीख पड़ा तो उसके क्रोध की सीमा न रही।

उसने बाण-वर्षा से ध्वज को उखाड़ कर पृथ्वी पर फेंक दिया, और जयद्रथ के सारथी को लक्ष्य बनाकर उसके घोड़ों को भी धराशायी कर दिया। दोनों सेनाएं उसका हस्तलाघव देखकर विस्मित थीं; परन्तु जब श्याम जी ने रथ को आगे बढ़ाया तो टूटे हुये रथ के मरते हुये सारथी के मुख से ज्ञात हुआ कि यह केवल एक धोखा था, जयद्रथ उस रथ पर आसीन ही नहीं था। श्याम जी ने घोड़ों की गति को धीमा करते हुये अर्जुन से कहा— "अर्जुन! तुम्हारे दिव्य अस्त्रों ने हम लोगों को यहां पहुंचा दिया, परन्तु शत्रु कहां है? (पश्चिम की ओर निहारकर) देखो! सूर्यदेव कितनी शीघ्रता से अस्ताचल की ओर जा रहे हैं। यदि हम शीघ्र जयद्रथ को ढूंढने में सफल न हो सके तो आज का सारा परिश्रम व्यर्थ जायेगा!!

अर्जुन ने मुड़कर पश्चिम की ओर देखा, तो अवाक् रह गया। उस समय उसकी जिह्वा से निकला "सूर्यदेव! क्या तुम भी शत्रुओं का साथ देने लगे? नहीं नहीं, श्याम जी! वह देखो आकाश में (लालिमा की ओर संकेत करके) अभिमन्यु का रक्त प्रतिकार के लिये पुकार रहा है। इस शरीर में जीवन रहते उस पुकार का उत्तर अवश्य दिया जायेगा।

आंधी का वेग बढ़ गया और उसके साथ छोटे-छोटे मेघखंड आकाश में दीख पड़े। अल्पकाल में ही दोनों सेनाओं ने देखा कि श्याम वर्ण मेघ सायं की लालिमा और अस्त होते हुये सूर्य दोनों को हड़प कर रहे हैं। अल्पक्षण और व्यतीत हुये, अंधकार

के अधिक प्रगाढ़ होने के चिन्ह दीख पड़े। जिसके परदे में आकाश पर तारागण दृष्टिगोचर होने लगे।

अर्जुन क्रोधावेश में अपने को भूलते हुये प्रत्येक ओर विनाश का सामान फेंक रहे थे। पाण्डवी सेना दांत किटकिटा कर अन्तिम आक्रमण में अपना सारा यत्न लगा रही थी, जब चारों ओर अन्धकार फैलते और तारों का मुख देखते ही कौरवी सेना में जयध्वनि होने लगी। उस समय अर्जुन के श्रोत्रों ने यह शब्द सुने "वीरों का वचन उनके जीवन के साथ है। अर्जुन! प्रतिज्ञा को स्मरण कर, और चिता में जल कर भस्म हो जा!"

अर्जुन के नेत्र शब्द की ओर मुड़े, तो उसके विस्मय की सीमा न रही। स्वयं जयद्रथ उसे चिता में जल कर मरने का आदेश दे रहा था।

"क्या सत्य ही सूर्यदेव अस्त हो गये?" कहते हुये अर्जुन ने पश्चिम की ओर देखा तो श्याम जी ने कहा "जयद्रथ की मृत्यु के लिये यही समय निश्चित है। सावधान! यह खो न जाये! सूर्यदेव अभी अस्त नहीं हुये।"

"वह देखो सूर्यदेव मेघों को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं" कहते हुये शूरवीर अर्जुन ने एक भयंकर दिव्य अस्त्र को (जिसे वज्र अस्त्र का नाम दिया गया है) गाण्डीव पर चढ़ाया और अभी कौरवी सेना को ज्ञात भी न हुआ था कि जयद्रथ का शीश रहित शरीर वायु में खड़ा दीख पड़ा। शिर धड़ से अलग हो कर दूर कहीं जा पड़ा था।

उसी समय भगवान अंशुमाली की अन्तिम रश्मियां अन्धकार को परास्त करके चारों ओर चमकने लगीं, जिसे देखकर श्याम जी ने पंचजन्य को अधरों से लगाया।

साथ ही अर्जुन के भयंकर शंख देवदत्त का शब्द आकाश में गूंजा। यह सुनकर भीम, सात्यकि, युधामन्यु और उत्तमौजा ने समझ लिया कि जयद्रथ अब भूमि तल पर नहीं रहा।

× × ×

इधर अर्जुन जयद्रथ से युद्ध कर रहे थे, उधर भूरिश्रवा और सात्यकि में भीषण युद्ध आरम्भ हो चुका था। तीसरी ओर कर्ण वृकोदर भीम के सारथी को मार कर उसे रथहीन कर रहा था। पंचजन्य के शब्द का वायुमण्डल में गूंजना था कि इन दोनों वीरों के साहस सहस्र गुणा बढ़ गये और अभी यह शब्द वायु-मण्डल से लुप्त नहीं हुआ था कि भूरिश्रवा का शरीर प्राण रहित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और सात्यकि भीम को अपने रथ पर बिठा कर कर्ण का सामना करने को बढ़ गया। उस समय शौर्य्य-मद में उन्मत्त होकर अर्जुन ने श्याम जी से कहा, "श्याम जी! कर्ण भयङ्कर अस्त्र-वर्षा कर रहा है, अपना रथ उसके सन्मुख ले चलिये, यह झगड़ा भी मिटाते चलें।" ठीक उसी समय कर्ण के हाथ से निकले हुए एक भीषण शस्त्र ने सात्यकि के घोड़ों और सारथी के प्राण लिये। श्याम जी सब कुछ देख रहे थे और उनके संकेत से दारुक उनके रथ को (जो इस समय पर्य्यन्त अर्जुन के रथ के साथ-

साथ चल रहा था) लेकर सात्यकि और भीम की सहायता को पहुँच गया।

सात्यकि और भीम को उसमें आसीन देख कर श्याम जी ने कहा, "सात्यकि और भीम कर्ण के लिये पर्याप्त हैं। तुम्हें उससे उलझने की आवश्यकता नहीं। उसका अन्त अभी कुछ दूर है।"

× × ×

अल्पकाल में सूर्य्यदेव पश्चिम में अस्त हो गये और श्याम जी ने घोड़ों की बाग मोड़ी। युद्ध-क्षेत्र में शवों के ढेर लग रहे थे, जिनमें से रथ का चलना कठिन हो रहा था। कहीं बृहदकाय हाथी रक्त में लिथड़े पड़े थे, कहीं टूटे हुए रथ और मृत अश्व मार्ग रोक रहे थे। जिधर दृष्टि जाती थी मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथों के अतिरिक्त यदि कोई वस्तु दृष्टिगोचर होती थी तो वह सहस्रों प्रकार के अस्त्र-शस्त्र थे, जो आज के युद्ध में सारा दिन उड़ते रहे थे।

रक्त के इस सागर को फाँद और बची-खुची कौरवी सेना को मार्ग से हटाते हुए विजयी वीर लौटे तो महाराज युधिष्ठिर मार्ग देख रहे थे। उन्हें देखते ही दोनों मित्र रथ से कूद कर चरणों में गिर पड़े। ज्येष्ठ भ्राता ने यह शिष्टाचार देखा तो हृदय उमड़ आया, और दोनों को उठा कर हृदय से लगा कर बोले, "धन्य हो प्रभु! धन्य हो देवों के देव! आपने आज इनकी प्रतिज्ञा पूर्ण करके हमें पुनः जीवन प्रदान किया।"

अर्जुन—(गद्गद् स्वर से) भ्राता! यह सब श्याम जी की

कृपा का फल है। यदि आज इनके स्थान पर कोई अन्य होता तो इस कार्य्य की पूर्ति असम्भव थी।

युधिष्ठिर—निश्चय जिसकी पृष्ठ पर श्याम जी का वरद हस्त हो उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं।

श्याम—यह सब आप जैसे महात्मा के तपोबल का चमत्कार है। शत्रु आपकी क्रोधाग्नि में स्वयं जल कर भस्मसात् हो रहे हैं।

घटोत्कच का बलिदान

"गुरुदेव ! अर्जुन प्रतिज्ञा पूर्ण करने में सफल हो गया ! जयद्रथ इस जगत में नहीं रहा !!" भर्राये हुए स्वर में सुयोधन ने आचार्य्य द्रोण को सम्बोधन करके कहा।

द्रोण—दैव की गति अपार है ! उसे रोकने की शक्ति मनुष्य में नहीं।

सुयोधन—इतना विस्तृत व्यूह हो ! उसके द्वार की रक्षा आप कर रहे हों ! उसमें कोई मनुष्य प्रवेश कर सके यह मेरे समान अल्प-बुद्धि मनुष्य की समझ से परे है।

द्रोण—हम लोगों ने यत्न किया, जितना सम्भव था उससे अधिक यत्न किया, आपने स्वयं अर्जुन का सामना किया। कर्ण, कृपा, अश्वत्थामा, शल्य, भूरिश्रवा, वृषसेन, जयद्रथ, कृतवर्मा और अन्य शूरवीरों ने अपनी-अपनी शक्ति की परीक्षा कर ली। अब कौनसी बात रह गई जो मनुष्य की समझ से परे है ?

सुयोधन—आपका सामना करने की शक्ति अर्जुन तो एक ओर देवताओं में भी नहीं, यह जगद्विख्यात है। यदि आप उसे व्यूह के द्वार से न लांघने देते तो असम्भव था कि वह व्यूह को छिन्न-भिन्न कर सकता; परन्तु आपको जयद्रथ के जीवन और मेरी प्रतिष्ठा की अपेक्षा अर्जुन अधिक प्रिय है, इसलिये आपने

उसे रोकना उचित न समझा। जब एक बार वह व्यूह में प्रविष्ट हो गया तो कौन उसका मार्ग रोक सकता था?

इन शब्दों ने आचार्य्य जी के रक्त में जोश उत्पन्न कर दिया। उनके सामने उन पर बेईमानी का दोष लगाया जा रहा था। यह देख कर उनके नेत्रों में रक्त उतर आया; परन्तु उन्होंने भावावेश को दबाते हुए कहा:—

आचार्य्य—राजन्! सूर्योदय से लेकर इस समय पर्य्यन्त शत्रु के साथ लोहा लेने के पश्चात् यह शब्द सुनने अति कठिन हैं। निस्सन्देह तुम विस्मरण कर रहे हो कि द्रोण नवयुवक नहीं, उसके हाथ-पाँव में वह स्फूर्ति और चंचलता नहीं जो युवावस्था में प्राकृतिक है। तुम इस बात की ओर से भी नेत्र मूंद रहे हो कि अर्जुन युवक है, वनवास के द्वादश वर्ष जिनमें तुमने उसे देश से निर्वासित करके यह समझ लिया था कि वह वन के जीव-जन्तुओं का खाद्य बन जायगा, वह वर्ष उसने शयन में नहीं व्यतीत किये। उस अवसर में उसने जगत-भर के प्रसिद्ध धनुर्धारियों की सेवा करके धनुर्विद्या के सम्बन्ध में जो कुछ सीखने योग्य था, सीख लिया है। यही नहीं उसने अनेक प्रकार के नवीन दिव्य अस्त्र आविष्कार कर लिये हैं जिनका हम लोगों को कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं आया। मखमल और रेशम में विचरते हुए तुम लोग जिस समय आनन्द मना रहे थे, अर्जुन और भीम, नकुल और सहदेव वन की कन्दराओं में नवीन अस्त्र बनाने में लग रहे थे। तुम युधिष्ठिर को 'महात्मा' कह कर उसकी हँसी करते

रहे हो। इतने दिवस के युद्ध ने मुझ पर यह अंकित कर दिया है, कि वह भयङ्कर शक्ति का केन्द्र बन गया है, जिसके सम्मुख खड़ा होना विसव में आये हुए समुद्र के सन्मुख पग जमाने से कम नहीं। इन बातों का ज्ञान तुम्हें उसी दिन हो जाना चाहिये था जिस दिन भीष्म युद्ध-भूमि में गिरे थे। पर जिसने नेत्र होते भी न देखने की शपथ खाई हो उसे कौन दिखा सकता है ?

सुयोधन—गुरुदेव ! मैं आप पर दोषारोपण नहीं करता, यह भाग्य-चक्र है कि आप जैसे सेनापति के होते मेरी सेना के सेनापति चुन-चुन कर मारे जा रहे हैं। युद्ध में कितने योद्धा पाण्डवी सेना का सामना करते हुए भौतिक शरीर का त्याग कर गये हैं ? इसका ठीक ज्ञान तो जब होगा, होगा ही; परन्तु अनुमान है कि मेरे इकत्तीस भ्राता अकेले वृकोदर भीम ने वध किये हैं। यह श्रवण करना और श्रवण करके मौन रहना सुगम नहीं।

आचार्य—सत्य कहते हो राजन् ! परन्तु जिन पाण्डवों की पृष्ठ पर श्याम जी हों उन्हें परास्त करना भी तो सुगम नहीं। भीम को क्षेत्र में ललकारा जा सकता है, और स्यात् अर्जुन का भी सामना किया जा सकता है परन्तु मुझे तुम्हारी सारी सेना में एक व्यक्ति भी ऐसा दीख नहीं पड़ता जिसे संसार के उस अद्वितीय व्यक्ति की तुलना में खड़ा किया जा सके। तुम ने आज मुझ पर जो दोष लगाया है उसे अपने रक्त से धोने के लिए जाता हूं, निश्चय रखो जब तक शत्रु को परास्त न कर

लूंगा तुम्हें मुख नहीं दिखाऊंगा।

× × ×

महाराज युधिष्ठिर श्याम जी का धन्यवाद कर के सात्यकि और भीम का आलिङ्गन ही कर रहे थे, कि समाचार मिला कि रात्रि के अन्धकार का ध्यान न करके द्रोणाचार्य्य और सुयोधन ने पांडवी सेना पर हल्ला बोल दिया है और अन्धकार में ही भीषण युद्ध आरम्भ हो गया है। दिन भर के थकित सेनापतियों के शरीर में इस समाचार ने विद्युत् सी दौड़ा दी और अति शीघ्र वह सेना को ठीक-ठाक करके आगे बढ़े।

आचार्य के मन में सुयोधन के शब्द कण्टक की भाँति चुभ रहे थे। यद्यपि वह सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त पर्य्यन्त समर भूमि में सेना का नेतृत्व करते रहे थे, तथापि इस बात पर तुल रहे थे कि आगामी सूर्योदय से पूर्व पाण्डवी सेना का अन्त कर दें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह उचित-अनुचित प्रत्येक प्रकार के उपाय प्रयोग करने पर तुल रहे थे। उन के आक्रमण की तीव्रता अन्तिम सीमा पर पहुंच गई थी। उधर राजकुमार सुयोधन के नेत्रों के सन्मुख जयद्रथ की आकृति आकर प्रतिशोध के लिये पुकार रही थी, और वह चाहता था कि रात्रि के अन्धकार का लाभ उठा कर शत्रु का विनाश कर दे। इसलिये उस ने अपने सर्व सेनापतियों को आदेश दे रक्खा था कि कुछ भी हो युद्ध बन्द न हो जब तक दो टूक निर्णय न हो जाय।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उस ने स्वयं पाण्डवी सेना के

मर्मस्थल पर आक्रमण करके महाराज युधिष्ठिर को दो-दो हाथ करने पर विवश कर दिया। परन्तु जयद्रथ की मृत्यु और विजय के विचार ने पाण्डवी सेना का साहस बढ़ा रक्खा था, और वह दिन भर की थकान की उपेक्षा करके द्रोण, सुयोधन, कर्ण आदि कौरवी सेनापतियों को पीछे धकेले लिये जा रहे थे।

अल्पकाल में यह समाचार चारों ओर फैल गया कि भूरिश्रवा का पिता बाहलीक सात्यकि से प्रतिशोध लेने के यत्न में स्वयं काल के गाल में चला गया। सुयोधन के दस भ्राता वृकोदर भीम की गदा से यमलोक पहुंच गये, पठान सेना के सेनापति शकुनि के पांच भ्राता धराशायी हो गये! यह समाचार मिलते ही कौरवी सेना में भगदड़ मच गई, यह देख कर सुयोधन की क्रोधाग्नि और भड़क उठी। उस ने आचार्य्य द्रोण और कर्ण को सम्बोधन करके कहा—"जयद्रथ वध का प्रतिकार लेने के लिये आपने रात्रि-युद्ध आरम्भ किया था, परन्तु परिणाम क्या है? यही न कि शत्रु ने मेरी सेना के और कई शूरवीर यमलोक पहुँचा दिये हैं, और आप हाथ पर हाथ रक्खे कौतुक देख रहे हैं। यही साहस था तो उस समय इतनी डींगें क्यों मारी थीं? निस्सन्देह यदि मैं जानता कि आप में पाण्डवी सेना को रोकने की शक्ति नहीं तो इस युद्ध को आरम्भ ही न करता। यदि यह असत्य है तो वीरता दिखाइये कि जगत यह जान ले कि आप लोग कुछ करने में समर्थ हैं?

सुयोधन के शब्दों ने आचार्य्य और कर्ण पर वही प्रभाव डाला

जो भयङ्कर विषैले नाग पर लाठी का प्रहार करता है। उन्मत्त हो कर उन्होंने अपनी-अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। और अल्प-काल में उनके भीषण आक्रमणों ने पांडवी सेना के छक्के छुड़ा दिये। कर्ण उस समय नितान्त यमराज का रूप बन रहा था। उस के आक्रमण के सन्मुख खड़ा होना सुगम न था। इस युद्ध में प्रथम बार आज सुयोधन ने उसकी वीरता पर सन्देह प्रकट करके उसे चैलेंज किया था। और वह उसका प्रत्युत्तर उसी समय देने का यत्न कर रहा था। महाराज युधिष्ठिर ने यह देखा तो श्याम जी से बोले :—

"श्याम जी! ज्ञात नहीं इस समय कर्ण में कौन सी शक्ति कार्य कर रही है कि कोई योद्धा उसकी ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देख सकता? उसे रोकने का कोई उपाय होना चाहिये?

श्याम—(कुछ सोच कर) श्री महाराज! यह रात्रि-युद्ध है। अपनी सेना अन्धकार में युद्ध की अभ्यस्त नहीं। अर्जुन इस समय कर्ण से टक्कर लेने के लिये उद्यत है और मुझे अभी कह रहा था कि रथ कर्ण की सेना के मध्य में ले चलो; परन्तु मेरा विचार कुछ और है।

युधिष्ठिर—आप क्या विचार करते हैं?

श्याम—रात्रि-युद्ध में आर्य सेना इतनी प्रवीण नहीं जितनी राक्षस सेना। देखता हूं कि कर्ण के साथ राक्षस राजा अलमबुख और अलायुद्ध की सेना हमारी सेना पर आक्रमण कर रही है और युद्ध राक्षस युद्ध के रूप में परिवर्तित हो गया है।

युधिष्ठिर—यह सत्य है।

श्याम—हमारी सेना में इस समय वृकोदर भीम का सपूत घटोत्कच अपनी राक्षस सेना सहित न केवल कर्ण को वरन समस्त राक्षस सेना को परास्त करने में समर्थ है। रात्रि-युद्ध का भार उसके स्कन्धों पर डालिये।

इस सम्मति को पसन्द किया गया और घटोत्कच को बुला कर श्याम जी ने कहा "वत्स घटोत्कच! इस रात्रि-युद्ध को सफल करने का भार भारत सम्राट् तुम्हारे कन्धों पर डालते हैं। हमें ज्ञात है कि तुम्हारी सेना इस युद्ध को सुगमतापूर्वक जीत सकती है, इसलिये आज रात्रि के लिये तुम्हें सेनापति नियुक्त किया गया है।"

यह समाचार सुन कर घटोत्कच का मुख खिल उठा और उसने शिर झुका कर कहा "इस अधम को इतनी बड़ी सेवा सौंप कर महाराज ने उसका शीश उन्नत कर दिया है। शरीर में प्राण रहते मैं महाराज के विश्वास का पात्र बनने का यत्न करूंगा। सुनता हूं कर्ण इस समय समर-भूमि में ऊधम मचा रहा है। मैं स्वयम उसके सन्मुख जाऊंगा। महाराज! आप और पिता जी आचार्य्य जी और अन्य सेनापतियों को रोकने का प्रबन्ध करें फिर यदि कौरवी सेना का एक भी सेनानी जीवित बच रहे तो मुझे भीम-पुत्र न कहना।

× × ×

युद्ध का चित्र परिवर्तित हो गया, जब घटोत्कच ने वृहदकाय

राक्षसों सहित कर्ण को समर-भूमि में ललकारा। वह नवयुवक था, उसे अपनी शूरवीरता पर गर्व था, उसे इस बात पर अभिमान था कि वह पाण्डुवंश के नेत्रों का तारा है और आर्य और राक्षस जातियों के भीतर दोनों का सम्मेलन करने वाली एक बलवान शृंखला है, उसके भीतर जहाँ आर्य जाति की बुद्धि थी वहां राक्षस जाति की शूरवीरता माता की ओर से मिली थी। आज भारत के सम्राट् ने उसे अपनी सेना का नेतृत्व सौंपा था, यह विचार एक साधारण व्यक्ति का सिर फेरने के लिये पर्याप्त था, वह तो आर्य और राक्षस जाति का सर्वश्रेष्ठ उपहार था। उसके हृदय में उमङ्ग थी कि रात्रि में ही सम्पूर्ण कौरवी सेना को समाप्त करके भारत सम्राट् के सन्मुख जाऊं, उसकी सेना के समस्त युवक उसके संकेत पर बलि होने को उद्यत थे, इसलिये जब उसने उन्हें अपने सौभाग्य पर गर्व करते हुये सम्राट् का सन्देश सुनाया, तो उनके मुख वीरता से लाल हो उठे; और उन्होंने एक भीषण नाद करके शत्रु पर इस जोर से आक्रमण किया कि उसे पीछे हटना पड़ा। कुरुक्षेत्र स्थल, जहाँ रात्रि को शृगालों की कर्कश ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ सुनाई न देता था, उनके भीषण नाद से गूंज उठा। मित्र और शत्रु इस अद्वितीय युद्ध को देखने के लिये अंधकार में नेत्र फाड़ फाड़ कर अंधकार को चीरने का प्रयत्न करने लगे। दोनों सेनाओं में मशालें जल रही थीं, पर मशालची स्वयं शत्रु का लक्ष्य थे इसलिये अंधकार में प्रकाश को बनाये रखना असम्भव सा हो रहा था।

घटोत्कच की सेना को बढ़ते देखा तो अलम्बुख ने अपनी सेना सहित उसे रोकने का यत्न किया। अल्पकाल तक दोनों सेनाएं गुत्थम-गुत्था रहीं, तत्पश्चात् भयंकर नाद के साथ घटोत्कच अपने रथ से कूदा और अलम्बुख को उसके रथ से उठा कर उसने इस जोर से पृथ्वी पर दे मारा कि उसका शीश खण्ड खण्ड हो गया।

सरदार का अन्त देख कर अलम्बुख की सेना भाग निकली। उसे भागते देख कर अलायुद्ध की सेना आगे आई, पर उसकी दशा पहिली से भी बुरी हुई और अलायुद्ध के गिरते ही वह भी जिधर सींग समाया भाग गई।

सुयोधन की सेना में अब राक्षस सेना का कोई नेता नहीं रहा था, तो भी कर्ण का साहस कम नहीं हुआ। उसने धनुष को चक्र देते हुये इस जोर से बाढ़ मारी कि घटोत्कच का रथ और सारथी दोनों समाप्त हो गये। यह देख कर शूरवीर घटोत रथ से कूदा, साथ ही उस की सेना में मशाल बुझ गईं। कर्ण ने समझा कि राक्षसी सेना का अन्त हो गया; परन्तु अल्पकाल में उसकी सेना पर आकाश से शस्त्रों की वर्षा ने बता दिया कि राक्षस-युद्ध साधारण बात नहीं।

उस समय कर्ण की सेना से दिव्य अस्त्रों की एक बाढ़ चली जिसने आकाश और पृथ्वी पर प्रकाश फैला कर आकाश से आने वाले अस्त्रों को मूक कर दिया।

परन्तु राक्षस-युद्ध का अन्त नहीं हुआ था। इस भयंकर

रात्रि में योद्धाओं ने कभी तो यह देखा कि घटोत्कच रथ में आरोहित होकर नाना प्रकार के शस्त्रों से कौरवी सेना का विनाश कर रहा है, कभी मानव दृष्टि से ओझल होकर कौरव सेना के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण में युद्ध कर रहा है, कभी वायु में तैरता हुआ दृष्टिगोचर होता है, कभी वृक्षों को उखाड़ता और पर्वतों को उछालता आगे बढ़ रहा है। कौरवी सेना प्रत्येक प्रकार से कर्ण की सहायता कर रही थी पर घटोत्कच के युद्ध की रीति को समझना उस सेना के सेनापतियों के वश की बात न थी। वह क्षण भर में एक ओर एक रीति से युद्ध करता हुआ प्रतीत होता था, तो दूसरे क्षण में दूसरी ओर नवीन ढंग से कर्ण की सेना को तंग कर रहा दीखता था। शूरवीर कर्ण ने यथेष्ट समय तक उसके गुप्त अस्त्रों का सामना किया, परन्तु प्रतीत होता था कि जितना अन्धकार सघन होता जा रहा है राक्षसी माया नये रूप धारण कर रही है। सुयोधन आदि इस दृश्य को देखते थे पर इसका कोई उपाय उनकी बुद्धि में न आता था। राक्षसी सेना की तीव्रता अत्यन्त बढ़ गई, तो सुयोधन ने क्रोधित होकर कर्ण से कहा—"इस दुष्ट राक्षस से कब तक खेलते रहोगे? क्या सारी सेना को कटवा कर ही इस का अन्त करोगे?"

कर्ण—आप देखते हैं अपनी ओर से कौन सी त्रुटि रख रहा हूँ?

सुयोधन—वह अमोघ शक्ति जो इन्द्र ने तुम्हें दी थी किस समय के लिये रक्खी है?

कर्ण—अर्जुन................

सुयोधन—तुम उसे अर्जुन के लिये रक्खे रहो, इस अन्तर में सारी सेना का विनाश घटोत्कच के हाथों हो जायेगा।

कर्ण—यदि आप की यही इच्छा है कि उस[1] शक्ति का प्रयोग घटोत्कच पर ही किया जाये तो यह लो......

इतना ही कहना था कि घटोत्कच उस भयंकर शस्त्र के आघात से घायल होकर पृथ्वी पर गिर गया।

× × ×

घटोत्कच का पतन होते ही कौरवी सेना में जयध्वनि होने लगी, साथ ही पाण्डव सेना में हाहाकार मच गया। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सब के नेत्र अश्रु पूर्ण हो गये, परन्तु यह क्या......

श्याम जी के पंचजन्य का शब्द जोर से वायुमण्डल में गूंजा और उन्होंने उछल कर अर्जुन का आलिंगन किया और ताली पीट कर नाचने लगे।

---

1. यह अद्भुत शस्त्र कर्ण को इन्द्र से प्राप्त हुआ था। उस के आघात से कोई बच नहीं सकता था चाहे वह मनुष्य हो अथवा पशु-पक्षि। परन्तु कठिनाई यह थी कि दाता ने केवल एक ही शस्त्र कर्ण को दे कर उसे बनाने का रहस्य बताना मना कर दिया था। इस लिए वह केवल एक ही मनुष्य को प्राप्त बना सकता था।

अर्जुन का हृदय घटोत्कच के मृत्यु-संवाद से दुखी हो रहा था, वह इस असमय की रागनी को सुन कर विस्मित हो गया क्योंकि हर्ष से श्यामजी आपे से बाहर हो रहे थे। इस अवस्था में अर्जुन ने कहा 'श्याम जी! घटोत्कच के मृत्यु समाचार ने हमें दुखित कर दिया है। हमारी सेना भी शत्रु के सन्मुख से भाग रही है; परन्तु आप प्रसन्न हैं। निस्सन्देह आप जैसे गम्भीर पुरुष के धैर्य्य का छूटना समुद्र के शुष्क होने और सुमेरु पर्वत के चलने के समान है। क्या आप इस का कारण बताने की कृपा करेंगे?"

श्याम—बात ही ऐसी है।

अर्जुन—यदि गोपनीय न हो तो बता दीजिये।

श्याम—अर्जुन! घटोत्कच की मृत्यु नहीं हुई कर्ण स्वयम् मृत्यु के निकट पहुँच गया है। घटोत्कच ने आज इन्द्र की उस शक्ति को अपने शरीर पर लेकर तुम्हें जीवन प्रदान किया है। भ्राता! वह शक्ति इस प्रकार का भयानक शस्त्र था कि तुम्हारा गाण्डीव और मेरा सुदर्शन भी उसका सामना करने में असमर्थ थे। जब तक वह शक्ति कर्ण के पास रही मैंने तुम्हें उसके सम्मुख पड़ने नहीं दिया, किसी न किसी विधि से तुम्हें सर्वदा दूसरी ओर ले गया। अब जिस समय और जब इच्छा हो उससे भिड़ सकते हो। सत्य कहता हूं मैं तो तुम्हारी अब जीवित पुरुषों में गणना करने लगा हूं।

यह सुन कर समीप खड़े सात्यकि ने कहा—"कर्ण

ने आज पर्यन्त उस शक्ति का गुरुजी पर क्यों नहीं प्रयोग किया ?"

श्याम—सात्यकि ! मेरे गुप्तचर मुझे सर्वदा यह समाचार देते रहे हैं कि दुःशासन, जयद्रथ, शकुनि आदि परामर्शदाता मन्त्री प्रति रात्रि कर्ण को यह मन्त्रणा देते रहे हैं कि वह आगामी प्रातः उस शक्ति का प्रयोग करके अर्जुन का अन्त कर दे। इस कारण मेरा मुख्य कार्य यह रहा है कि कर्ण से उसकी मुठभेड़ न होने दूं। सत्य तो यह है कि इस चिन्ता में मुझे कई रात निद्रा भी नहीं आई। इसलिये आज जब वह शक्ति कर्ण से पृथक् हो गई है, मुझे इतना हर्ष हो रहा है। मैं समझता हूं आज अर्जुन मृत्यु के मुख से छूटे हैं। घटोत्कच का वध निस्सन्देह दुःखदायक है, परन्तु इस-रात्रि युद्ध में केवल वही सेनापति था जो कर्ण को इतना त्रस्त कर सकता था कि वह इस शक्ति का प्रयोग करने को विवश हो जाय। इसलिये मैंने उसे कर्ण का सामना करने के लिए भेजने का प्रस्ताव किया था। घटोत्कच, जैसा कि मुझे ज्ञात था, मारा जाना था और मारा गया है; परन्तु वह अपने बलिदान से अर्जुन को जीवन प्रदान कर गया है। इसलिये यह अवसर रोने और दुखी होने का नहीं, हर्षित होने और आनन्द मनाने का है।

सात्यकि और अर्जुन—निस्सन्देह आप का मस्तिष्क जहाँ तक कार्य करता है हमारी बुद्धि वहाँ नहीं पहुँचती।

× × ×

अर्ध रात्रि से अधिक समय व्यतीत हो चुका था, दोनों ओर के योद्धा दिन भर की थकावट से चूर होकर निद्रा में उन्मत्त से दृष्टिगोचर होते थे, इसलिये दोनों ओर के सेनापतियों ने एक ही विचार से प्रेरित होकर कुछ काल के लिये युद्ध स्थगित कर दिया और कुछ क्षणों में ही चारों ओर निस्तब्धता छा गई।

द्रोण-वध

"गुरुदेव ! समझ नहीं आती आपने युद्ध क्यों बन्द कर दिया ? यह ठीक है कि शत्रु थकित था, परन्तु वही तो उसके विनाश करने का समय था। स्यात् आपका हृदय अति कोमल हो रहा है, उसके भीतर शत्रु के लिये कोमल भाव सीमा का उल्लंघन कर रहे हैं, नहीं तो आपके इतने दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता होते हुए भी उसकी इतनी सेना युद्ध-भूमि में कैसे जीवित रह सकती थी ?" सेनापति द्रोण को सम्बोधन करके सुयोधन ने कहा।

द्रोण—राजन् ! तुम क्रोधाग्नि में जलते हुये विस्मरण कर रहे हो कि तुम किस से और क्या कह रहे हो ! मैं तुम से एक बार नहीं अनेक बार कह चुका कि मैं पचीस वर्ष का नवयुवक नहीं कि प्रातःकाल से लेकर अर्ध-रात्रि पर्य्यन्त युद्ध करते हुये थकूं नहीं। शेष रहा दिव्य अस्त्रों का प्रयोग, सो धर्म-युद्ध का नियम है कि अस्त्र अस्त्र-ज्ञाता पर फेंके जाँय, उन्हें न जानने वालों पर उनका प्रयोग मनुष्यों को भेड़-बकरी के समान काटने से कम नहीं; परन्तु प्रतीत होता है कि जीवन का थोड़ा सा समय जो शेष रह गया है उसमें तुम मुझ से यह अधर्म भी कराये बिना नहीं रहोगे। इस कारण, तुम्हें प्रसन्न करने के लिये यह शपथ खाता हूं कि युद्धारम्भ होते ही तुम चारों ओर मनुष्यों को गाजर-मूली की भांति कटते देखोगे। मेरे शरीर से कवच उसी समय उतरेगा जब

पांचालों का अथवा मेरा अन्त हो जायेगा ! अब तो प्रसन्न हो ?"

× × ×

रात्रि के अन्तिम पहर में चन्द्रदेव उदय हुये और उसके प्रकाश में मार-काट का क्रम पुनः आरम्भ हो गया। बुझते हुये दीपक के आलोक की भांति आचार्य द्रोण पूर्ण शौर्य्य से चारों ओर मृत्यु बखेरने लगे। उनके हाथों से कभी ब्रह्म अस्त्र, कभी वायु अस्त्र, कभी इन्द्र अस्त्र और कभी कोई और अस्त्र निकलता और पंक्तियों की पंक्तियां शून्य करता चला जाता था। पदाति और अश्वारोही यह देख कर उनके सन्मुख जाते घबराने लगे। महाराज द्रुपद के तीन पौत्रों ने उनका सामना करते हुए उन्हें रोकने का यत्न किया, परन्तु उनके प्राणघातक अस्त्रों का शिकार हो गये। पौत्रों को मरता देख कर महाराज द्रुपद की सेना आगे आई, दूसरी ओर से उनकी सहायता के लिये महाराज विराट आगे बढ़े; परन्तु आचार्य आज किसी और रंग में रंगे हुये थे, उनके सन्मुख ठहरना असम्भव था। अल्पकाल के युद्ध के पश्चात् यह दोनों वीर भी आहत होकर सदैव की निद्रा सो गये। पिता की मृत्यु का समाचार धृष्टद्युम्न तक पहुंचा तो वह आग बगूला होकर झपटा। उधर से वृकोदर भीम उसकी सहायता के लिये आगे बढ़ा और घमासान युद्ध आरम्भ हो गया। अर्जुन उस समय कर्ण से युद्ध कर रहे थे, सहदेव दुःशासन से युद्ध में प्रवृत्त थे, और नकुल सुयोधन को ललकार रहे थे।

युद्ध की भीषणता अन्तिम सीमा तक पहुँच गई जब आचार्य

द्रोण और शूरवीर अर्जुन की सेनाएं परस्पर टकराईं। उस समय जैसा युद्ध हुआ दर्शकों ने वैसा दृश्य कम ही देखा होगा। दोनों ओर के सारथी अपनी-अपनी विद्या-चातुर्य्य दिखा रहे थे, घोड़े कभी एक चाल से चलते, कभी दूसरी बदल देते; यत्न यह हो रहा था कि प्रतिद्वन्द्वी को उल्टे मार्ग पर डाल कर पीछे हटने पर विवश किया जाय। दूसरी ओर दोनों योद्धा अपनी उपमा स्वयं थे। वह चिरकाल पर्यन्त नाना प्रकार के शस्त्र एक दूसरे पर फेंकते रहे और जब यह असफल रहे तो आचार्य ने इन्द्र, पाशुपत, तवाष्टर, वायव्य, वारुण आदि अनेक प्रकार के अस्त्र प्रयोग करके चारों ओर आंधी और प्रलय मचा दी। परन्तु यह सब कुछ उड़ गया जब अर्जुन ने उन अस्त्रों के जोड़ के अस्त्र प्रयोग करके दिखा दिया कि वह अपने अद्वितीय गुरु से किसी अंश में न्यून नहीं। साधारण शस्त्रों और अस्त्रों से कार्य न निकलते देख कर आचार्य दिव्य अस्त्र प्रयोग करने लगे, पर उसमें भी सफलता न हुई। प्रतिद्वन्द्वी उनके प्रयोग और तोड़ से अनभिज्ञ नहीं था।

गुरु-शिष्य के इस असाधारण युद्ध को देखने के लिये संपूर्ण सेना में निस्तब्धता छा रही थी, जब कि आचार्य ने ब्रह्म अस्त्र का प्रयोग किया। उसका चलना था कि पृथ्वी, आकाश कम्पायमान हो गये, सागर में विप्लव आ गया और जनता ने समझा संसार का अन्त निकट है; परन्तु दूसरे ही क्षण में गाण्डीव धनुष से निकले हुये एक दिव्य अस्त्र ने उस जगत-नाश को रोक लिया।

दोनों ओर के वीरों ने जब देखा कि वह एक दूसरे को

परास्त करने में सफल नहीं हुये, तो रथों की बाग मोड़कर दूसरी ओर चल दिये, और युद्ध का दृश्य पुनः परिवर्त्तित होता दीख पड़ा।

मध्याह्न तक यही दशा रही जिसमें आचार्य्य के दिव्य अस्त्रों ने लाखों के प्राण लिये। महाराज युधिष्ठिर ने यह विनाश देख कर मध्याह्न के समीप एक संक्षिप्त सी युद्ध समिति बुलाकर कहा "आचार्य्य आज अपने आपे में नहीं, वह धर्म-अधर्म को त्याग कर निःशस्त्रों को अपने अस्त्रों का शिकार बना रहे हैं। अर्जुन इस समय भी उनका आदर करते हैं। इसलिये विचार करना है कि क्या किया जाय?"

सब की दृष्टि श्याम जी की ओर गई, जिन्होंने कुछ सोचते हुये कहा "यह दुख का विषय है कि आचार्य्य जीवन के सायं-काल में धर्म को तिलांजली दे बैठे हैं, ठीक जैसे भीष्म उसे त्याग बैठे थे। अब उनसे धर्म-युद्ध की आशा नहीं करनी चाहिये।"

अर्जुन—आप की सम्मति क्या है?

श्याम—आचार्य्य वृद्ध हो गये, सुयोधन के शब्दों ने उनके हृदय से धर्म-अधर्म का भेद मिटा दिया है, इसलिये यदि उनका हाथ रोकने के लिये हमें युद्ध-नियमों का उल्लंघन भी करना पड़े तो हमें चिन्ता नहीं होनी चाहिये।

युधिष्ठिर—आप क्या विचार कर रहे हैं?

श्याम—आचार्य्य का हृदय इस समय पाषाण रूप धारण कर रहा है। उनके हाथ में शस्त्र रहते वह किसी को नहीं छोड़ेंगे।

(धृष्टद्युम्न से) सेनापति ! आपने अभी आचार्य्य जी से बहुत सा हिसाब-किताब समझना है, आज ही आपके तीन भतीजों और पिता की मृत्यु उस बहीखाते में लिखी गई है। अब विलम्ब न करो। कल प्रातः से युद्ध करते हुये आचार्य्य यदि अभी तक नहीं थके तो शीघ्र थक जायेंगे, उस समय तुम अपना हिसाब चुका सकते हो। आगे बढ़ो ! भीम, सात्यकि और हम लोग आपकी सहायता को आरहे हैं। आचार्य्य कल से युद्ध कर रहे हैं, उनके अस्त्र-शस्त्र समाप्त होने वाले हैं। उन्हें चारों ओर से घेर कर सहायता का स्रोत बन्द करना होगा। यही एक ढंग है उस वृद्ध सिंह को पिंजरे में डालने का।

सभा उठ गई, धृष्टद्युम्न उच्च नाद करते हुये आचार्य्य की ओर बढ़े। वृकोदर भीम ने हाथियों की पंक्ति पर जो उनका मार्ग रोक रही थी आक्रमण कर दिया और अल्पकाल में पर्वताकार गजराज उनके चरणों में गिरने लगे। मालव देश के राजा इन्द्र वर्मा अपने भयङ्कर हाथी अश्वत्थामा को अंकुश देते हुये सामना करने आये, परन्तु भीम की भयङ्कर गदा के वार से हाथी और सवार दोनों धराशायी हो गये। उस समय पाण्डवी सेना से "अश्वत्थामा हतः" यह नाद होने लगा जो दावानल की भाँति फैलते हुये आचार्य्य जी के कानों तक पहुंच गया। आचार्य्य और धृष्टद्युम्न में भीषण युद्ध हो रहा था, धृष्टद्युम्न काल रूप होकर अपने रथ को आचार्य्य के रथ से मिला कर वर्तमान, भूत, और भविष्य का हिसाब निपटाने पर तुले हुये थे जबकि उनके एक

ओर "अश्वत्थामा हतः" यह शब्द सुनाई दिया। इसे सुनते ही धृष्टद्युम्न ने एक नारा मार कर कहा "गुरुदेव! 'अश्वत्थामा हतः' अब आप भी मृत्यु के लिये प्रस्तुत हो जाइये।"

"क्या कहा अश्वत्थामा हतः?" नहीं यह नहीं हो सकता।

यह विचार आचार्य्य के हृदय में विद्युत् वेग से घूम गया, "परन्तु यह क्यों नहीं हो सकता! सम्भव है ऐसा हुआ हो" यह विचार आते ही उनके हाथ से धनुष गिर गया। फिर सम्भल कर उन्होंने कहा "धोखा है, अश्वत्थामा हतः" जब तक स्वयं युधिष्ठिर नहीं कहेंगे, मैं नहीं मान सकता।

यह कह कर उन्होंने धनुष उठाया, परन्तु हाथ फीके पड़ रहे थे, हृदय की गति धीमी हो रही थी।

"महाराज युधिष्ठिर अश्वत्थामा की मृत्यु की साक्षी देने के लिये आपके सन्मुख उपस्थित होंगे और आप उनके कथन पर विश्वास करेंगे! यह रण-भूमि है अथवा न्यायालय!"

यह कह कर धृष्टद्युम्न एक छलांग के साथ आचार्य्य जी के रथ पर पहुंच गये। आचार्य्य के हाथ जो युद्ध की भीषणता में कभी नहीं कांपे थे, अश्वत्थामा की मृत्यु का विचार करते हुये ढीले हो गये। पाण्डवी सेना के मुख से एक ही शब्द निकल रहा था "अश्वत्थामा हतः!" परन्तु शीघ्र ही उनकी क्रोधाग्नि भड़क उठी और उन्होंने शत्रु को अपने रथ पर देखकर शस्त्र पकड़ने को हाथ उठाया। पर विस्मित रह गये जब यह ज्ञात हुआ, कि रथ खाली हो गया। कल से युद्ध करते हुये उन्होंने इतना लोहा वर्षाया था

कि उन्हें यह भी ज्ञात न हो सका कि रथ पर शस्त्र समाप्त हो चुके हैं। उन्होंने चारों ओर दृष्टि डाली, तो श्याम और अर्जुन, भीम और सात्यकि, सारे मार्ग रोक कर उन्हें घेरे में ले रहे थे। शस्त्र के बिना युद्ध असम्भव था। उन्होंने शत्रु को रथ से गिराने का यत्न किया, परन्तु खड्गधारी नवयुवक योद्धा के सन्मुख वृद्ध पुरुष का, चाहे वह कितना ही शूरवीर हो, निशस्त्र ठहरना असम्भव था। मित्र और शत्रु इस बात से अनभिज्ञ नहीं थे। आचार्य्य को रथ में चारों ओर हाथ मारते देखकर धृष्टद्युम्न को उनकी इस त्रुटि का रहस्य ज्ञात हो गया कि उनके हाथ खाली हैं। यह ज्ञान होते ही उसने खड्ग का एक भरपूर हाथ ऐसा मारा कि उस वीर का शीश जिसने चार दिन, पांचवी रात, और ½ भाग छठे दिन तक शत्रु को नाकों चने चबवा दिये थे, धड़ से पृथक् हो गया।

× × ×

अश्वत्थामा का प्रतिशोध

"मैं जीवित रहूं, पिता जी का शीश कट जाये, और उसके काटने वाला इस जगत में जीवित फिरे! यह नहीं हो सकता, नहीं होगा और नहीं होने दिया जायगा। धृष्टद्युम्न! गुरु-घातक! आकाश पर उड़ कर चला जा अथवा पाताल में घुस जा, अश्वत्थामा तुझे वहाँ से खींच कर तेरे शीश को उसी भांति शरीर से पृथक् करेगा जिस भांति तूने पूज्य पिताजी के शीश को अलग किया है। क्षत्रिय! स्वयं को शूरवीर समझने वाले क्षत्रिय! प्रस्तुत हो जा ब्राह्मण का सामना करने के लिये! अर्जुन, श्याम, भीम जो भी तेरी सहायता को आना चाहता है आ जाये, वह भी तेरे सहित ही अपने किये का फल पायेगा। बड़े-बड़े महात्मा, धर्मात्मा और निज को सत्यवादी कहने और समझने वालों के सम्मुख असत्य बोल कर निशस्त्र शूरवीर के प्राण लिये गये, और किसी जिह्वा, किसी हाथ ने उसे न रोका!" यह सोचते हुए सुयोधन से सम्बोधित होकर अश्वत्थामा ने कहा—"राजन्! हृदय छोटा क्यों करते हो? यदि पिताजी ने इस जगत को त्याग दिया तो क्या हुआ? अश्वत्थामा अभी जीवित है। सेना को आज्ञा दो और तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि ब्राह्मणों के दिव्य अस्त्रों का अभी अन्त नहीं हुआ। आज सायं से प्रथम पाण्डव

और उनकी सेना का नाश न कर दिया तो कहना।"

सुयोधन—ब्राह्मण कुमार! मुझे तुम से यही आशा थी। तुम्हारे होते मुझे हृदय छोटा करने की क्या आवश्यकता है?

× × ×

कौरवी सेना बड़े जोश से लौटी। उसे विजयी सेना की भांति लौटते देख कर महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन से पूछा, "अर्जुन! क्या बात है? कौन शूरवीर इस सेना का संचालन कर रहा है?"

अर्जुन—जिसे अनाथ समझ कर धृष्टद्युम्न ने उसका शिर उतार लिया था, उसका नाथ अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिये आ पहुंचा है। स्वयं अश्वत्थामा प्रज्वलित अग्नि की भांति सब कुछ भस्म करने के लिये चढ़ा आ रहा है।

धृष्टद्युम्न, भीम, सात्यकि आदि सेनापतियों की सेनाएँ इस नये आक्रमण का सामना करने को अग्रसर हुईं; परन्तु अल्पकाल में उन्हें पीछे हटना पड़ा। अश्वत्थामा के हाथों से नारायण अस्त्र छूट कर चारों ओर प्रलय मचा रहा था। विश्व ने आज पर्य्यन्त नाना प्रकार के शस्त्र और दिव्य अस्त्र देखे थे; परन्तु यह वस्तु जो अश्वत्थामा के हाथ से छूटी थी, उन सब से भिन्न थी। महाभारत-कार ने इसका चित्र चित्रण करते हुए लिखा है:—
"इस अस्त्र के प्रभाव से अश्वत्थामा के धनुष से अग्निमुखी नागों की भांति अनगिनत चमकते हुए बाण निकलने और शत्रु को भस्मसात् करने लगे। क्षण-भर में उन बाणों ने सूर्य्य की किरणों

की भांति आकाश, चारों दिशाओं और सारी सेना को ढांप दिया। आकाश पर लोहे के गोले फट कर चारों ओर उल्कापात करने लगे। चार चक्रों और दो चक्रों वाली अद्‌भुत शतघ्नियाँ और गदाएँ सूर्य्य की भांति चमकते हुए चक्र और नाना प्रकार के शस्त्र निकलने लगे, जिनसे प्रत्येक ओर चकाचौंध फैल गई* ।"

पाण्डवी सेना ने इस भयानक अस्त्र को तोड़ने का यत्न किया परन्तु उनके प्रत्येक यत्न के साथ उसकी तीव्रता में उत्तरोत्तर अधिकता होती जाती थी। समस्त सेनापति यह देख कर विस्मित थे क्योंकि अदृष्ट शत्रु सेना का संहार कर रहा था। उस समय सब की दृष्टि श्याम जी की ओर गई जो हाथ से संकेत करते हुए उच्च स्वर से कह रहे थे "सब लोग अपने-अपने वाहनों से उतर कर, शस्त्र हाथों से छोड़ कर पृथ्वी पर लेट जांय और परमात्मा का ध्यान करें। यही एक ढंग है जिससे इस अस्त्र के वेग को कम किया जा सकता है। इसका सामना करने का जितना यत्न होगा इसकी शक्ति बढ़ती चली जायेगी।"

आदेश का पालन हुआ, और सारे शूरवीर रथों, हाथियों

---

* यह अस्त्र क्या था? इस विषय में सही रूप में कुछ कहना कठिन है; परन्तु महाभारत-कार ने जो बातें लिखी हैं वह बताती हैं कि यह विद्युत् से कार्य करने वाला कोई गुप्त अस्त्र था, जिससे विद्युत् किरणें निकल कर शत्रु का नाश करती थीं। पाठक विचार करें कि गत महायुद्धों में इस प्रकार के कई अस्त्र प्रयोग किये जा चुके हैं।

तथा घोड़ों से उतर कर शस्त्र त्याग कर पृथ्वी पर लेट गये। वृकोदर भीम उस समय कुछ दूर वीरता दिखाते हुए युद्ध कर रहे थे। उन्होंने जिस समय अपनी सेना को शस्त्र त्यागते देखा तो उच्च स्वर से कहा—"सावधान! कोई शस्त्र हाथ से न छोड़े। तुम अभी देखोगे कि यह तो क्या इस जैसे दश सहस्र शस्त्र भी व्यर्थ कर दिये जायंगे। अरे! ऐरावत हाथी और हिमालय पर्वत सम्मुख आ जांय तो उठा कर फेंक दूं। यह अश्वत्थामा है ही क्या? (अर्जुन को गाण्डीव छोड़ते देख कर) क्या कर रहे हो? शस्त्र त्याग कर क्यों अपने यश को कलंक लगा रहे हो?"

अर्जुन—मेरी सर्वदा के लिये प्रतिज्ञा है कि गो, ब्राह्मण और नारायण अस्त्र के सम्मुख गाण्डीव नहीं उठाऊँगा।

यह सुन कर भीम की क्रोधाग्नि और भड़क उठी और उसने सारथी को रथ बढ़ाने की आज्ञा देकर अश्वत्थामा को शस्त्रों से ढांप दिया।

अश्वत्थामा ने उसे आते देखा तो हंस कर कहा "आओ आओ! आगे आओ!" यह कह कर धनुष उठाया तो क्षण भर में विषैले सर्पों की भान्ति सरसराते हुए, और अग्नि की भान्ति चमकते हुए, अनेक शस्त्रों ने भीमसेन को घेर लिया। महाभारत-कार का कथन है कि "उस समय भीम का शरीर चिनगारियों से ढँप कर ऐसे प्रतीत होता था, मानो सायंकाल में जुगनू चमक रहे हों।" सेनानियों में से यदि कोई उस समय खड़ा था तो यह दृश्य देख कर पृथ्वी पर लेट गया और अस्त्र का

पूर्ण बल भीम के विरुद्ध व्यय होने लगा। सामना करने का प्रत्येक यत्न उसमें बढ़ती करता जाता था। भ्राता को संकट में देख कर अर्जुन ने वायुव्य अस्त्र से उसके शरीर के इर्दगिर्द वायु चक्र उत्पन्न कर दिया, जिससे वह अल्प समय के लिये सुरक्षित हो गया; परन्तु भीम का युद्ध के लिये प्रत्येक यत्न नारायण अस्त्र की शक्ति को बढ़ा रहा था, और सम्भव था कि वह वायुव्य अस्त्र की शक्ति को तोड़ कर मानव शरीर को जलाने में सफल हो जाता, कि श्याम जी ने भाग कर बलपूर्वक भीम के हाथों से शस्त्र छीन लिये, और उसे पृथ्वी पर लिटाते हुए कहा "क्या अनर्थ कर रहे हो! देखते नहीं सम्पूर्ण सेना पृथ्वी पर लेट रही है। तुम हो कि युद्ध के लिये आग्रह कर रहे हो। यदि इस समय युद्ध से विजय हो सकती तो हम लोगों का सिर तो नहीं फिरा था कि सेना के हाथ से शस्त्र छुड़वा देते।" अनिच्छा-पूर्वक भीम पृथ्वी पर लेट गये और कुछ काल में आकाश निर्मल होने लगा।

× × ×

नारायण अस्त्र की माया का अन्त हुआ तो युद्ध पुनः आरम्भ हो गया। तब सुयोधन ने अश्वत्थामा से कहा:—

सुयोधन—नारायण अस्त्र ने निःसन्देह भारी कार्य किया है। इसे एक बार फिर प्रयोग कीजिए तो शत्रु का अन्त हो जाय।

अश्वत्थामा—(ठंडा श्वास लेकर) श्याम जी ने मेरे किये कराये पर मिट्टी बखेर दी। वह न होते तो सब कुछ ठीक था। दुख यह है कि यह अस्त्र द्वितीय बार प्रयोग किया जाय तो शत्रु का नहीं, चलाने वाले का विध्वन्स करता है। इस लिये आपकी आज्ञा का पालन सम्भव नहीं।

सुयोधन—नारायण अस्त्र नहीं तो न सही और अस्त्र सही। आप अस्त्र-शस्त्र के धनी हैं, प्रयोजन अस्त्र विशेष से नहीं, शत्रु का संहार करने से है।

× × ×

युद्ध तीव्र हो गया। अश्वत्थामा अपनी सेना को ठीक करके आगे बढ़ा और अल्पकाल में चेदी का नवयुवक कुमार धृष्टक्षत्र और उज्जैन नरेश सुदर्शन उसके हाथों वध हो गये, यह देख कर धृष्टद्युम्न, भीम और सात्यकि उसे रोकने को अग्रसर हुए। चिरकाल पर्यन्त उनके साथ युद्ध करने के उपरान्त अश्वत्थामा अर्जुन की सेना पर चढ़ दौड़ा। उस समय श्याम जी को देख कर उसके नेत्रों में रक्त उतर आया और उसने भारी बाण वर्षा करके उन्हें लक्ष्य बनाना चाहा। श्याम जी को अश्वत्थामा की बाण-वर्षा का लक्ष्य देख कर अर्जुन ने गाण्डीव पर प्रत्यन्चा चढ़ाई और अल्पकाल में ही युद्ध भयानक हो गया। अश्वत्थामा ने अग्नि अस्त्र छोड़ कर चारों ओर आग लगाने का प्रयत्न किया। हाथी, घोड़े, रथ और पदाति अग्निताप से जलकर भस्म होने लगे; परन्तु अर्जुन के हाथ से छुटे हुये ब्रह्मअस्त्र ने

अग्निअस्त्र के वेग को दूर करके अश्वत्थामा के सारथी के प्राण लिये। घोड़े बेकाबू होकर दौड़े और कुछ काल में उसे युद्ध-क्षेत्र से बाहर ले गये। उस समय सायं हो चली थी; दोनों सेनाएं छत्तीस घण्टे के युद्ध से थकित हो रही थीं; इसलिये दोनों ओर के सेनापतियों ने युद्ध को आगामी दिवस पर स्थगित कर दिया।

कर्ण का अन्तिम युद्ध

रक्त-रंजित युद्ध का एक दिवस और समाप्त हुआ, अब सेना का संचालन कर्ण के हाथों में था और वह सुयोधन को सम्बोधन करके कह रहा था :—

"आप को विदित है, कि पाण्डवों के युद्ध का समस्त भार अर्जुन के सिर पर है। मैंने उस के वध की शपथ ले रक्खी है। कल से जब सेना संचालन का भार आपने मेरे कन्धों पर डाला है, विचार कर रहा हूं कि उस विश्वास का जो आप ने मुझ पर प्रकट किया है कैसे पात्र बनूं ? मेरा मन कह रहा है कि आज युद्ध-भूमि में अर्जुन के साथ दो टूक फैसला किये बिना न लौटूं। इस विषय में मैंने सारे ऊँच-नीच सोच लिये हैं। मैं अर्जुन की शूरवीरता की प्रशंसा करता हूं। उस के पास दिव्य अस्त्र हैं, यह भी जानता हूँ। परन्तु स्फुर्ति में, शारीरिक और मानसिक बल में, शस्त्र-शिक्षा में वह मेरी समानता नहीं कर सकता। मेरे दिव्य अस्त्र उस से अधिक बलवान हैं। मेरा धनुष गाण्डीव को तोड़ने की शक्ति रखता है। यह मुझे परशुराम जी की कृपा से प्राप्त हुआ था। किन्तु मुझ में एक त्रुटि है, यदि उस का उपाय हो जाय तो मैं निस्सन्देह अर्जुन का नाश कर सकता हूँ।

सुयोधन—क्या ?

कर्ण—अर्जुन के सारथी श्याम जी हैं। यद्यपि पूर्व युद्धों में उसकी शक्ति बहुत न्यून थी, पर उन्हीं के बल पर वह आज अजेय बन रहा है।

सुयोधन—क्या इसका कोई उपाय नहीं हो सकता ?

कर्ण—हो सकता है। इसी कारण तो मैंने यह चर्चा की है। इस समय हमारी सेना में एक महारथी है जिसकी अश्वविद्या श्याम जी से न्यून नहीं। वह मद्र देश नरेश शल्य हैं। यदि वह मेरे रथ की वाग अपने हाथों में लेने पर सहमत हो जाय तो आप अर्जुन की मृत्यु ही समझ सकते हैं।

सुयोधन—मैं इसका प्रबन्ध किये देता हूं।

× × ×

"श्री महाराज ! सेनापति जी ने मुझे आप से यह प्रार्थना करने की आज्ञा दी है कि आप अर्जुन के वध में उन की रक्षा का भार अपने सिर पर लें।"

सिर झुका कर विनम्र-भाव से राजा सुयोधन ने मद्रराज शल्य से कहा।

शल्य—क्या कथन किया ?

सुयोधन—अर्जुन के सारथी श्याम जी हैं। आप शौर्य्य, वीरता और विशेष कर अश्व-विद्या में श्याम जी से हर प्रकार बढ़ कर हैं। इसलिये विनयपूर्वक प्रार्थना है कि आप सेनापति जी के रथ की वाग अपने कर-कमलों में लें।

शल्य—यह चुनाव सेनापति जी का है अथवा आप का ?

सुयोधन—चुनाव सेनापति जी का है, और मैं उन से सहमत हूँ।

शल्य—(पास बैठे राजाओं से) शूरवीर योद्धाओ ! आप ने सुन लिया, आज सूत पुत्र हमारे सेनापति हैं, वह राजा लोगों का भली प्रकार अपमान करना चाहते हैं, उसका एक ढंग यह सोचा गया है कि हम लोगों से सारथी की सेवा ली जाय। मेरा विचार था कि राजा सुयोधन इसे समझते होंगे; परन्तु इनका कथन है कि यह सेनापति से सहमत हैं। इसलिये मेरे विचार में अब हमारे लिये इस के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं, कि हम इस सेना को त्याग कर अपने देश की बाट लें।

सुयोधन—(घबराकर) यह आप के मन में क्या आई ?

शल्य—वही, जो सूत पुत्र ने सोची। पितामह भीष्म को यह न सूझी, आचार्य्य द्रोण के मन में यह न आई, सूत पुत्र के सेनापति बनते ही उसे हमारे अपमान की सूझने लग गई।

सुयोधन—(नम्रता पूर्वक) श्री महाराज ! ऐसा नहीं है। यदि ऐसा होता तो आपका यह दास स्वयं यह सन्देश लेकर आप के समीप न आता।

शल्य—तो और क्या प्रयोजन है ?

सुयोधन—मैं पूर्व कथन कर चुका हूं, कि जिस प्रकार अर्जुन श्यामजी के बल पर किसी को कुछ नहीं समझता, इसी प्रकार कर्ण की यह इच्छा है कि आपकी अश्व-विद्या का आश्रय लेकर अर्जुन

को परास्त करें। कर्ण अर्जुन से युद्ध करेंगे, परन्तु सफलता तभी हो सकती है यदि आप श्याम जी के जोड़ में अपनी अश्व-विद्या का चातुर्य्य दिखायें। युद्ध-विद्या में कर्ण और अर्जुन लड़ेंगे, अश्व-विद्या में आप श्याम जी को परास्त करेंगे।

शल्य—(कुछ सोच कर) यह बात है तो हम सेनापति का रथ हांकना स्वीकार करते हैं।

× × ×

द्रोणाचार्य्य और अश्वत्थामा का युद्ध सम्पूर्ण युद्ध में अधिक रक्तपातमय था, जिस में कई शूरवीरों के शस्त्रों और अस्त्रों ने बड़े-बड़े सेनापतियों और उनकी सेना का नाश किया था। इसलिये आज जो सेना शेष दीख पड़ती थी वह उस सेना के सम्मुख। जिसे लेकर दोनों दलों ने युद्ध आरम्भ किया था, एक तिहाई के निकट रह गई थी; परन्तु काल की गति ऐसी थी कि फिर भी किसी ओर दृढ़ता में अन्तर नहीं पड़ा था। दोनों ओर से सेनापति और उनकी सेनाएँ अपनी विजय पर पूर्ण विश्वास रखते हुए प्रति-पल प्रतीक्षा कर रहे थे कि आदेश हो और वह परस्पर एक दूसरे के रक्त से कुरु-क्षेत्र की भूमि को सींच दें।

जिस समय मद्रराज शल्य ने सेनापति कर्ण के रथ पर आरूढ़ होकर घोड़ों की बागें हाथों में लीं तो कौरव सेना में भीषण नाद हुआ, और राजा सुयोधन ने रथी और सारथी को आशीर्वाद देकर कहा—"परमात्मा करे कि जो कार्य भीष्म और द्रोण से न हो सका था, उस का यश आप को प्राप्त हो! और

आप दोनों रथी और सारथी अर्जुन का वध और शत्रु सेना का संहार करके विजय प्राप्त करें !"

कौरव सेना ने भीषण नाद किया, और कर्ण ने शल्य से कहा—

कर्ण—मेरा रथ वहाँ ले चलिये जहाँ वीर अर्जुन और महाबली श्याम हैं। निश्चय वह पुरुष जो आज मुझे उन दोनों योद्धाओं के दर्शन कराने का कारण बनेगा, मुँह मांगा पुरस्कार पायेगा।

शल्य (रथ की बागें उठाते हुये) इस के लिये आप को धन व्यय करने की आवश्यकता नहीं। आप अति शीघ्र उन दोनों शूरवीरों के दर्शन कर के मनोकामना पूर्ण करेंगे। इस समय मुझे अर्जुन का रथ दीख नहीं पड़ता; परन्तु उस का शब्द सुन रहा हूं। वह देखो दूर अन्तर पर उसकी सेना संशप्तकों से युद्ध कर रही है।

शल्य ने जिधर संकेत किया था, कर्ण ने उधर दृष्टि डाली तो एक भयङ्कर दृश्य देखा। अर्जुन और उसकी सेना विजय-मद में मत्त होकर शत्रु सेना का विनाश कर रहे थे, पर संशप्तक लोग इस प्रकार डटे हुये थे, कि कहा नहीं जा सकता था विजय किस को होगी ?

× × ×

कर्ण के दो सुपुत्र सुखेन और सत्यसेन उस के चक्र रक्षक का कार्य करते हुए वाम और दक्ष फ्लैंक (flanks) की रक्षा

कर रहे थे, उनसे ज्येष्ठ वृषसेन पृष्ठ रक्षक (Rear guard) के पद पर पृष्ठ भाग का नेतृत्व कर रहा था। उसके रथ को आगे बढ़ता देख कर पांचाल सेना ने धृष्टद्युम्न के नेतृत्व में मार्ग रोकने का यत्न किया। कुछ काल पर्य्यन्त युद्ध होता रहा। दोनों ओर के वीर सेनापतियों ने धनुर्विद्या के कौशल दिखाये, पर कर्ण को रोका न जा सका। वह अर्जुन पर आक्रमण करने से पूर्व पाण्डवी सेना के केन्द्र को विजय करके महाराज युधिष्ठिर को बन्दी बना कर युद्ध का अन्त करना चाहता था और उसकी सेना अपना मार्ग बनाती हुई महाराज युधिष्ठिर की सेना तक पहुंच ही गई। कर्ण को सम्मुख देख कर भारत सम्राट् ने कड़क कर कहा "सावधान! जाने न पाये। इस युद्ध का मूलकारण यही सूत पुत्र है, आज पृथ्वी पर से इसका अस्तित्व मिटाना है।"

युद्ध घमसान का होने लगा। एक ओर कौरवी सेना अपने सेनापति की सहायता के लिये बढ़ी आ गई, दूसरी ओर पाण्डवी सेना अपने महाराज की रक्षा के लिये शिर हथेली पर लिये जुट गई। अल्पकाल में ही युद्ध-क्षेत्र रक्त से लाल हो गया। हाथी, घोड़े, रथ और पदाति चीत्कार करके गिरने लगे। दोनों सेनाएं परस्पर गुत्थम-गुत्था हो गईं। अपने पराये की जांच न रही।

सेनापति कर्ण का रथ महाराज युधिष्ठिर के रथ से जा टकराया। शत्रु को सम्मुख देख कर भारत सम्राट् ने एक भारी गदा उठा कर उसके रथ पर फेंकी, परन्तु कर्ण के बाणों ने उसे

मार्ग में ही काट कर गिरा दिया। यह देख कर महाराज ने अपना धनुष उठा कर बाण-वर्षा से कौरव सेनापति के रथ को अदृश्य कर दिया; परन्तु अल्पकाल में शत्रु के कठोर धनुष से निकले हुये बाणों ने क्षेत्र साफ़ करके महाराज के धनुष की डोरी काट दी। महाराज ने इस की चिन्ता न करते हुये दूसरे धनुष को हाथ में लिया, परन्तु अभी प्रत्यञ्चा भी न चढ़ी थी कि कर्ण के हाथ से निकले हुये बाणों ने उनके कवच को काट कर शरीर को छलनी-छलनी कर दिया। महाराज के शरीर से रक्त बहता देख कर पाण्डवी शूरवीरों के क्रोध की सीमा न रही, और सात्यकि, भीम, युयुत्सु, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी आदि सारे महारथियों ने एक साथ आक्रमण करके कर्ण का ध्यान दूसरी ओर कर दिया।

रक्त के अधिक निकल जाने से महाराज युधिष्ठिर पर मूर्च्छा सी छा गई, इसलिये उनके रथ को सेना के पार्श्व भाग में भेजने का प्रबन्ध किया गया। कर्ण उस समय एक भारी आक्रमण से सारा झगड़ा मिटाना चाहता था। सम्राट् को पीछे हटते देख कर उसने उच्च स्वर से कहा:—"क्षत्रिय-कुल में जन्म लेने वाले प्राण रक्षा के लिये रणक्षेत्र से भागा नहीं करते। परन्तु तुम्हें क्षत्रिय कहना भूल है। तुम यज्ञ और स्वाध्याय आदि ब्राह्मणों के कर्मों के लिये बनाये गये हो, न कि क्षात्र-धर्म का पालन करने के लिये। जाओ अब के छोड़ दिया, फिर युद्ध-भूमि में शूरवीरों के सम्मुख आने का साहस न करना।"

× × ×

अर्जुन और श्याम चौबीस सहस्र संशप्तक सेना का नाश करके लौटने को थे, कि समाचार मिला कि कर्ण के साथ युद्ध में महाराज युधिष्ठिर आहत हुये हैं। वह रथ को लेकर वायुवेग से उधर बढ़े, तो मार्ग में ज्ञात हुआ कि अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को संकट में डाल रक्खा है। उसके बाणों ने पाण्डवी सेनापति के घोड़ों और सारथी के प्राण लेकर उसे रथहीन कर दिया था। धृष्टद्युम्न गदा, खड्ग और धनुष से शत्रु का सामना कर रहा था पर अश्वत्थामा के बाण उसके शस्त्रों को तोड़ कर खण्ड खण्ड कर रहे थे। श्याम जी ने निकट पहुँच कर एक ही दृष्टि में सब कुछ भांप लिया और निमिष मात्र में युद्ध अश्वत्थामा और अर्जुन में होने लगा। अश्वत्थामा की बाण वर्षा से धृष्टद्युम्न का धनुष गिर चुका था, गदा हाथ में नहीं रही थी, खड्ग दो खण्ड हो चुका था, सम्भव था कि शत्रु उसे बन्दी बना कर पिता के बध का प्रतिशोध लेता कि अर्जुन के बाणों ने गुरुपुत्र के सारथी के प्राण ले लिये। सारथी मुंह के बल पृथ्वी पर गिरा तो घोड़े विवश हो गये। यह देख कर क्रुद्ध अश्वत्थामा ने एक हाथ से घोड़ों को रासें थामीं और दूसरे से भयंकर शस्त्र वर्षा आरम्भ कर दी। शूरवीर अर्जुन ने यह देखा तो उस के मुख पर हल्की सी मुस्कान आ गई, और उसने एक तेज धार वाले बाण को धनुष पर चढ़ा कर अश्वत्थामा के हाथ की वागें काट डालीं। रासों का कटना था कि घोड़े भागे और रथी को लिये हुये युद्ध क्षेत्र से दूर निकल गये।

अश्वत्थामा और उसकी सेना को युद्धक्षेत्र से भगा कर अर्जुन और श्याम आगे बढ़े तो भीम शत्रु के साथ भीषण युद्ध कर रहा था। श्याम जी ने चारों ओर दृष्टि डाली तो महाराज युधिष्ठिर का रथ न दीख पड़ा। इसलिये विद्युत् वेग से चलते हुये उस स्थान पर पहुंचे जहां भीम शत्रु पर बाण-वर्षा कर रहा था। उसे देख कर अर्जुन ने पूछाः—"महाराज कहाँ हैं ?"

भीम—महाराज कर्ण की बाण-वर्षा से बुरी प्रकार घायल हुये हैं, उन्हें शिविर में भेज दिया गया है। वह रणक्षेत्र में रहने पर आग्रह कर रहे थे, परन्तु उचित यह समझा गया कि उन्हें विश्राम का अवसर दिया जाय। सुनता हूं पीछे हटते समय उन पर पुनः आक्रमण किया गया और कर्ण ने उनके सारथी और घोड़ों को मार गिराया। नकुल और सहदेव उनके साथ थे, उनमें से एक के रथ पर उन्हें शिविर में पहुंचाया गया।

अर्जुन—आप उनके स्वास्थ्य के विषय में ज्ञात कर आयें, मैं शत्रु को रोकूंगा।

भीम—युद्ध-भूमि से मेरे लुप्त होने का अर्थ लिया जायेगा कि मैं भी शत्रु से भयभीत होकर भाग गया हूं। आप ही महाराज को देख आयें।

अर्जुन—संशप्तक सेना का शेष भाग फिर मुझे ललकार रहा है।

भीम—मैं उसे सम्भाल लूंगा। आप महाराज के पास हो आएं।

श्याम—इनकी यही इच्छा है तो चलो हम लोग ही महाराज के दर्शन किये आते हैं।

यह कह कर घोड़ों की बागें उठाईं। वीर अश्व पंख लगा कर उड़े और अल्पकाल में ही शिविर के भीतर पहुंच गये। महाराज के शिविर के समीप पहुंच कर दोनों शूरवीर रथ से उतर पड़े। उस समय युद्ध में सहस्रों शस्त्रों के आक्रमण से दोनों के शरीर रक्त-वर्ण हो रहे थे। भीतर गये तो महाराज शय्या पर पड़े थे, घावों पर पट्टियां बंधी थीं, रक्तस्राव अधिक हो जाने से बलवान शरीर में पित्त का वेग बढ़ रहा था, परन्तु उन सब से अधिक हृदय की पीड़ा थी जो उन्हें व्याकुल कर रही थी। अपने जीवन में प्रथम बार आज उन्हें शत्रु के सम्मुख पृष्ठ दिखानी पड़ी थी और शत्रु भी वह जिसने अनेक बार जिह्वा के वार से उन्हें घाव लगाये थे। युद्ध-भूमि में सामने-सामने होने पर भूत-भविष्य का लेखा चुकाने का अवसर था, परन्तु दुर्भाग्य! उसी शत्रु ने उन्हें घायल करके रणक्षेत्र से विमुख कर दिया।

अर्जुन और श्याम जी को प्रवेश करते और रक्त-रंजित देख कर महाराज ने समझा कि वह कर्ण के वध का शुभ समाचार लाये हैं। इसलिये मुस्करा कर बोले—“आओ भाई! आओ! कहो कर्ण को मार आए? आज युद्ध-भूमि में उसने मेरी जो दुर्गति की थी, उसे यदि कोई बात भुला सकती है तो यही कि उसका प्रतिशोध ले लिया गया और अब कर्ण इस लोक में नहीं रहा। इतने महान् योद्धा की, जिसका सुयोधन को आश्रय था,

मृत्यु कैसे हुई ? उसकी मृत्यु से सुयोधन की समस्त आशाएं टूट गई होंगी। आज जिस समय उसने मुझे घायल करके मेरा पीछा किया, यदि भीमसेन न होते तो न जाने क्या हो जाता ? अच्छा हुआ इतने शीघ्र उसे पुरस्कार मिल गया। कहो यह सब कैसे हुआ ? मेरे हृदय में ज्वाला धधक रही है, सारा वृत्तान्त सुना कर इसे शान्त करो।

अर्जुन—"श्री महाराज ! मैं संशप्तकों से युद्ध कर रहा था, चौबीस सहस्त्र से अधिक सेना मेरे वध की शपथ खा कर मुझ पर चढ़ दौड़ी, उसे परास्त कर के लौट रहा था, कि मार्ग में अश्वत्थामा की सेना से मुठ-भेड़ हो गई। उन्हें नीचा दिखा कर आगे बढ़ा, तो भीम भयङ्कर युद्ध में प्रवृत्त थे। उनसे आपके घायल होने का समाचार मिला। इसलिये स्वास्थ्य का पता लेने के लिये सेवा में उपस्थित हुआ था।"

युधिष्ठिर—(बात काट कर) कहते नहीं कि मेरे समान तुम भी कर्ण के भय से युद्ध भूमि से भाग आये ! अरे ! कर्ण अभी तक जीवित है, भीम अकेला उसका सामना कर रहा है, और वीर शिरोमणी अर्जुन शिविर में भ्रमण कर रहे हैं ! इसी बल पर द्वैत वन में डींग मारा करते थे कि मैं कर्ण को मारूंगा ? ज्ञात नहीं भीम पर क्या बीत रही होगी ? वह कौरव सेना को रोकने का सम्पूर्ण भार अपने शिर पर ले रहा है, कर्ण भूखे सिंह की भान्ति, जिसे रक्त की चाट लग चुकी है, चारों ओर फिर रहा है ! और अर्जुन युद्ध-भूमि से भाग कर शिविर में

आ घुसे हैं, प्रभु ! परमात्मा ! कर्ण के बाणों ने मेरे प्राण क्यों न ले लिए ? क्या उन्हें यह देखने के लिए छोड़ दिया गया था ? धिक्कार ! धिक्कार ! तुम्हारी शूरवीरता पर धिक्कार ! गाण्डीव तुम्हारे हाथ में था, वीर शिरोमणी श्याम तुम्हारे सारथी थे, यदि तुम स्वयं कर्ण का सामना नहीं कर सकते थे तो गाण्डीव इन्हें दे देते। यह कर्ण को मार कर मेरे निकट आते। अब भी भला यही है कि इसे किसी ऐसे पुरुष को दे दो, जो इससे शत्रु का रक्त बहाए। यह कायरों को नहीं शोभा देता..........."

क्रोध में ज्ञात नहीं महाराज क्या क्या कह गये। आज पर्यन्त बहुत थोड़े अवसरों पर उन्हें क्रुद्ध देखा गया था, और अर्जुन इस दृश्य के लिये तैयार नहीं थे। वह समर-भूमि से आये थे, प्रातः से इस समय पर्य्यन्त लोहे से लोहा बजाते रहे थे। इसलिये महाराज के शब्द उनके लिये रहस्य पूर्ण हो रहे थे। इस असमय की रागनी ने उनके नेत्र लाल कर दिये और उन्होंने म्यान से कृपाण खींच ली। श्याम जी की दृष्टि कभी एक ओर कभी दूसरे भ्राता पर पड़ रही थी। जब उन्होंने अर्जुन को कृपाण हाथ में लिये देखा, तो वार्त्ता में हस्तक्षेप करते हुये बोले "अर्जुन ! यह क्या ? यहां कौन है जिस पर शस्त्र प्रयोग करोगे ? धृतराष्ट्र के पुत्र तो युद्ध-भूमि में हैं, कर्ण समर में घूम रहा है, मैं अपने सम्मुख किसी शस्त्र-धारी को नहीं देखता, तुम्हारी कृपाण मुझ पर चलेगी अथवा धर्मराज पर ?"

अर्जुन—(नेत्र लाल किये) श्याम जी ! आपको विदित है

कि मेरी प्रतिज्ञा है कि जो पुरुष मुझ से गाण्डीव किसी अन्य को देने के लिए कहेगा, उसका शीश काट दूंगा।

श्याम—तुम्हारी यह प्रतिज्ञा बुद्धिमत्ता का प्रमाण नहीं।

अर्जुन—हो अथवा न हो। प्रतिज्ञा है और सत्य प्रतिज्ञा है।

श्याम—इसके पालन में तुम्हें ज्येष्ठ भ्राता का वध करना होगा!

अर्जुन—श्याम जी! आप क्या कह रहे हैं? मेरा अपमान करने वाला, गाण्डीव को धिक्कारने वाला, उसे मुझसे छीनने की आज्ञा देने वाला, यदि कोई ऐसा पुरुष होता जिसने शूरवीरता का कार्य किया होता तो बात समझ में आ सकती थी। यदि वृकोदर भीम जिसका रक्त युद्ध-भूमि में गिर रहा है, जो गदा हाथ में लेकर हाथी, घोड़ों और शूरवीरों की हड्डियां तोड़ रहा है, हां हां वह भीम जिसके नाम से शत्रु कांपते है, घुड़की देता तो मैं उसे शिरोधार्य करता; परन्तु विस्मित हूं कि वह व्यक्ति जो स्वयं युद्ध-भूमि से भाग कर स्त्रियों की शैया पर लेट रहा है, जिसने द्यूत कर्म से राज्य पाट गंवाया, महारानी कृष्णा का अपमान कराया, हम सबों को गृहहीन किया, जिसने पाण्डव कुल का शिर नीचा किया, वह गाली दे रहा है मुझे, जिसके बाणों ने भीष्म सरीखे अद्वितीय योद्धा को युद्ध-भूमि से निकाला, जिसने अकेले कौरव सेना का नाश करके जयद्रथ के रक्त से हाथ रंगे, हां हां गाली दी जा रही है मुझे, जो इसी समय चौबीस सहस्र शत्रुओं को यमलोक पहुँचा कर यहाँ चला

आ रहा है। निस्संदेह यह सहन करना असम्भव है!

यह कह कर कृपाण सूंत ली।

श्याम—(अर्जुन का हाथ पकड़ कर) कैसा पागलपन है? क्या तुम देखते नहीं, धर्मराज थके थे, घायल थे, अपमान से दुखी थे, कर्ण से प्रतिशोध लेने के विचार ने इन्हें अधीर बना रखा था, यदि इन्होंने तुम्हें कोई अनुचित बात कह दी तो क्या हुआ? सम्भव है इनका तात्पर्य यह हो कि तुम क्रुद्ध होकर अधिक शक्तिपूर्वक शत्रु से युद्ध करो। तुम्हें समयानुकूल इनके वचन का अर्थ समझना चाहिये, यह तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता हैं, घायल हैं, राजा हैं, राजा ही नहीं धर्मराज हैं; इसलिये शास्त्रानुकूल अवध्य हैं। अर्जुन! तुमने आज पर्यन्त धर्म के तत्व को नहीं समझा।

तुम अपने को सत्य-सन्ध कहते हो; परन्तु नहीं जानते सत्य का वास्तविक रूप क्या है? सत्य केवल लठमारों की भांति जो मन में हो जिह्वा से कह देने का नाम नहीं है। समय आता है जब वह जिसे हम सत्य समझते हैं वास्तव में असत्य प्रमाणित होता है, और वह जिसे सर्वसाधारण असत्य कहते हैं सत्य होता है। तुम्हें ज्ञात है धर्म प्राणियों की रक्षा के निमित्त स्थापित किया गया है, शास्त्र का कथन है:—

"धारणाद्धर्मम" अर्थात् धारण करने वाला ही धर्म है। धर्म ही प्राणी मात्र की रक्षा करता है। दूसरे शब्दों में यह कि जिस नाम-मात्र धर्म से प्राणी-मात्र की रक्षा नहीं होती, जो प्राणी-मात्र को धारण नहीं करता, वह धर्म नहीं। इसलिये तुम्हारी

यह प्रतिज्ञा जो केवल कुछ ऐसे शब्दों के मुख से निकल जाने के कारण, जिनका स्यात् अभिप्राय वह नहीं जो तुम समझ रहे हो, तुम्हें अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध करने को उद्यत करती है, धर्म नहीं, सत्य नहीं।

अर्जुन—(लज्जित होकर) तो आपकी क्या आज्ञा है ?

श्याम—संसार का नियम है कि माननीय पुरुष का जब तक मान है तब तक वह जीवित है, जब उसका अपमान हो वह मृत तुल्य हो जाता है। गुरु आदि पूजनीय पुरुषों को 'तू' और 'तुम' कहना भी उनकी हत्या करना है। महर्षि अंगिरस ऐसा ही कथन कर गये हैं। तुम सब भ्राता आज पर्य्यन्त धर्मराज का सम्मान करते रहे हो, इस समय तुमने जो इन्हें कठोर शब्द कहे हैं, वह वाक्य की कृपाण से इनकी हत्या करना है।

यह सुन कर अर्जुन का मुख विवर्ण हो गया। वह क्षणिक आवेश जिसने उसकी जिह्वा को प्रेरा था, दूर हो गया और उसे यह ज्ञात हो गया कि ज्येष्ठ भ्राता के आदर में अशिष्ट होकर वह सीमा का उल्लंघन कर गया है। तब उसकी कृपाण फिर म्यान से निकलती दीख पड़ी तो श्याम जी ने कहा, "अब फिर तुम्हारी कृपाण बाहर आ रही है, यह किस लिए ? पहिले धर्मराज का शीश उड़ाना चाहते थे, क्या अब मुझ पर कृपादृष्टि होगी ?"

अर्जुन—(लज्जा से शिर झुकाये) मैं पापी हूँ ! मैंने ज्येष्ठ भ्राता को अनुचित बातें कह कर इनका अपमान किया है, इसका प्रायश्चित करूँगा ! अपने रक्त से इस पाप को धोऊँगा !

श्याम—आत्म-हत्या करोगे ?

अर्जुन—पाप का प्रायश्चित् !

श्याम—आज तुम धर्म के पीछे लठ लिये फिर रहे हो ! क्या तुम्हें ज्ञात नहीं आत्म-हत्या भ्राता-वध से अधिक पाप है ? तुम एक पाप को धोना चाहते हो उससे बड़ा पाप करके। यह किधर की बुद्धिमत्ता है ?

अर्जुन—(घबराकर) अद्भुत् गोरख धन्धे में फँस गया हूं। क्या इससे किसी प्रकार त्राण नहीं होगा ?

श्याम—(हँस कर) अरे भाई ! जिस खड्ग से तुमने ज्येष्ठ भ्राता की हत्या की उसी से अपनी भी कर ली। जिन शब्दों में तुमने ज्येष्ठ भ्राता की भर्त्सना की उन्हीं में तुम अपनी प्रशंसा भी कर गये। आत्म-प्रशंसा एक प्रकार की आत्महत्या ही है यह विद्वानों का निश्चय है। इसलिये जहां तुमने पाप किया, उसका प्रायश्चित भी साथ ही हो गया। अब यदि करने योग्य कार्य शेष है तो वह है धर्मराज से क्षमा मांगना और शत्रु का वध।

यह सुन कर अर्जुन के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये और उसने ज्येष्ठ भ्राता के चरणों पर शीश रख कर रुँधी हुई वाणी से कहा, "भ्राता ! मैंने पाप किया ! मुझे क्षमा कीजिये और आज्ञा दीजिये कि समर भूमि में जाकर शत्रु का सामना करूँ। कर्ण युद्ध-भूमि में मुझे ढूंढ रहे होंगे, उनके सम्मुख जाकर मुझे भीमसेन जी को छुट्टी दिलाना है। मैं इस समय आपके सम्मुख यह प्रतिज्ञा करता हूं कि आज या तो कर्ण की माता राधा पुत्रहीन हो जायेगी अथवा

माता कुन्ती को पुत्र-शोक होगा। अर्जुन तब तक शरीर से कवच नहीं उतारेगा जब तक दो टूक निर्णय न हो जाये। आशीर्वाद दीजिये कि इस कठिन परीक्षा में से उत्तीर्ण हो सकूँ!

भ्राता के कठोर शब्दों ने धर्मराज के घायल हृदय पर लवण का कार्य किया था। उसके पश्चात्ताप के अश्रु देखने की शक्ति उनमें न थी। वह अर्जुन का शीश ऊपर उठाते हुए खड़े होकर बोले—"भाई! तुमने जो कुछ कहा वह उचित ही था। निस्सन्देह मेरे ही कारण तुम सब लोग दुःख भोग रहे हो! मैं ऐबी, जुआरी, मूर्ख, कायर और पापी हूँ। मेरे ही कारण कुरु-कुल का नाश हुआ। मेरा शीश काट डालो। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो मैं स्वयम् अपने पापों का प्रायश्चित् करने के लिए वन को प्रस्थान करूँगा। भीमसेन योग्य हैं, शूरवीर हैं, उन्हें राजा बना लेना। मैं नपुंसक और असमर्थ हूं। राज्य प्राप्त करके भी उसे संभाल नहीं सकूंगा। अपमानित होकर जीवित रहना अथवा पुनः ऐसे वचन सुनना मेरे लिए अब असम्भव है।

धर्मराज के यह शब्द सुन कर श्याम जी का हृदय हिल गया, और उन्होंने कहाः—"राजेन्द्र! आपको अर्जुन की प्रतिज्ञा का ज्ञान है, जो इसने गाण्डीव धनुष के विषय में कर रक्खी है। आज दुखित होकर आपने जो शब्द इसे कहे थे वह इसकी प्रतिज्ञा पूर्ति के लिये पर्याप्त थे। मैंने इसे धर्म का मार्ग दर्शा कर इसकी प्रतिज्ञा पूर्ति का वास्तविक आदर्श दिखाया है। निस्सन्देह इसने आपका अपमान किया, परन्तु उस अपमान ने

सत्य की रक्षा कर दी। आप धर्म स्वरूप हैं, उसके तत्व को जानते हैं, इस कारण मुझे आपसे अधिक नहीं कहना। मैं समझता हूं कि अपनी प्रतिज्ञा के शब्दजाल में फँस कर यदि यह सत्य के तत्व से अज्ञान के कारण कुछ और कर बैठता तो अच्छा नहीं था। इसलिये जो कुछ इसने किया, मैं उसकी निन्दा नहीं कर सकता। यदि आप इसे इसके पाप का दण्ड देना चाहते हैं तो मैं भी उसमें समान अधिकारी हूं। परन्तु मुझे आशा है कि आप क्षमा को न त्यागते हुए हमें आशीर्वाद देंगे, कि हम शत्रु का रक्त बहाकर आपके हृदय को शांत करें। जिस पर आप जैसे धर्मात्मा की कोप दृष्टि हो, उसे बचाने की शक्ति किसी में नहीं।

यह सुन कर महाराज युधिष्ठिर का हृदय भर आया। उन्होंने दोनों भ्राताओं को वक्ष से लगाकर कर जोड़े हुये श्याम जी से कहा:—"श्याम जी! आप सत्य कहते हैं, दुख और अपमान ने आज मेरी बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया और मैंने जो शब्द कह दिये, उन्होंने हम दोनों भ्राताओं के लिये आपत्ति खड़ी कर दी थी; परन्तु आपकी बुद्धिमत्ता ने हमें इस संकट से बचा लिया। गाण्डीव अर्जुन के हाथों में ही शोभित होता है, और परमात्मा करे वह इसे धारण करते हुए धर्म के शत्रुओं के रुलाने का कारण बनते रहें।"

अर्जुन का रथ शिविर से बाहर निकला तो समाचार मिला कि सेनापति कर्ण परशुराम जी निर्मित भार्गव अस्त्र से पांचाल

सेना का संहार कर रहे हैं। महाभारतकार लिखते हैं:—"इस अस्त्र के कारण कर्ण के धनुष से एक ही समय में सहस्रों, लाखों, बल्कि करोड़ों तेज बाण निकल कर पाण्डवी सेना पर गिर रहे थे। चारों ओर बाणों के अतिरिक्त और कुछ दृष्टिगोचर न होता था। इस अस्त्र के प्रहार से सब ओर हाहाकार मच गया। सहस्रों हाथी, घोड़े, रथी, और पदाति मर मर कर चारों ओर गिर गये। पृथ्वी पर भूकम्प-सा आ गया। और पाण्डवी सेना में हलचल मच गई।'

यह सुनते ही शूरवीर अर्जुन ने श्याम जी से प्रार्थना की कि शीघ्रातिशीघ्र समर-भूमि में पहुँचिये, क्योंकि समाचार देने वाले ने बताया था कि कर्ण पांचाल सेना से लड़ रहे हैं और कौरवी सेना के अन्य सेनापति कृपाचार्य्य,अश्वत्थामा, सुयोधन, दुश्शासन इत्यादि भीमसेन को घेरे में ले रहे हैं।

अर्जुन का रथ युद्ध-क्षेत्र में पहुंचा तो भीम दुश्शासन से युद्ध कर रहे थे। अर्जुन के लौटने और महाराज के स्वस्थ होने के समाचार ने उनका साहस द्विगुण से दशगुणा कर दिया, और उन्होंने एक भीषण नाद करके दुश्शासन पर बाणों की झड़ी लगा दी; परन्तु दुश्शासन ने हस्त-लाघव से न केवल इन समस्त बाणों को मार्ग में ही काट दिया वरन एक तीक्ष्ण बाण से भीम के धनुष को काट डाला। यह देख कर क्रुद्ध भीम ने एक भारी शक्ति दुश्शासन के रथ पर फेंकी, जो यदि लक्ष्य पर बैठती तो दुश्शासन और उस के रथ को चकनाचूर कर देती; परन्तु दुश्शासन के

बाणों ने मार्ग ही में उसके भी कई खण्ड कर दिये।

उसकी शूरवीरता और हस्त-लाघव को देख कर कुरु सेना में चारों ओर "दुश्शासन की जय" "महाराज सुयोधन की जय" के जयनाद आरम्भ हुए; परन्तु अभी इन जयकारों का शब्द वायु-मण्डल में गूंज ही रहा था कि लोग यह देख कर विस्मित रह गये कि भीम की गदा के एक प्रहार ने न केवल दुश्शासन के सारथी और घोड़ों के प्राण ले लिये, बल्कि स्वयं दुश्शासन घायल होकर अपने खंडित रथ से कुछ अन्तर पर जा गिरा। शत्रु को गिरता देख कर वृकोदर भीम एक भीषण नाद कर के खड्ग हाथ में लिये रथ से कूदे और उन्होंने दुश्शासन को उठा कर भरपूर शक्ति से पृथ्वी पर पटकते हुए कहा, "कौरव सेना के रक्षक महारथियो! सुन लो! देख लो! आज मैं पापी दुश्शासन का रक्त पान करूँगा। किसी में शक्ति है तो इसे बचा ले।" वह दुश्शासन की ग्रीवा पर पांव रक्खे इस भाँति खड़े थे, जैसे उन्मत्त सिंह अपने शिकार को दबाये हो। वह उसे सम्बोधन करके कह रहे थे, "ओ पापी! तुझे स्मरण है न? तूने ही भरी सभा में मुझे "बैल", "बैल" कहा था। अब बैल के सींगों का सामना करने को प्रस्तुत हो जा। तू ही है न जिस ने महारानी कृष्णा के केश जो राजसूय यज्ञ में पवित्र वेद मन्त्रों से बांधे गये थे, पकड़ कर कौरव सभा में घसीटे थे? बता वह तेरा कौनसा हाथ था जिस ने यह शूरवीरता का कार्य किया था?

दुश्शासन—(आवेशपूर्वक दांया हाथ उठा कर) यह हाथ है,

जिस ने सहस्रों गो दान की हैं। यही हाथ है जिस ने युद्ध-भूमि में क्षत्रियों के शीश फोड़े हैं। कौरव-सभा में और तुम पाण्डवों के सम्मुख इसी हाथ ने कृष्णा के भूंडे खींचे थे।......

भीम में अब अधिक सुनने की शक्ति न रही और निमिष मात्र में दुश्शासन की भुजा खींच कर उसे शरीर से पृथक् कर के कौरव सेनापतियों की ओर फेंकते हुये उस ने कहा, "वह गया, वह हाथ! जिस में शक्ति हो इसके जीवन की रक्षा कर ले।"

दुश्शासन मूर्छित था, भीम ने उस के वक्ष में खड्ग भोंककर दोनों हाथों से उसे चीर दिया। उस समय रक्त का स्रोत मरते हुए दुश्शासन के शरीर से निकला, जिसे दोनों हाथों में लेकर अधरों से लगाते हुए वृकोदर भीम ने कहा, "अहा! कैसा स्वादिष्ट है शत्रु का रक्त! निस्सन्देह माता के दुग्ध में, अमृत में, घृत में, मीठे जल में, फलों के रस में वह स्वाद नहीं जो शत्रु के उष्ण रक्त में है।"

वह रक्त से लिथड़ रहे थे, मुख, हाथ, टांगें और सारा शरीर दुश्शासन के रक्त से रंजित था, मुख तमतमा रहा था। शत्रुओं ने यह दशा देखी, तो भयभीत हो कर चारों ओर भागने लगे। उन्हें देख कर कोई नहीं कह सकता था कि वह मनुष्य है अथवा मनुष्य-भक्षी राक्षस! इसी अवस्था में अर्जुन और श्याम जी के सम्मुख जाकर उन्होंने कहा, "दुःशासन वध के सम्बन्ध में मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गई! अब इस युद्ध-रूपी यज्ञ में दुर्योधन का वध शेष है। देखें भगवान् वह अवसर कब देते हैं?

× × ×

भीम के भय से कांपती हुई सेना का धैर्य्य बंधाने के लिये सेनापति कर्ण के सुपुत्र वृषसेन ने अपनी सेना को आगे बढ़ने का आदेश दिया। वरन स्वयं उदाहरण स्थापित करते हुए उस ने भीम, नकुल और अन्य सेनापतियों पर शस्त्रों की झड़ी लगा दी, अर्जुन और श्याम पर आक्रमण कर दिया। अर्जुन उस नवयुवक के उमड़ते हुए जोश को देख कर हँसते हुए श्याम जी से बोले—"देखिये ! पतंग अग्नि पर भस्म होने को आ रहा है !"

अर्जुन उस समय उपेक्षा कर रहे थे, परन्तु वृषसेन का जोश बढ़ रहा था। उसे सीमा का उल्लंघन करते देख कर अर्जुन ने कर्ण और अन्य कौरव शूरवीरों को सम्बोधन कर के कहा, "शूरवीर कर्ण ! तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम लोगों ने अभिमन्यु के प्राण किस भांति लिये थे ? वह अकेला था ! रथहीन और शस्त्र-हीन कर दिया गया था ! छः महारथी उसे घेरे में ले रहे थे ! मैं उस समय उपस्थित न था ! परन्तु आज परस्थिति विपरीत है। वृषसेन सशस्त्र है, अकेला नहीं, इसकी सेना और तुम सब लोग इस के सहायक हो, आज मैं इसे मार कर वहीखाते का एक हिसाब चुकाना चाहता हूं। साहस है तो इसे बचा लो।"

इन शब्दों के साथ ही गाण्डीव की टङ्कार सुनाई दी और अभी किसी को यह ज्ञात भी नहीं हुआ था कि क्या हुआ है कि वृषसेन का शीश धड़ से पृथक् होकर उस के पिता के रथ के सम्मुख जा गिरा।

पुत्र के शिर को धड़ से पृथक् देख कर कर्ण की क्रोधाग्नि चमक उठी, और उसने एक भीषण नाद के साथ अर्जुन के रथ पर आक्रमण कर दिया। यह उस युद्ध का आरम्भ था जिसे जगत ने आज पर्यन्त नहीं देखा था। आरम्भ में दोनों योद्धाओं ने धनुर्विद्या के कौशल दिखाये। दोनों के धनुषों से निकलते हुये बाण चारों ओर उड़ने लगे। दोनों के अद्वितीय सारथी घोड़ों और रथ को इस प्रकार चलाने लगे कि किसी के शरीर पर आंच न आती थी। सम्पूर्ण सेना इस अद्वितीय युद्ध का कौतुक देखने के लिये युद्ध बन्द करके खड़ी हो गई। अल्पकाल में शस्त्र-युद्ध का स्थान अस्त्र-युद्ध ने ले लिया। कर्ण ने जगत-विख्यात भार्गव अस्त्र छोड़ा, जिसने चारों ओर बाण-वर्षा से खल-बली मचा दी। उत्तर में अग्नि अस्त्र से कार्य लिया गया, जिसने युद्धक्षेत्र को अग्निकुण्ड बना दिया। अपनी सेना को इस भयङ्कर अस्त्र के ताप से तपित देख कर कर्ण ने वारुण अस्त्र का प्रयोग किया, और संसार ने देखा कि आकाश पर मेघ छा गए और बूंदा-बांदी आरम्भ हो गई जिसने प्रज्वलित अग्नि को शांत करने में पर्याप्त भाग लिया; परन्तु यह अग्नि अभी बुझी न थी कि अर्जुन के वायव्य अस्त्र ने आंधी सी चलाकर मेघों को उड़ा दिया। अब अर्जुन ने वज्र अस्त्र का प्रयोग किया। गाण्डीव से वज्र की भांति नाना प्रकार के भयङ्कर अस्त्र निकले, जो कर्ण के घोड़ों, धनुष और रथ को चीरते हुए उसके शरीर को छलनी करने लगे। यह देखकर क्रुद्ध कर्ण ने एक अद्भुत बाण से

अर्जुन के धनुष की डोरी काट दी, और अभी वह दूसरी डोरी चढ़ाने में सफल न हुए थे कि बाण-वर्षा से उन्हें ऐसे ढांप दिया कि कोई यह नहीं कह सकता था कि वह जीवित हैं अथवा सुरपुर पहुंच गए। परन्तु श्याम जी की रथ विद्या आगे आई, और अभी कर्ण को ज्ञात भी न हुआ था कि गाण्डीव फिर उसी तीव्रता से चारों ओर शस्त्र बखेरने लगा। कर्ण ने यह देखकर तूणीर से विशेष बाण निकाले और वह उसके कठोर धनुष के ज़ोर से विषैले सर्पों की भांति श्याम जी के कवच को तोड़ कर पृथ्वी में प्रवेश करते दीख पड़े। श्याम जी को घायल और उनके शरीर से रक्तस्राव देखकर अर्जुन की क्रोधाग्नि भड़क उठी, और उसने ब्रह्मास्त्र और सुतीक्षण अस्त्र से चारों ओर विनाश फैला दिया। इन भयङ्कर अस्त्रों ने कर्ण के चक्र-रक्षक; पादरक्षक, पार्श्व रक्षक, पृष्ट रक्षक के प्राण लेकर स्वयं उसे बुरी भांति घायल किया; परन्तु उसके साहस में न्यूनता नहीं आई। उसने नाग के आकार का एक भयङ्कर बाण निकाला और धनुष पर रख कर छोड़ दिया। श्याम जी की दृष्टि कर्ण के हाथ की एक एक गति को देख रही थी। ठीक उस समय जब कि यह भयंकर अस्त्र उनके रथ से टकराकर उसे चकनाचूर करने को था, उन्होंने अपनी अद्वितीय अश्व-विद्या का कौशल दिखाते हुए रथ को एक गढ़े में गिरा दिया। बुद्धिमान अश्व रासों का संकेत पाकर घुटनों के बल हो गये और वह भयंकर बाण अर्जुन के लोहटोप को स्पर्श करता हुआ आगे निकल गया। दूसरे क्षण में श्याम जी ने

एक छलांग से पृथ्वी पर उतर कर पूर्ण शक्ति से रथ को गढ़े से बाहर निकाल दिया। कर्ण ने रथवानी का यह अद्वितीय चातुर्य देखा, तो सहसा उसके मुख से निकल गया "अश्वविद्या हो तो ऐसी हो"।

दूसरे क्षण में अर्जुन के हाथों से इसी भाँति का सर्पाकार बाण निकल कर कर्ण के कवच को तोड़ गया। कवच के कटने से आहत सिंह की भांति झल्लाकर कर्ण ने श्याम और अर्जुन पर वह बाण वर्षा की कि दोनों के शरीर से रक्त के स्रोत्र निकलने लगे। निजको और श्याम जी को घायल पाकर अर्जुन ने पुनः गाण्डीव को उठाया। भीषण शस्त्र-वर्षा से कर्ण पर मूर्छा सी छा गई। वह रथ की ध्वजा पकड़ कर बैठ गया। शत्रु को इस अवस्था में देखकर अर्जुन ने हाथ रोक लिया। उसे रुकते देखकर श्याम जी ने कहा "क्या प्रतीक्षा कर रहे हो कि घायल सिंह संभले और संभल कर तुम पर प्रहार करे? शत्रु के निर्बल होने पर ही तो उस पर प्रहार करने का अवसर होता है"। यह सुन कर अर्जुन ने फिर गाण्डीव को चक्र दिया परन्तु उस समय तक कर्ण सुधि में आकर बड़े वेग से उस पर शस्त्र वर्षा कर रहा था। उस समय उसका रथ तीव्र गति से चल रहा था, महाराज शल्य अपनी विद्या में श्याम जी को नीचा दिखाने पर तुल रहे थे।

वारुणास्त्र से जलवर्षा ने कुरुक्षेत्र की धरती को फिसलनी बना रखा था; परन्तु दोनों ओर के रथों के घोड़े अनुभवी

सारथियों के संकेत पर यह सब भूल रहे थे। युद्ध भीषणता पूर्वक हो रहा था, दोनों शूरवीर एक-दूसरे का रक्तपात कर रहे थे, कि सहसा शल्य के मुख से निकला "यह क्या ?" कर्ण ने धनुष को नीचा करते हुए दृष्टि डाली तो उसके रथ के एक ओर के पहिये पृथ्वी में धंसे जा रहे थे। शल्य ने घोड़ों को चाबुक लगाया, वीर अश्व चाबुक खाने के अभ्यस्त नहीं थे, वह बड़े जोर से आगे बढ़े, पर रथ के चक्र अधिकाधिक कीचड़ में धंसते चले गये। सारथी ने बाग मोड़ कर दूसरी ओर को चलना चाहा, पर उधर से बाण-वर्षा ने घोड़ों का मुख फेर दिया। शल्य के यत्न करने पर भी जब पृथ्वी ने रथ के चक्रों को न छोड़ा तो शूरवीर कर्ण ने उड़ते हुए शस्त्रों के भीतर रथ से कूद कर उसे बाहर निकालने का यत्न किया; परन्तु शत्रु के भयङ्कर शस्त्र पूर्ण शक्ति लगाने का अवसर न देते थे। परिस्थिति की गम्भीरता को अनुभव करके कर्ण ने शत्रु को सम्बोधन करके कहा, "अर्जुन ! रुक जाओ ! जब तक मैं पहियों को कीचड़ से न निकाल लूँ प्रहार न करना। ऐसी अवस्था में जब शत्रु विवश हो, आक्रमण करना कायरों का कार्य है। तुम योद्धा हो, युद्ध के धनी हो, क्षात्र-धर्म का पालन करने वाले आर्य कभी ऐसे शत्रु पर प्रहार नहीं करते जो शरणागत हो, शस्त्रहीन हो, जिसने शस्त्र त्याग दिया हो, जो प्रार्थना कर रहा हो, कर जोड़ रहा हो, जो ब्राह्मण हो, जिसके बाण समाप्त हो गये हों, जिसका कवच टूट गया हो। इस धर्म को स्मरण करा कर मैं चाहता हूं कि मुझे इतना अवकाश

दो कि मैं इस रथ-चक्र को पृथ्वी से निकाल कर रथ पर आरूढ़ हो जाऊँ। यह मैं तुमसे भयभीत होकर नहीं कह रहा, केवल इस समय का धर्म बतलाता हूँ।"

यह शब्द सुन कर श्याम जी से न रहा गया और उन्होंने कहा—"बड़ी बात है जो तुम्हें इस समय धर्म स्मरण हो रहा है! सत्य है नीच प्रकृति के लोग संकट में पड़ने पर दैव की निन्दा किया करते हैं, अपने पापों पर दृष्टि नहीं डाला करते! कर्ण! मैं तुमसे प्रश्न करता हूं, जब एक वस्त्रा, रजस्वला, कृष्णा को तुमने, सुयोधन ने, दुश्शासन ने, शकुनि आदि ने परस्पर परामर्श करके सभा में घसीट मंगवाया था, क्या उस समय तुम्हें धर्म का ध्यान आया था? जिस समय शकुनि ने तुम्हारी सम्मति से द्यूत से अनभिज्ञ महाराज युधिष्ठिर को निमन्त्रित कर जीता और पाण्डवों का सर्वस्व हरण कर लिया था, क्या उस समय तुम्हें धर्म स्मरण था? वनवास काल बीत चुकने पर जब पाण्डवों ने अपना राज्य तुम लोगों से मांगा था क्या उस समय तुम्हें धर्म-पालन का विचार आया था? अरे! जब तुमने कृष्णा को भरी सभा में दुर्वचन कहे थे, और उस पर ठट्ठा किया था, उस समय तुम्हारा धर्म कहाँ था? हां, हां जब भरी सभा में तुमने कृष्णा से कहा था कि पाण्डव अब नरकवासी हो गये, तुम अपने लिये और पति चुन लो। उस समय तुम्हारा धर्म कहां गया था? आज तुम्हें क्षात्र-धर्म स्मरण हो रहा है, पर मैं पुनः पूछता हूँ कि जिस समय अनेक महारथियों ने घेर कर अकेले बालक अभिमन्यु की हत्या की थी,

उस समय तुम्हारा धर्म कहीं घास चरने गया था ? यदि उन समस्त समयों में तुम्हें धर्म का विचार न आया, तो आज रथ का चक्र पृथ्वी में धंसने से यह विचार क्यों आ रहा है ? स्मरण रक्खो ! 'धर्मो रक्षति रक्षितः' रक्षा किया हुआ धर्म ही रक्षा करता है। जो पुरुष धर्म की रक्षा नहीं करता उसे यह आशा नहीं रखनी चाहिये कि धर्म उसकी रक्षा करेगा।"

यह शब्द सुन कर कर्ण का शीश झुक गया। उसने धनुष हाथ में लेकर इतनी बाण-वर्षा की कि पृथ्वी और आकाश ढंप गये। अस्त्रों-शस्त्रों की भयङ्कर बाढ़ मार कर उसने फिर रथ से कूद कर पहिये पर जोर मारा; परन्तु ठीक उस समय गाण्डीव से निकले हुए अंजुलक नामी एक बाण ने उसका शिर काट कर वायु में उड़ा दिया।

× × ×

कर्ण की मृत्यु का समाचार फैलते ही कौरवी सेना में घबराहट फैल गई। यद्यपि महाराज सुयोधन ने उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की प्रतिज्ञा करते हुए सेना को लौटाने का यत्न किया पर विजयी पाण्डव सेना के प्रवाह को रोकना असम्भव था। महाराज युधिष्ठिर इस अन्तर में शैय्या पर विश्राम न कर सके और युद्ध-भूमि में पहुंच गये थे; परन्तु दुर्बलता अधिक हो जाने के कारण युद्ध का अन्त न देख सके, इसलिये कर्ण के मारे जाने पर श्याम जी ने सेनापतियों को समर-भूमि में छोड़ कर यह समाचार स्वयं उन तक पहुंचाना चाहा। दोनों भ्राता रथ को

उड़ाते हुए शिविर में पहुँचे और शीघ्र ही महाराज के चरणों में शीश झुका कर बधाई देते हुए बोले:—

श्याम—धर्मराज को बधाई हो! जिस नीच ने भरी सभा में महारानी कृष्णा की हँसी उड़ाई थी उसके रक्त से आज पृथ्वी लाल हो रही है।

महाराज युधिष्ठिर के नेत्रों में आनन्द-अश्रु भर आये और उन्होंने अर्जुन और श्याम को आलिंगन करते हुए कहा, "जिसके सारथी आप हों उस योद्धा को युद्ध-भूमि में परास्त करने की शक्ति किस में है?"

शल्य सेनापति

कर्ण की मृत्यु के उपरान्त, भावी कार्यक्रम के विचारार्थ, महाराज सुयोधन के शिविर में युद्ध-सभा बुलाई गई, जिसके सम्मुख भाषण देते हुए कृपाचार्य्य जी ने कहा—"श्री महाराज ! हमें इस विषय की ओर से नेत्र मूंदने नहीं चाहिएं कि युद्ध के आरम्भ में हमारी शक्ति शत्रु से अत्यधिक थी; परन्तु अब अत्यन्त अल्प हो गई है। हमारे बड़े-बड़े महारथी और अतिरथी योद्धा दैव इच्छा से युद्ध-भूमि में शूरवीरता दिखा कर सुरपुर पहुँच चुके हैं। हमारी सेना भी अल्प रह गई है। इसलिये हमें विचार करना है कि अब क्या किया जाय ? नीति के ज्ञाता बृहस्पति जी का कथन है कि—"अल्प शक्तिशाली तथा समान शक्तिशाली को सन्धि की ओर विचार करना चाहिये, अधिक शक्तिशाली युद्ध को ढूंढे।" पाण्डवों की शक्ति आज हमसे सर्व प्रकार से अधिक है, इसलिये मेरी सम्मति यह है कि शत्रु को सन्धि का सन्देश भेजा जाय। मुझे ज्ञात है कि इसमें कई प्रकार की बाधाएँ होंगी; परन्तु हमें यह भी विदित है कि श्याम जी आरम्भ से ही युद्ध के विरुद्ध रहे हैं, महाराज युधिष्ठिर उनकी सम्मति मानते हैं, उनकी अपनी प्रकृति भी युद्ध को बढ़ाने के पक्ष में नहीं। इसलिये स्यात् थोड़े यत्न से ही भावी रक्तपात बन्द हो जाय।"

कृपाचार्य्य मौन हुए तो सभा में निस्तब्धता छा गई। सभा-जनों में से प्रत्येक की दृष्टि महाराज सुयोधन की ओर गई। कुछ काल निस्तब्धता रही, तत्पश्चात् महाराज ने कहा—"आचार्य्य जी ने जो कुछ कथन किया, हमारे हित के लिये ही है। वह आरम्भ से हमारे नेता रहे हैं, इस कारण यह कहने की आव-श्यकता नहीं कि वह जो कुछ कहते हैं, नीति और समय को सम्मुख रख कर है। परन्तु प्रश्न इतनी सुगमतापूर्वक सुलझने वाला नहीं, आप जानते हैं कि पाण्डव हमसे रुष्ट हैं। उनके विचार में हमने उन्हें बहुत कष्ट दिये हैं; यद्यपि मैं यह नहीं मानता। श्याम जी भी जानते हैं कि उनका सन्धि का प्रयत्न सफल नहीं हुआ था, इसलिये सन्धि का होना यदि सम्भव है तो केवल इस दशा में कि हम युधिष्ठिर के चरणों में गिर और उसके सेवक बन कर उसकी आज्ञानुसार चलना स्वीकार करें। यह वह बात है जिसके लिये कम से कम मैं तो अपने को प्रस्तुत नहीं देखता। सूर्य समान चमक कर और समुद्र पर्य्यन्त राज्य करके, हमारे लिये किसी के सम्मुख झुकना अथवा उसके हाथ के दिये हुए अन्न को खाना असम्भव है। मैं आचार्य्य जी के कथन को शिरोधार्य्य करता, परन्तु मेरे विचार में समय सन्धि के लिये उचित नहीं। इतनी आयु-भर बहुत ऊँच-नीच देख लिया। अब थोड़ी-सी जो शेष है उसके लिये स्वयं को गिराना उचित नहीं। (मृत्यु अवश्यम्भावी है, आज नहीं तो कल मरना है, युद्ध में नहीं तो शैय्या पर मरेंगे, फिर आत्मा को अपनी

दृष्टि में गिरा कर क्यों मरें ? जो मार्ग भीष्म, द्रोण, जरासन्ध, कर्ण, दुश्शासन और अन्य शूरवीरों ने दर्शाया है उसका अनुसरण क्यों न करें ? निस्सन्देह इस समय सन्धि करके जीवन-रक्षा करना उन वीरों के साथ विश्वासघात करना है। नहीं नहीं मुझसे यह न होगा। धिक्कार है! सौ बार धिक्कार है! उस राज्य को, जो आत्म हनन करके मिले। सुयोधन उसे स्पर्श करने को उद्यत नहीं।"

चारों ओर से साधु-साधु के शब्द सुनाई दिये। जिनके शान्त होने पर सुयोधन ने पुनः कहा "आप लोग मेरे कथन का समर्थन करते हैं, यह हर्ष का विषय है। मेरा विचार है कल के युद्ध में अपनी शक्ति विभाजित करने की अपेक्षा हम लोग संयुक्त प्रयत्न करें, परन्तु यह हमारे भावी सेनापति की सम्मति से होगा। इस कारण आप अपना सेनापति इसी समय निर्वाचिन कर लें, कि युद्ध का क्रम न टूटे।

अश्वत्थामा—मेरे विचार में मद्रराज शल्य इस कार्य के लिये उपयुक्त हैं। मुझे उनके गुण वर्णन की न आवश्यकता है न ही समय। आप सब उन्हें भली प्रकार जानते हैं।"

यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ और महाराज सुयोधन ने मद्रराज शल्य से कहा "भीष्म, द्रोण, कर्ण की पदवी आप को सौंपी जा रही है। आप शूरवीर हैं, बुद्धिमान हैं हमारे हितचिन्तक हैं। इस पद को ग्रहण करके सेना का संचालन कीजिये।

शल्य—(शिर झुका कर) सभा की आज्ञा शिरोधार्य्य। प्राण, धन और जो कुछ भी है, आप की सेवा में समर्पण करके यत्न करूंगा, कि आप के विश्वास का पात्र बन सकूं।

× ×

सूर्योदय के साथ ही युद्धारम्भ हो गया। कौरवी सेना संख्या में न्यून थी, पर शिर पर कफन बांध कर आई थी, इस लिये कठोरता-पूर्वक लड़ रही थी। युद्ध क्षेत्र की परिधि भी आज विस्तृत नहीं थी। कौरवी सेनापति की नीति युद्ध को दूर तक विस्तृत करके शक्ति क्षीण करने की नहीं थी। पाण्डवी सेना भी इस अन्तिम बाधा को दूर करके झगड़े का अन्त करने पर तुल रही थी। इसलिये अल्पकाल में रक्त-पात भयंकरता से होने लगा। कौरवी सेना के नवीन सेनापति की इच्छा थी कि पाण्डवी सेना के केन्द्र पर आक्रमण करके उसकी शक्ति को नष्ट कर दे। अल्पकाल में उसका सामना महाराज युधिष्ठिर की सेना से हो गया। उस समय सुयोधन, शकुनि, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा आदि सेनापति भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न आदि महारथियों से युद्ध में प्रवृत थे। महाराज युधिष्ठिर को सम्मुख देख कर मद्रराज ने प्रथम प्रहार उन के घोड़ों पर किया जिससे कि उन्हें रथहीन कर दे ; परन्तु महाराज का दूसरा रथ निमिष मात्र में उन के पास आगया, उस में आरूढ़ होते ही उन्हों ने भयानक शस्त्र वर्षा से शत्रु को ढांप दिया। वृकोदर भीम भी महाराज पर आक्रमण होते देख कर उन की सहायता

को आगे बढ़े, और उनके धनुष से निकले हुये बाणों ने मद्रराज का कवच विदीर्ण कर दिया। अब महाराज युधिष्ठिर ने एक भयानक शक्ति हाथ में ले कर उसे शत्रु पर बड़े जोर से छोड़ा। शक्ति का महाराज के हाथ से छूटना था कि सेनापति शल्य कटे हुये वृक्ष की भान्ति निश्चेष्ट होकर रथ से नीचे गिरे।

शत्रु सेना के सेनापति के गिरते ही पाण्डवी सेना द्विगुण उत्साह से आगे बढ़ी, और अल्पकाल में ही पठान नरेश शकुनि और उसके युवराज उलूक ने जो पाण्डवी सेना के पृष्ठ पर आक्रमण कर रहे थे, सहदेव के हाथ से पृथ्वी सूंघी।

कौरवी सेना में भगदड़ मच गई, जिसे देख कर महाराज सुयोधन ने ललकार कर कहा "शूरवीरो युद्ध-भूमि से भाग कर तुम मृत्यु से बच नहीं सकते। पाण्डवी सेना तुम्हें विल में घुसते हुये चूहों की भान्ति नष्ट कर देगी। हां, यदि जम कर सामना करोगे, तो कोई कारण नहीं सफल न हो।

महाराज के इन शब्दों ने भागती हुई सेना का धैर्य्य बंधाया। उधर से यादव सरदार कृतवर्मा आगे बढ़े, और युद्ध फिर भीषण हो गया। अल्पकाल तक युद्ध भयानक होता रहा, जिस में सुयोधन के शेष भ्राता भीम और धृष्टद्युम्न के हाथों मारे गये। महाराज सुयोधन उस समय एक घोड़े पर सवार अश्वारोही सेना का संचालन कर रहे थे, श्याम जी की दृष्टि उन पर पड़ी और उन्हों ने अर्जुन का ध्यान उधर आकर्षित कर के रथ बढ़ा दिया। अब भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, सात्यकि, धृष्टद्युम्न सर्व

सेनापतियों की सेनाएं पिल पड़ीं। परिणाम यह हुवा कि कौरवी सेना तित्तर-बित्तर हो गई। पाण्डवी सेना ने बहुत दूर तक उसका पीछा करके शवों के ढेर लगा दिये। यहां तक कि युद्ध क्षेत्र नितान्त जन-शून्य होगया।

सुयोधन का अन्तिम युद्ध

"शिकारी एक समाचार लाये हैं, जिस से सुयोधन का पता मिलने की सम्भावना है।"

युद्ध-समिति के सम्मुख महाराज युधिष्ठिर से वृकोदर भीम ने कहा।

युधिष्ठिर—क्या समाचार है ?

भीम—वह हमारे शिविर के लिये शिकार मार कर लिये आ रहे थे। मार्ग में विश्राम करने के लिये एक सरोवर के तट पर बैठ गये। उस सरोवर के दूसरे तट पर तीन अश्व बँधे थे, जिन के आरोही भी निकट ही बैठे थे। उस समय किसी ओर से यह शब्द आ रहे थे, "अहोभाग्य ! जो आप लोग इस युद्ध से बच रहे। आप थकित हैं, मैं भी घायल हूं, उन का बल वृद्धि पर है, इस समय युद्ध उपयुक्त नहीं। आपका मन ऊँचा है मुझे यह विदित है; पर समय पराक्रम दिखाने का नहीं। आज रात्रि विश्राम कर लें, कल शत्रुओं से युद्ध करेंगे।" यह सुन कर वह तीनों अश्वारोही एक ओर को चले गये।

युधिष्ठिर—(कुछ सोच कर) आप ने कुछ और भी पता निकाला ?

भीम—गुप्तचर कहते हैं, कि सुयोधन उस सरोवर के भीतर

प्रविष्ट हुये थे, सम्भव है अब भी वहीं हों। वह उस से निकलते देखे नहीं गये। यह भी ज्ञात हुआ है कि वह तीनों जो उन से वार्त्तालाप करके गये थे, कृपाचार्य्य, अश्वत्थामा और कृत-वर्मा थे।

× × ×

"सुयोधन! सब क्षत्रियों और अपने कुल का नाश करके अब इस जल के भीतर छिप गये हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता। क्या तुम्हारा स्वाभिमान कहीं चला गया जो भयभीत होकर स्त्रियों की भान्ति छिप रहे हो? तुम क्षत्रिय हो, कुरु कुल के नेता हो, इस कुल को कलंक न लगाओ। बाहर निकल कर युद्ध करो। रण-क्षेत्र से भागना आर्यों का कर्तव्य नहीं। क्या आज पर्य्यन्त जो कुछ किया वह केवल कर्ण और शकुनि के ही बल पर था?

सरोवर के तट पर खड़े होकर श्याम जी की अनुमति से धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा।

उत्तर में बड़े स्पष्ट शब्दों में जल के भीतर से आवाज आई, "मनुष्य में भय उत्पन्न होना आश्चर्य्य नहीं; पर हमारा यहां आने का कारण भय नहीं। रथ न रहा, बाण न रहे, सारथी मारा गया, सेना न रही, थकित होने के कारण विश्राम के लिये यहां आ गये हैं। तुम भी कुछ काल विश्राम कर लो। फिर युद्ध आरम्भ हो जावेगा।"

युधिष्ठिर—बहुत विश्राम कर चुके, चिरकाल से तुम्हें ढूंढ रहे हैं। अब आओ युद्ध करो। या तो हम लोगों को मार कर

राज्य करो अन्यथा हमारे हाथों से मर कर स्वर्ग-सुख भोग करो।

सुयोधन—जिन भ्राताओं के लिये राज्य की इच्छा थी वह सब मरे पड़े हैं, अब इस शून्य राज्य को पाने की इच्छा नहीं रही। यूं तो अपने भीतर अब भी यह शक्ति है कि तुम और तुम्हारे सहायकों का विनाश कर दूं, पर क्या लाभ? जाओ अब यह पृथ्वी तुम्हें दी।

युधिष्ठिर—जल के भीतर बैठे बैठे दान न करो। इस समय यदि तुम्हारे भीतर देने की शक्ति होती तो भी हम तुम्हारे दान को स्वीकार न करते। हाँ, तुम्हें परास्त करके पृथ्वी को भोगने की इच्छा अवश्य है। इसलिये मुफ्त का दान देकर जी न पर-चाओ। हिम्मत और साहस है, तो बाहर निकलो। देना ही था, तो उस समय देते जब श्याम जी पांच ग्राम देने के लिये कह रहे थे, और जब तुम सूई की नोक के बराबर भूमि देने को प्रस्तुत नहीं थे। आज बड़े दानवीर बन रहे हो, कि हाथों में देने को कुछ नहीं।

यह ललकार सुन कर सुयोधन अधिक न सहन कर सका और जल से बाहर निकल कर बोला:—"तुम लोग इतने हो, रथारोही हो, शस्त्रधारी हो, हम अकेले हैं, न रथ है, न सहायक, न शस्त्र। इस लिये सबसे युद्ध करने का उत्साह नहीं कर सकते। यदि लड़ना है तो एक एक करके युद्ध करलो। अनेक का एक से युद्ध धर्मविरुद्ध भी तो है।

युधिष्ठिर—अहोभाग्य जो आज तुम्हें धर्म स्मरण हो आया, पर यह धर्म उस दिन कहाँ था जब अकेले अभिमन्यु को इतने महारथियों ने घेर कर मारा था ? उस समय तुम्हें क्षात्रधर्म क्यों भूल गया था ? सत्य है विपत्ति पड़ने पर धर्म सबको स्मरण हो आता है। सुख के समय परलोक का द्वार सदैव बन्द ही रहता है। पर इन बातों से अब क्या लाभ ? तुम कवच लेकर जो अस्त्र चाहो चुन लो, और हममें से जिससे चाहो युद्ध कर लो। हम लोगों में से यदि एक को भी मार लो तो सारा राज्य तुम्हारा।

यह सुनकर सुयोधन का मुख खिल गया, और उसने कवच धारण करके गदा हाथ में लेते हुए कहा—"आप में से जो भी हमें जीतने का गर्व करता हो, पदाति होकर गदा के साथ हम से युद्ध करले।"

यह सुनकर अर्जुन और भीम ने श्याम जी की ओर देखा तो उनका मुख आवेश से लाल हो रहा था। अर्जुन और भीम को सम्बोधन करके उन्होंने कहा "प्रतीत होता है कि विधाता ने पाण्डवों के भाग्य में राज्य नहीं सदैव के लिये वनवास ही लिखा है। राजा युधिष्ठिर अभी द्यूत के अभ्यास को नहीं भूले और एक दांव पर फिर सब कुछ लगा बैठे हैं। (युधिष्ठिर से) आपने क्या विचार कर यह कह दिया कि यदि यह आप में से एक को मार दे तो सारा राज्य इसका ? यह तो अच्छा हुआ कि इसने युद्ध में आपको, अर्जुन को अथवा

नकुल सहदेव को नहीं चुन लिया। मुझे ज्ञात है कि आप पांचों भ्राताओं में से एक भी ऐसा नहीं, जो गदा युद्ध में सुयोधन का सामना कर सके। मुझे ज्ञात है कि तेरह वर्ष पर्यन्त सुयोधन ने केवल भीम को गदा युद्ध में परास्त करने के लिये लोहपुरुष पर गदा का अभ्यास किया है। इस कारण भीम भी उसके सम्मुख खड़ा नहीं हो सकता। वह अधिक बलवान अवश्य है, परन्तु सुयोधन का अभ्यास अत्यधिक है। आपका वही पुरातन द्यूत अन्य रूप में सम्मुख आरहा है। आपने इस एक शब्द से शत्रु को अधिक शक्तिशाली बना दिया है।

भीम—(मुस्कराते हुए) भगवन्! आप दुःखी न हों। आप देखेंगे कि आज मैं दुर्योधन को मार कर इस सदैव की शत्रुता का अन्त कर दूंगा। इसने लाख अभ्यास किया हो, मेरी गदा इसकी अस्थियाँ तोड़े बिना नहीं रहेगी। आप देखते तो रहें कि क्या होता है?

श्याम—(कुछ शान्त होकर) भाई! धर्मराज जी ने तो जो कर दिया कर दिया, परन्तु तुम्हें इसे धृतराष्ट्र के अन्य पुत्रों की भांति मूली-गाजर नहीं समझना चाहिए। तुमने दुःशासन को मार कर एक प्रतिज्ञा पूर्ण की है, अब सुयोधन की जाँघ तोड़कर द्वितीय प्रतिज्ञा पूर्ण करनी है। इसके लिये बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

भीम—आपकी कृपा से मैं आज (सुयोधन की ओर देखकर) इसे मारकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करूंगा।

यह कह और सुयोधन के सम्मुख जाते हुए उसने कहा "दुर्योधन ! तुम्हारे माता-पिता तुम्हें भले ही सुयोधनक, हें पर मुझे ज्ञात है कि तुम दुर्योधन हो, सुयोधन नहीं। आज पर्यन्त जितने पाप किये हैं उनके प्रायश्चित के लिये प्रस्तुत हो जाओ।

सुयोधन—बको मत ! बड़े बोल का शिर नीचा।

यह कह कर दोनों ने गदा उठाई, और लोहकार की अहरण का दृश्य बंध गया। दोनों वीर इस युद्ध में अपने को अद्वितीय समझते थे, दोनों एक ही गुरु के शिष्य थे, दोनों के शरीर लोहे की भांति कठोर थे, इसलिये युद्ध बड़ा मनोरञ्जक हो गया। एक शूरवीर प्रहार करता था तो दूसरा पैतरा बदल कर वार खाली दे देता था। एक आवेश में आकर आगे बढ़ता था, तो दूसरा उछल कर उसके शिर पर गदा दे मारता था। घण्टों यही अवस्था रही, फिर सुयोधन ने आंख बचाते हुए भीम के वक्ष पर प्रहार किया। गदा इतने जोर और इतने भयानक शब्द से भीम के हृदय पर पड़ी कि दर्शकों का बहता रक्त रुक गया, क्योंकि विचार था कि इस एक ही प्रहार ने भीम की पसलियाँ तोड़ दी होंगी। पर उनके विस्मय की सीमा न रही जब देखा कि भीम गदा ताने प्रचण्ड आंधी की भांति सुयोधन की पसली पर आक्रमण कर रहा था, और शत्रु दोहरा हो रहा था। दूसरे क्षण में सुयोधन ने भीम की कनपट्टी पर प्रहार किया, जिससे बहता हुआ रक्त दर्शकों को मस्त हाथी के बह रहे मद का स्मरण कराता था। भीम उस

समय क्रोध में अपने को विस्मृत कर रहा था। उसकी गदा स्फुर्ति पूर्वक शत्रु पर पड़ रही थी। पर शत्रु भी कच्ची कौड़ियों खेला नहीं था, वह भीम के क्रोध से लाभ उठाकर उस पर भारी प्रहार कर रहा था। उस समय श्याम जी ने समीप खड़े अर्जुन के कान में कहा "भीम क्रोध से भर रहे हैं और क्रोध के वश में उन्हें अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत हो गई है, शत्रु इससे लाभ उठा रहा है।

इतने में भीम ने शत्रु पर एक भयङ्कर प्रहार करके पीछे मुड़ कर ऐसे देखा मानो सहायकों से वाह वाह की इच्छा रखता हो। अर्जुन ने उसके साथ दृष्टि मिलते ही अपनी जाँघ पर हाथ मारा। यह देखकर भीम के युद्ध का ढंग सर्वथा परिवर्तित हो गया। अब वह शत्रु को यह विचार दे रहा प्रतीत होता था कि वह गदा-युद्ध के रहस्यों से अनभिज्ञ है।"

सुयोधन उसे दबाये चला जा रहा था, वह युद्ध प्रवीण था, और समझता था कि भीम उसके सम्मुख अधिक समय पर्य्यन्त नहीं ठहर सकता। उसे यह भी ज्ञात था कि इस युद्ध के परिणाम पर उसके भाग्य का पांसा लगा हुआ है। इसलिये वह सारे-दांव पेंच प्रयोग कर रहा था।

श्याम जी ध्यानपूर्वक यह सब देख रहे थे, और अर्जुन से कह रहे थे" धर्मराज ने आज भयंकर भूल की है, शुक्राचार्य ने कहा है "जो शत्रु भागकर फिर लौटें अथवा मरते मरते बच रहें, उनसे सदैव डरना चाहिए; क्योंकि उनका निश्चय एक

होता है, वह जीवन से निराश होकर जिस समय युद्ध करते हैं तो इन्द्र भी उनका सामना नहीं कर सकता।" सुयोधन भाग चुका था, उसकी सेना मारी जा चुकी थी, यहाँ से निकल जाना चाहता था, राज्य पाने की उसे आशा नहीं रही थी, द्वन्द्व युद्ध में उसे ललकारना बुद्धिमत्ता नहीं थी। इस समय वह जिस शूरवीरता से लड़ रहा है, उससे यदि वह भीम के मारने और तुम लोगों से राज्य छीनने में सफल हो जाय तो विस्मय क्या है ?

इधर यह वार्त्तालाप हो रहा था, उधर भीम ने क्रुध होकर शत्रु पर प्रहार किया। सुयोधन प्रहार को बचाने के लिये उछला। भीम ने उससे लाभ उठाते हुए सिंह की भांति गरज कर गदा सुयोधन की जाँघ पर दे मारी। वार का पड़ना था कि गदा-युद्ध का वह अद्वितीय योद्धा पृथ्वी पर गिरा, गदा के भीषण प्रहार ने दोनों टांगें तोड़ दीं। उसे गिरता देखकर भीम ने गरजकर कहा "ओ पापी ! यही जाँघ है न, जिन पर तू पतिव्रता कृष्णा को बिठाना चाहता था ?" फिर एक और प्रहार गिरे हुए सुयोधन के शिर पर करके कहा "ले अब किये का फल भोग।"

रक्त-रात्रि

"मामा जी! युद्ध के लिये जा रहा हूं। आपकी क्या सम्मति है ?"

घने वन में सघन वट वृक्ष तले सोये हुए कृपाचार्य्य को जगा कर अश्वत्थामा ने कहा—

कृपाचार्य्य—इस समय ?

अश्वत्थामा—आज युद्ध-भूमि में गिरे हुए महाराज सुयोधन ने मुझे सेनापति नियुक्त किया है। मेरी सेना आप और कृतवर्मा पर समाप्त हो जाती है। इस सेना के साथ शत्रु को हानि पहुँ-चाना असम्भव है; परन्तु अभी-अभी इस वृक्ष के ऊपर एक पक्षी मुझे शत्रु से प्रतिशोध लेने की विधि सिखा गया है।

कृतवर्मा—क्या सेनापति पक्षियों की भाषा भी सीख गये ?

अश्वत्थामा—आप निद्रामग्न थे; परन्तु मैं शत्रु पर आक्रमण करने की विधि सोच रहा था। आपको ज्ञात होगा इस वृक्ष पर सैंकड़ों काक शिविर डाले पड़े हैं। सायंकाल के समय उनकी कांय-कांय हम लोगों ने सुनी थी। उनके मृत शरीर इस समय चारों ओर पड़े हैं।

कृतवर्मा और कृपाचार्य्य—यह कैसे ?

अश्वत्थामा—अल्प समय हुआ, एक उल्लू चुपके से इस स्थान पर पहुँचा। काक निद्राग्रस्त थे। उल्लू ने एक-एक करके सब को

मार गिराया । इस प्रकार उसने बलवान शत्रु से प्रतिशोध लेने की विधि मुझे सिखा दी।

कृपाचार्य्य—वत्स ! हम सब घायल हैं, कुछ विश्राम कर लो, प्रातः तीनों शत्रु से युद्ध करेंगे।

अश्वत्थामा—मामा जी ! दिन के समय पाण्डवों से युद्ध करना, जब श्याम जी उनकी रक्षा कर रहे हों, सुगम नहीं। आप को ज्ञात है कि जिस दिन पिता जी की हत्या हुई थी, मैंने यह शपथ ली थी कि धृष्टद्युम्न और अन्य पांचालों को उसी भांति मारूंगा, जिस भांति इन्होंने पिता जी का वध किया था। आज राजा को मरते देख कर मेरी वह प्रतिज्ञा दृढ़ हो गई है और मैं जानता हूं कि शत्रु के नाश करने का यदि कोई समय हो सकता है तो केवल यही।

कृपाचार्य्य—विपद् ने हमारी बुद्धि कुंठित कर दी है, हमें महाराज धृतराष्ट्र से सम्मति लेनी चाहिये।

अश्वत्थामा—जितने सम्मति देने वाले अधिक होंगे, उतनी ही सम्मतियां अधिक होंगी। आप चलें अथवा न चलें, मैं तो आज की रात्रि को हाथ से नहीं खोऊंगा।

यह कहा और रथ में घोड़े जोतने आरम्भ कर दिये। यह देखकर उसके दोनों साथियों ने कहा—"चलिये, दुख और सुख में हम आपके साथ हैं।"

× × ×

पाण्डवी शिविर में चारों ओर निस्तब्धता थी, शत्रु का विनाश

करके अठारह दिन के पश्चात् सेनापति और सेनानी निश्चिन्त होकर सोये थे, कि दबे पाँव अश्वत्थामा धृष्टद्युम्न के शिविर में जो प्रगाढ़ निद्रा में अचेत था, प्रविष्ट हुआ। उसने जाते ही पाद प्रहार से सोने वाले को जगा दिया और अभी वह सचेत भी न हुआ था कि अश्वत्थामा ने केशों से पकड़ कर पृथ्वी पर घसीटते हुए लातों और घूंसों की मार से अधमरा करते हुये कहा—"ओ पापी! गुरु संहाती! उठ! अपने पापों का प्रायश्चित कर!!

धृष्टद्युम्न वीर था, परन्तु विवश था, वह निशस्त्र था, शरीर पर हल्का सा वस्त्र था, निद्रा से सहसा उठने के कारण घबराया हुआ था, शत्रु शिर से पाँव तक सशस्त्र था और पूर्ण तैयारी के साथ लोह घूंसों से उसकी हड्डियाँ तोड़ रहा था। उसने हाथ-पाँव मार नखों से शत्रु का मुंह नोचने का यत्न किया, पर सफलता न हुई। परिणाम यह हुआ कि वह वीर जिसने युद्ध भूमि में बड़े-बड़ों के छक्के छुड़ाये थे, अल्पकाल में ही सदैव की निद्रा सो गया।

धृष्टद्युम्न से निपट कर अश्वत्थामा ने शिखण्डी, उत्तमौजा और यधामन्यु का संहार किया और द्रौपदी के पांच पुत्रों की हत्या करके जो सम्मुख आया, उसे कृपाण के घाट उतारा। उस समय वह सिर से पाँव तक रक्त से भरा हुआ एक भयानक राक्षस दीख रहा था। पाण्डवी सेना में उसकी मार-धाड़ के कारण चारों ओर कोलाहल मच गया। लोगों ने समझा कोई भारी सेना रात्रि के अन्धकार में विनाश कर रही है। इसलिये सेनानी कवच पहन और कृपाण सूंत कर पिल पड़े और एक दूसरे पर ही लोहा

बरसाने लगे। कई भागते हुए शिविर से बाहर निकले, परन्तु वहाँ दो नाकों पर कृपाचार्य्य और कृतवर्मा यमराज का रूप धारण कर रहे थे, उनसे न बच सके। उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि यमदूत अश्वत्थामा, कृपा और कृतवर्मा का रूप धारण करके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं।

पाण्डवी सेना के एक भारी भाग और बहुत से सेनापतियों के रक्त से हाथ रंग कर अश्वत्थामा ने पाण्डव भाइयों और श्याम की खोज में शिविर का कोना-कोना छान मारा, परन्तु सफलता न हुई। श्याम जी की दूरदर्शिता ने उन्हें शिविर से बहुत दूर रात्रि विश्राम की सम्मति देकर इस भावी विपत्ति से सुरक्षित कर दिया था।

रात्रि समाप्त हो रही थी, जब रक्त से लथपथ अश्वत्थामा शिविर से बाहर निकला और अपने दोनों सहायकों को साथ लेकर वहाँ पहुँचा जहाँ महाराज सुयोधन जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे थे, वन्य-जन्तु उनके इर्द-गिर्द एकत्र थे और वह बड़ी कठिनता से मिट्टी के ढेले मार-मार कर उन्हें दूर रखने का यत्न कर रहे थे। राजा को इस अवस्था में देखकर अश्वत्थामा का जी भर आया और उसने अर्ध-मूर्छित सुयोधन को पुकारते हुए कहा—"महाराज! सुधि कीजिये। आनन्द समाचार लाया हूं।"

सुयोधन—(सिर ऊपर उठा कर) क्या?

अश्वत्थामा—हम तीनों नितान्त सुरक्षित हैं, परन्तु शत्रु सेना का नाश हो गया। पाण्डवी सेना के सेनापतियों में से पांच

पाण्डव भाइयों, सात्यकि और श्याम के अतिरिक्त और कोई नहीं बचा। वह भी स्यात् न बच सकते यदि श्याम का चातुर्य्य उन्हें शिविर से बाहर न ले गया होता।

सुयोधन—(हर्षित होकर) साधुः! जो कार्य भीष्म, कर्ण और आपके पूज्य पिता से न हो सका, वह आपने कर दिखाया। मेरा आत्मा अब आनन्द से इस शरीर को त्यागता है। अब हम पुनः स्वर्गलोक में मिलेंगे।

यह कहकर वह शूरवीर जिसने सुई की नोक के बराबर भूमि शत्रु को देना अस्वीकार किया था, जिसे अपने शौर्य्य, बुद्धि और नीति-निपुणता पर इतना गर्व था कि जगत के महानतम मानव का कथन ध्यान में न लाता था, इस पृथ्वी को अनाथ छोड़कर चल दिया।

अश्वत्थामा का अन्तिम युद्ध

"ठहर जा पापी हत्यारे ! इतने निष्पापों के रक्त से हाथ रंग कर अब साधुओं का वेश बना कर इस वेश को कलंकित करना चाहता है ?"

व्यास जी के आश्रम में बैठे हुए, शरीर पर भस्म रमाये, अश्वत्थामा को पहचान कर वृकोदर भीम ने कहा।

अश्वत्थामा ने दृष्टि उठाई तो महाकाय भीम गदा उठाये उसकी हड्डियाँ तोड़ने को उद्यत लपका आ रहा था। पुनः देखा तो ज्ञात हुआ कि कुछ अन्तर पर एक और रथ श्याम जी के सारथ्य में सरपट दौड़ा आ रहा था। आश्रम के निकट पहुँच कर वह रथ रुका और उसमें से धर्मराज युधिष्ठिर और वीर शिरोमणि अर्जुन अपने शस्त्र संभालते हुए बाहर निकले।

अश्वत्थामा के लिये न भागते बन पड़ता था न ठहरते। ऋषि-आश्रम में छिपने को स्थान न था, उसके अपने शरीर पर कवच न था, जिससे कि शत्रु के आक्रमण का सामना कर सकता। स्वयम् को भयानक स्थिति में देख कर उसने ब्रह्मशिर नामक दिव्य अस्त्र को छोड़कर भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर और श्याम को लक्ष्य बनाया।

अस्त्र के चलने से भयानक धमाका हुआ। कोसों तक पृथ्वी

हिल गई। चारों ओर अग्नि और अंगारियां निकलने लगीं, और थोड़े क्षणों में उस आश्रम में, जहाँ प्रत्येक ओर शान्ति का साम्राज्य था, विनाश का दृश्य दीख पड़ने लगा।

अश्वत्थामा को इस शस्त्र को छोड़ते देख कर श्याम जी ने अर्जुन से कहा—"वही हुआ जो मैंने तुमसे कहा था। मुझे ज्ञात था कि इस पापी के पास यह अस्त्र है, इसे प्रयोग करने से यह नहीं टलेगा। इस निर्दयी को पाठ पढ़ाने की इसके अतिरिक्त और कोई विधि नहीं कि उत्तर में तुम भी वही अस्त्र छोड़ो।"

अर्जुन तैय्यार ही थे, उन्होंने अपनी रक्षा में रथ से ब्रह्मशिर निकाला और निमिषमात्र में वह स्थान जहाँ ऋषि-मुनि शान्ति प्राप्त करने के लिये दूर-दूर से आते थे, अग्नि-कुण्ड बन गया।

यह देखकर व्यास जी विस्मित हो गये। वह और नारद मुनि (जो अकस्मात् घूमते-घूमते इधर आ गये थे) दोनों अस्त्रों के मध्य में खड़े होकर बोले—"यदि तुम लोगों ने इस आश्रम की शान्ति भंग करने की ठान रक्खी है तो हम लोगों का रक्त बहा कर ही ऐसा कर सकोगे।"

अर्जुन ने इन दोनों महात्माओं को अपने अस्त्र की मार के भीतर देख कर हाथ रोक लिया; परन्तु अश्वत्थामा की क्रोधाग्नि अभी शान्त नहीं हुई थी। उसे धमकाते हुए व्यास जी ने कहा—"अश्वत्थामा ! तुम ब्राह्मण हो, परन्तु प्रतीत होता है तुम्हारा हृदय पाषाण बन चुका है। इतने अधर्म करके अभी तक तुम्हारा मन नहीं भरा, और तुम अब हम लोगों का रक्त बहाना चाहते

हो। मैं देखता हूं कि अर्जुन ने हमें उठते देख कर ही अपना हाथ रोक लिया है; परन्तु तुम्हारे हाथ का अस्त्र अभी अपना कार्य कर रहा है।"

अश्वत्थामा—मेरा यह अस्त्र पाण्डव-कुल का नाश करके रुकेगा। मेरा यह अस्त्र गर्भिणी उत्तरा का गर्भपात करके शान्त होगा।

यह सुन कर श्याम भी मौन न रह सके और उन्होंने कहा—"पापी ! नीच ! ब्राह्मण-कुल-कलंक ! सहस्रों पुरुषों का, शस्त्रहीन पुरुषों का, निद्राग्रस्त पुरुषों का, तस्करों की भांति रक्त बहा कर तेरा हृदय शान्त नहीं हुआ और तू अब न केवल पाण्डवों का नाश चाहता है बल्कि उनकी भावी सन्तान का भी नाश करके इस कुल का बीज नाश करना चाहता है; परन्तु स्मरण रख ! भावी तेरे हाथों में नहीं। तू देखेगा और अपने नेत्रों से देखेगा कि उसी उत्तरा के गर्भ से जिसका तूने इस समय अपने पापी मुख से नाम लिया, पाण्डव-कुल-सूर्य जन्म लेगा, जीवित जागृत जन्म लेगा, वह सम्पूर्ण भारतवर्ष को अपनी रश्मियों से देदीप्यमान करेगा। और तू ... ... हाँ तू ... ... अपने पापों का प्रायश्चित् करने के लिये, चिरकाल पर्य्यन्त जीवित रहेगा। तेरे शरीर के घावों में कीट पड़ेंगे। उनसे दुर्गन्धि आयेगी। रक्त और पीप बहेगी। ... ... और कोई व्यक्ति तुम्हें पास फटकने न देगा ... ...।"

श्याम जी का मुख जो सर्वदा सुस्मित रहता था, आवेश से रक्त-वर्ण हो रहा था। व्यास जी उन्हें इस दशा में देख कर काँप

उठे और उनके मुख से निकला "शान्ति ! प्रभु ! शान्ति ! भगवन् ! शान्ति !"

श्याम जी रुक गये, तो व्यास जी ने पुनः अश्वत्थामा को डांटते हुए कहा—"अश्वत्थामा ! अपनी इस नरकमयी अग्नि को रोकोगे अथवा मुझे अपने आश्रम की रक्षा के लिये कोई अन्य उपाय करना होगा ? मैं देखता हूं पहल तुमने की है। अर्जुन का अस्त्र तुम्हारे इस अस्त्र का प्रत्युत्तर था और हमें देखते ही रोक भी लिया गया; परन्तु तुम अभी अपना कार्य कर रहे हो।"

अश्वत्थामा को विवश होकर अपना अस्त्र लौटाना पड़ा। तब व्यास जी की मध्यस्थता से युद्ध का अन्त इन शर्तों पर हुआ :—

(१) अश्वत्थामा शस्त्र डाल दे।

(२) पाण्डव उसे अभय-दान दें।

(३) अश्वत्थामा अपने शिर की मणि को, जो बहुमूल्य थी, विजयी को समर्पण करे।

× × ×

अश्वत्थामा से छीनी हुई मणि को महारानी कृष्णा के चरणों में अर्पण करते हुए वृकोदर भीम ने कहा—"इसे ग्रहण कीजिये, आपके पुत्रों की हत्या करने वाले ने कर्मों का फल पा लिया। हमने उसे गुरु-पुत्र जान कर अभय-दान दे दिया। वह जीवित है, पर मृतक से भी बुरी अवस्था में। आप अब उठें, क्षात्र-धर्म का ध्यान करें, क्षत्राणियाँ शत्रु के हाथ से मरे हुए के लिये रोया

नहीं करतीं; दुर्योधन मारा गया, दुश्शासन का रक्त मैंने पान किया, द्रोण-पुत्र का यश गिरा दिया गया, आपको अब प्रसन्न होना चाहिये।

कृष्णा—(आकाश की ओर देख कर) धन्य हो प्रभु! धन्य हो! (महाराज से) गुरु-पुत्र मेरे गुरु हैं। उचित ही है जो आपने उनके प्राण नहीं लिये। आप इस मणि को अपने शिर पर धारण करें। यह गुरु-प्रसाद है।

धृतराष्ट्र और गांधारी

पाण्डवी शिविर में समाचार मिला, कि मृतकों का अन्तिम दर्शन और संस्कार करने के लिये कुरुवंश की समस्त रानियों और अन्य स्त्रियों सहित महाराज धृतराष्ट्र, महारानी गान्धारी और कुन्ती कुरुक्षेत्र की ओर आ रहे हैं, तो धर्मराज ने चारों भ्राताओं, महारानी कृष्णा, सात्यकि, युयुत्सु और श्याम सहित बहुत दूर आगे जाकर उनका स्वागत किया।

महाराज धृतराष्ट्र के सिर पर दुख का पर्वत टूट पड़ा था। उन के बाह्य-चक्षु तो पहले ही बन्द थे, पुत्रों की मृत्यु हृदय-चक्षुओं को भी बंद कर रही थी। महात्मा विदुर उन्हें समझाते थे, बार-बार समझाते थे, महर्षि व्यास धैर्य्य बंधाते थे, परन्तु चित्त की लगी का बुझना सुगम नहीं था, और वह उन के जीवन-वृक्ष को निर्दयता से छेद रही थी।

पड़ाव के निकट पहुंच कर महाराज युधिष्ठिर ने बिलखती हुई स्त्रियों का रुदन सुनते हुए, महाराज धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हो कर, उन के चरण स्पर्श किये। महाराज ने उन्हें वक्ष से लगाया, और रोते हुए बोले, "कहो वत्स! सकुशल तो हो? वृकोदर कहाँ हैं?"

श्याम जी वृद्ध राजा के मुख के उतार-चढ़ाव का अध्ययन

कर रहे थे, उन्होंने जब उन का भीम को मिलने के लिये आग्रह देखा, तो वह लोह-पुरुष जिस पर महाराज सुयोधन वर्षों पर्य्यन्त गदा-युद्ध का अभ्यास करते रहे थे, जो उन के शिविर से प्राप्त हुआ था, आगे धकेल कर बोले "भीम उपस्थित है।" यह सुनते ही अन्धराज ने दोनों भुजाएँ फैलाई, और लोह-भीम को आलिंगन कर के ऐसे जोर से दबाया कि लोह-पुरुष कड़कड़ा कर दोहरा हो गया।

अन्धराज ने समझा भीम का अन्त हो गया, और वह "हाय भीम" "हाय भीम" कह कर रुदन करने लगे। भीम सम्मुख खड़े कौतुक देख रहे और मुस्करा रहे थे, कि श्याम जी ने राजा को रुदन करते देख कर कहा, "श्री महाराज! व्याकुल न हों। भीम जीवित है, जिस वस्तु को आपने अपने आलिंगन से तोड़ा है वह लोह-पुरुष है। मुझे ज्ञात था कि आप के आलिङ्गन से भीम जीवित नहीं निकल सकता इसलिये मैंने यह मूर्ति आपके सम्मुख कर दी थी।"

लोहे को जोर से भींचने के कारण महाराज धृतराष्ट्र के वक्ष से रक्तस्राव हो गया था। श्याम जी के यह शब्द सुन कर उन पर घड़ों जल पड़ गया और वह कुछ न कह सके।

सेवकों ने आकर उनका रक्त साफ़ किया, स्नान कराया, वस्त्र बदले, तब उनका क्रोध शान्त देख कर श्याम जी ने कहा, "श्री महाराज! आप ने वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास श्रवण किये हैं। इतने ज्ञानी और बुद्धिमान होकर अन्य के दोष को विचारे बिना

जब आप इतने क्रुद्ध हुए, तो अन्य जनों का क्या कहना ? आपको विस्मरण नहीं करना चाहिये कि जब समय था तो मैंने, भीष्म जी ने, द्रोण जी ने, विदुर जी ने आपको कितना समझाया था ? वह सब व्यर्थ गया। अब जब वह अपराध फलीभूत हो रहा है, तो आप भीम को अपराधी मान कर उसे मारने पर उद्यत हो गये हैं। निस्सन्देह जो व्यक्ति आप की पुत्र-वधू कृष्णा जैसी पतिव्रता देवी का भरी सभा में अपमान कर के उसे जांघ पर बिठाने का आग्रह कर सकता है, इस योग्य नहीं कि उसे जगत में जीवित रहने दिया जाय।"

स्पष्ट कथन सुन कर राजा धृतराष्ट्र मौन हो गये। लज्जा से उन के मुख पर स्वेदकण प्रकट हो रहे थे, जिन्हें पोंछते हुए उन्होंने कहा—"श्याम जी ! आप ने सत्य कहा, पुत्र-स्नेह ने मेरा धैर्य्य खो दिया। उचित ही हुआ जो आपकी बुद्धिमत्ता से भीम मेरे सम्मुख न आया।"

× × ×

महाराज धृतराष्ट्र को धैर्य्य बंधा कर सब उस स्थान पर पहुँचे जहाँ महारानी गांधारी रुदन कर रही थी। भीम का स्वर सुन कर उस ने कहा—"वत्स भीम ! तुम लोग परस्पर लड़े, यह तो हुआ सो हुआ। पर तुम ने जो युद्ध-नियम तोड़ कर अपने भ्राता सुयोधन की टांगों पर गदा चलाई, यह अनुचित किया।"

भीम—माता जी ! यह ठीक है; परन्तु वह टांगें जो स्त्री-जाति का अपमान करती हैं, इस योग्य नहीं कि उन्हें ठीक रहने दिया

जाये। आपको स्मरण होगा, कौरव सभा में महारानी कृष्णा का कितना अपमान किया गया था? यही टांगें थी और यही जांघ, जिन पर भरी सभा के सम्मुख, कुरु-वृद्धों की उपस्थिति में महारानी जी को बैठने का निमन्त्रण दिया गया था। विस्मित हूं कि उस समय उल्कापात क्यों न हुआ? उस समय क्यों मेरे हाथ बँधे रहे? और मेरे वाक्य ने केवल यह प्रतिज्ञा करने पर विवश कर दिया कि मैं भविष्य में उस जांघ को तोड़ूंगा।

गांधारी—यह तो हुआ, परन्तु क्या दुश्शासन का रक्त पीना मनुष्य का कार्य था?

भीम—माता जी! आप सत्य कहती हैं। रक्त-पान मानवी कार्य नहीं है और वह रक्त तो मेरे भ्राता का था, इस कारण मेरा अपना रक्त था। मैं इस समय आपके सम्मुख यह रहस्य की बात कहता हूं, अन्तर्यामी भगवान जानते हैं कि यह सत्य है, कि वह रक्त जिसने मेरे हाथों और मुख को लाल कर दिया मेरे अधरों से नीचे नहीं गया।

गांधारी—अच्छा जो हुआ सो हुआ परन्तु धर्मराज कहां हैं?

युधिष्ठिर—(कर जोड़े चरणों में शीश झुका कर) माता जी! आप के पुत्रों का घातक, पृथ्वी के नाश का कारण, युधिष्ठिर आप के सम्मुख खड़ा है। जो उचित प्रतीत हो इसे दण्ड दीजिये। जिस ने मित्रों और भ्राताओं का वध करवाया, जिस ने सहस्रों प्राणियों का वध कराया, किसी प्रकार दया का पात्र नहीं।

धर्मराज के इन शब्दों ने महारानी गांधारी का क्रोध शान्त कर दिया, और वह उन्हें हृदय से लगा कर रोने लगी। उस समय श्याम जी ने धैर्य्य देते हुये कहा "उठो ! उठो ! गांधारी ! शोक-मग्न मत हो। मरे हुये का, खोये हुये का, बीती हुई बात का, जो शोक करता है वह दुख से दुख पाकर दोहरे अनर्थ में पड़ता है।"

❀ ❀ ❀

कुरुक्षेत्र स्थल में चारों ओर शवों के ढेर लग रहे थे। उन से दुर्गन्धि निकल कर वायु को दूषित कर रही थी। इसलिये चारों ओर सहस्रों चिताएं जलवा कर मनुष्यों के शवों को ठिकाने लगाने का प्रबन्ध किया गया। इस कार्य से निपट कर विजयी धर्मराज ने हस्तिनापुर को प्रस्थान किया, जहां प्रजा मार्ग देख रही थी।

धर्मराज की व्याकुलता

युद्ध समाप्त हो गया, और उसके साथ उसकी व्यस्तता भी जाती रही। वह हृदय और मस्तिष्क जो इस समय पर्य्यन्त सेनाओं को लड़ाते और शत्रु के विनाश के उपाय सोचते रहे थे, इस कार्य से निवृत हो गये। पति, पुत्र और अन्य कमाने वालों के दुख में रोने वालियों के रुदन का स्वर उच्च हुआ, और अपना प्रभाव छोड़ कर शनैः शनैः शान्त हो गया। अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव हस्तिनापुर में राज्य-प्रवेश के प्रबन्ध में संलग्न होगये। परन्तु धर्मराज युधिष्ठिर का चित्त किसी और दिशा में जा रहा था। इतने वर्ष पर्य्यन्त एक ही ओर सोचने के पश्चात् अब वह कुछ और विचार कर रहे थे। अपने चारों ओर निज निर्मित विनाश और उसके परिणाम को देख कर उनके कोमल हृदय पर आघात हो रहा था, और वह कुछ और ही संकल्प कर रहे थे, जिस का अभिव्यंजन एक दिन उन्होंने भ्राताओं, मित्रों तथा ऋषियों के सम्मुख अर्जुन को सम्बोधन कर के यूं किया, "अर्जुन! मैं विचार कर रहा हूं, कई दिन से विचार कर रहा हूँ, कि हमने एक व्यक्ति के पाप के कारण इतना महान् पाप कर दिया, यह अच्छा नहीं किया। हम ने सुयोधन की हठधर्मी को तोड़ने के लिए गुरु, पितामह और अन्य सज्जनों का रक्त बहाया। हा क्षात्र-

धर्म ! तुझे धिक्कार है !! जी चाहता है, शेष आयु इस पाप के प्रायश्चित में व्यतीत कर दूं। तुम लोग इस राज्य को संभालो। तुम ने आज पर्य्यन्त मेरे लिये बहुत कष्ट सहे हैं, तुम सुख भोग के भागी हो, मैं वनों में जाकर वानप्रस्थ धारण करके ज्ञान उपार्जन करने में जीवन समाप्त करूंगा।"

यह शब्द सुने तो अर्जुन का हृदय धक् से रह गया। वह भ्राता के असाधारण मौन को कई दिन से देख रहे और देख कर मौन थे। आज रहस्य प्रकट होने पर उन्हें जो दुख हुआ, उसे अनुभव करते हुये उन्होंने कहा—"इतनी व्याकुलता, इतनी विपत्ति, और इतने दुख के पश्चात् यह विचार ? यदि यही बात थी तो इतने राजाओं का वध क्यों कराया था ? यह राजा का धर्म नहीं। राजा का धर्म प्रजा को सुखी करना, और उसके सुख और उसकी रक्षा के लिये स्वयम को, अपने सुख-दुख को, विस्मरण करना है। आप उन बातों को विस्मृत करके यह क्या कह रहे हैं ?"

भीम—यह तो वही बात हुई कि कूप खोदा, और बिना जल पीए, बिना स्नान किए, कीचड़ से लथ-पथ भाग गये। शत्रु का संहार किया, और उसका संहार करके स्वयं भी आत्महत्या कर ली। यदि सन्यास, वाणप्रस्थ और योग से सिद्धि प्राप्त हो सकती है, तो वन के वृक्ष और पर्वत, जो आयुभर स्थानान्तर नहीं करते, अवश्य सिद्धि पा जायेंगे। शोक है कि संसार तो अपने कार्य में लगे, और आप अपना कर्त्तव्य त्याग कर वन

को भागने लगें। निस्सन्देह हमें ऐसे भ्राता को अपना नेता कहते लज्जा आती है।"

यह सब सुनकर भी धर्मराज मौन रहे, तो महारानी कृष्णा ने कहा 'आपने वनवास के दिनों में भ्राताओं से जो प्रण किये थे क्या वह सब भूल गए ? बारह वर्ष वनवास के पश्चात् भी वनवास की कामना अभी मन से नहीं गई ? क्या आपको ज्ञात नहीं कि क्षत्रिय का धर्म है दुष्टों को दण्ड देना, श्रेष्ठों की रक्षा करना, और युद्ध में पृष्ठ न दिखाना। आपने यह विजय धोखे, छल, चापलूसी से, और दान लेकर नहीं पाई। शत्रु के बल को तोड़ कर पाई है। अब इसका फल भोगते हुए आपको भागने की क्यों सूझ रही है ?

युधिष्ठिर—तुम लोगों ने जो कुछ कहा, मैं उसे सुनकर प्रसन्न हूँ। परन्तु तुम नहीं जानते मोक्ष सुख कथन और श्रवण मात्र का विषय नहीं, उसके लिये योग ही एक उपाय है। मन को एकाग्र करके, सर्व तृष्णाओं को रोककर, कर्म-जाल को तोड़कर और सारे धन्धे मिटाकर ही मनुष्य सुखी हो सकता है।

व्यास जी—युधिष्ठिर! अर्जुन ठीक कह रहे हैं। तुम्हारा धर्म इस समय बनगमन नहीं, वरंच प्रजा-पालन और उसकी रक्षा करना है। तुमने वेद का अध्ययन किया है, वह कर्म जिसके लिये तुम इतने दुखी हो रहे हो अन्य के दोष से विवश होकर तुम्हें करना पड़ा है। राज्य में अल्पकाल में लूट-खसोट मचने वाली है। तुम्हें उसका प्रबन्ध करना चाहिए। जो-जो राजा युद्ध में

मारे गए हैं, उनके राज्य उनके पुत्रों अथवा अधिकारियों को देने चाहिएँ, और अपने धर्म का पालन करते हुए परलोक को ठीक करना चाहिए।

श्याम जी इस समय तक शान्ति से सब कुछ सुन रहे थे; परन्तु सबकी दृष्टि उन्हीं की ओर लगी थी। वह व्यासदेव जैसे ऋषियों की उपस्थिति में कुछ भी कहना नहीं चाहते थे; परन्तु जब अर्जुन ने सविनय उनसे प्रार्थना की कि जीवन के इस आपत्ति-काल में युधिष्ठिर का मार्ग प्रदर्शन करें तो उन्होंने कहाः—

श्याम—"श्रीमहाराज! इतने ऋषियों और महर्षियों के सम्मुख मेरा कुछ कहना छोटा मुख बड़ी बात है। आप स्वयं धर्म के मर्म को भली भाँति समझते हैं। इसलिये आपके सम्मुख क्या धर्म है और क्या अधर्म इस विषय पर मेरा कुछ कथन करना उचित नहीं। परन्तु अनुरोध किया गया है, इसलिये कुछ कहना ही होगा। मेरा विचार, और विचार ही नहीं जीवन भर के अध्ययन और अनुभव का सार यह है कि ज्ञान और कर्म, सन्यास और योग को पृथक्-पृथक् कहने वाले धर्म के तत्व को नहीं जानते। योग से भी वहीं पहुंचते हैं, ज्ञान से जहाँ पहुँचते हैं। इसलिये तत्ववेत्ता इनको एक ही समझते और मानते हैं। कर्त्तव्य-पालन में जिसने मन और इन्द्रियों को जीत लिया है, जिसकी अपनी इच्छा उसके मार्ग में बाधित नहीं होती, जिसका आत्मा प्राणीमात्र को अपना आत्मा समझता है, वह जो भी कर्म करता है वह कर्म उसे बन्धन में नहीं डालते। तत्ववेत्ता

देखता है, सुनता है, स्पर्श करता है, सूंघता है, खाता है, पीता है, बोलता है, नेत्र खोलता और मूंदता है, सब कुछ करता है, केवल इसलिये कि यह इन्द्रियों का कर्म है और उन्होंने इसे अवश्य करना है। ऐसा मनुष्य जो कुछ करता है वह नहीं करता। जो व्यक्ति अपने कर्मों को परमात्मा पर छोड़ कर अपनी इच्छाओं को उनमें घुसने नहीं देता, पाप से ऐसे निर्लेप रहता है जैसे 'कमल-पुष्प सरोवर के जल में। कर्त्तव्य-परायण कर्म-योगी आसक्ति त्यागकर मन और इन्द्रियों से काम लेते हैं, और अपने आत्मा को शुद्ध करते हैं। ऐसे लोग कर्म-फल के इच्छुक नहीं होते, इसलिये उन्हें अशान्ति नहीं होती। फल का विचार ही अशान्ति का मूल है। शरीर से कर्म-त्याग सम्भव नहीं, हाँ मन से इसका त्याग किया जा सकता है। ऐसा त्यागी इस नवद्वार वाले शरीर में स्वामी की भांति रहता है। वह न कर्मों को, न कर्म-फल को रचता है। जो कुछ करता है केवल स्वभाव से करता है। न पाप को ग्रहण करता है न पुण्य को, जगत चाहे अज्ञानवश कुछ ही समझे। जिनका अज्ञान आत्मज्ञान से नाश हो जाय, उनका यह ज्ञान परमात्म-दर्शन का साधन बन जाता है। परमात्मा में जिन की बुद्धि लगी हो, जिनका आत्मा लगा हो, परमात्मा जिनका परम आश्रय हो, ज्ञान से उनका सम्पूर्ण मल उतर जाता है। वह आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। ऐसे महात्मा विद्वान् ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ते और चाण्डाल को सम दृष्टि से देखते हैं। जिनके भीतर सम दृष्टि उत्पन्न हो गई, उन्होंने

सम्पूर्ण भूमण्डल को जीत लिया। जो अच्छी वस्तु को पाकर सुखी नहीं होता, बुरी के मिलने से दुखी नहीं होता, ऐसा पुरुष स्थिर बुद्धि, अज्ञान से शून्य, ब्रह्मज्ञाता होकर ब्रह्म में ही विचरता है। बाह्य विषयों से पृथक् होकर वह आत्मा के भीतर जो आनन्द है उसका अनुभव करता है। विषय-जन्य सुख, दुख का कारण और अस्थिर हैं, बुद्धिमान् उनसे पृथक् रहता है। योगी वह है जो शरीर त्याग से प्रथम काम-क्रोध-जनित कष्ट सहन कर सके। जिनके आत्मा का मल दूर होगया है, जो अपने को वश में किये हैं, सब के उपकार में रत हैं, वह ब्रह्म-निर्वाण को प्राप्त होते हैं। निर्वाण उनके निकट है, जो काम, क्रोध को त्याग कर, मन को वश में करके, अपने को पहचानते हैं। सारांश यह है कि यदि वनगमन और सन्यास का अभिप्राय कर्म-त्याग है, तो यह असम्भव है। कहीं चले जाओ, कर्म करना ही होगा। योग केवल ध्यान योग का नाम नहीं, आसन पर बैठ कर नेत्र मूंदने का नाम नहीं, योग कर्म-योग का नाम है। यह योग जीवन में दिन-दिन और घड़ी-घड़ी के कर्म में प्रगट होना चाहिए। यदि जो कुछ किया जाय, स्वार्थ त्याग कर किया जाय और इसलिये किया जाय कि इसे स्वाभाविकतया करना ही है और प्राणीमात्र का उपकार इसी में है, तो यह कर्म-फल सन्यास और योग है। यदि सन्यासी बन कर कर्म-फल की इच्छा से योग करना है तो उसका फल भोगना ही पड़ेगा, जो आवागमन के रूप में अपना चमत्कार दिखायेगा। इसलिये मैं व्यासदेव जी के कथन का समर्थन करता

हुआ कहूँगा कि वन जाने, सन्यासी होने और ज्ञान के ढूंढ़ने से आपको शान्ति नहीं मिलेगी। यह प्राप्त होगी तो फल की आकांक्षा त्याग कर कर्म करने से। आप क्षत्रिय हैं, क्षत्रिय का धर्म जैसा कि महारानी कृष्णा ने कहा, दुष्टों को दण्ड देना और श्रेष्ठों की रक्षा करना है। आप उस धर्म को राग-द्वेष से ऊपर उठकर पालन करें, तो यह एक भारी यज्ञ की पूर्ति होगी। इसके बिना सृष्टि-क्रम असम्भव है।

महाराज युधिष्ठिर का राज्यतिलक

समय बीतते देर नहीं लगती, उसके चक्र विश्व के विचारों में भी चक्र उत्पन्न करते रहते हैं। जहाँ कल पिता की मृत्यु का शोक था वहीं आज पुत्र-जन्मोत्सव मनाया जा रहा है, जहाँ कल राजा की मृत्यु पर शोक-सभा हो रही थी, चारों ओर काले वस्त्र दृष्टिगोचर होते थे, वहाँ आज युवराज के राज्याभिषेक के उत्सव मनाये जाते हैं। चारों ओर संगीत सभाएं सज्जित हैं, मंगलाचार हो रहे हैं, बधाइयाँ मिल रही हैं। जगत का यही नियम है, ऐसा ही होता रहा है और होता रहेगा। इसमें न परिवर्तन हुआ, न होगा। इसी नियम की पूर्ति में आज हस्तिनापुर नव-वधु की भांति सज रहा है। चारों ओर चहल-पहल है। बाजारों में, गली-कूचों में, राज-मार्गों पर कन्धे से कन्धा छिलता है। राज-मार्ग पर इतना जन-समूह है कि मार्ग चलना कठिन है। छत्तों पर, छज्जों पर, अट्टारियों में सब ओर मानव-शीश दृष्टिगोचर होते हैं। इधर-उधर धूप और पुष्पों की सुगन्धि आ रही है। नगर के मुख्य द्वार पर सुन्दर कुमारियाँ नवीन जल-घट और सुगन्धित पुष्प लिये खड़ी हैं।

चारों ओर कोलाहल हुआ, "वह महाराज की सवारी आई", जन-समूह उमडा, छत्तों पर से सहस्रों शीश नगर के मुख्य द्वार

की ओर दृष्टि करके झुकते हुए दीख पड़े। वायु-मण्डल में शब्द हुआ, "धर्मराज की जय, "कुरु-कुल भूषण की जय", "देशभक्त श्याम की जय"।

नगर-द्वार पर कुमारियों ने पुष्प-वर्षा की। जलूस रुका और नगर के प्रतिनिधियों ने धर्मराज की सेवा में उपस्थित होकर अभिनन्दन-पत्र अर्पण करते हुए कहा—"श्री महाराज! तेरह वर्ष के बनवास और अज्ञातवास के पश्चात् और घोर युद्ध में शत्रुओं को गिरा कर आप आज हस्तिनापुर को अपने चरण-कमल के स्पर्श से पवित्र कर रहे हैं। इस कारण हमारे हृदय गद्गद् हो रहे हैं। शब्द नहीं मिलते जिनसे हम आपको बधाई देकर हार्दिक भावों का अभिव्यञ्जन कर सकें। परमात्मा से यही प्रार्थना है कि महाराज को हमारे शीश पर चिरकाल पर्य्यन्त बनाए रक्खे, जिससे कि भारत देश में धर्मराज स्थापित होकर प्रजा को सुख मिले।"

नागरिकों के इस भव्य स्वागत ने महाराज युधिष्ठिर का कोमल हृदय हिला दिया और उन्होंने उनका धन्यवाद करके सवारी को आगे बढ़ने का आदेश दिया। जलूस में सबसे आगे दो सुन्दर पालकियों में महाराज धृतराष्ट्र और महारानी गांधारी आरूढ़ थीं। तत्पश्चात् सोलह श्वेत अश्वों के रथ में महाराज युधिष्ठिर उदय होते हुए सूर्य्य की भांति अपना प्रकाश चारों ओर फैला रहे थे। रथ की बागें वृकोदर भीम के हाथ में थीं, महावीर अर्जुन महाराज के मस्तिष्क पर श्वेत छत्र संभाले थे, नकुल

और सहदेव दोनों ओर चँवर कर रहे थे। महाराज के रथ के पीछे श्याम, युयुत्सु और सात्यकि के रथ थे। उनके पश्चात् महारानी कुन्ती, कृष्णा और अन्य रानियाँ और स्त्रियाँ विदुर जी की रक्षा में, नाना प्रकार के वाहनों में आ रही थीं। उनके पीछे नाना देशों के राजा थे। फिर अमात्य, मन्त्री तथा अन्य राज्य-कर्मचारी थे।

जलूस राज-प्रासाद के निकट आकर रुका। महाराज रथ से उतरे, देव पूजा की, ब्राह्मणों को दान दिया। वेदी का निर्माण हुआ और महाराज सर्वतोभद्र आसन पर महारानी कृष्णा सहित विराजमान् हुए। पुरोहित धौम्य ने वेद मन्त्रों के उच्चारण से हवन यज्ञ कराया। हवन के अन्त पर सब लोग खड़े हो गये, और श्याम जी ने पंचजन्य शंख की ध्वनि के साथ महाराज को राज्यतिलक देते हुए कहा—"श्री महाराज तथा महारानी जी! आज इस तिलक के साथ लाखों और कोटि मनुष्यों का जीवन और सर्वस्व आपके अर्पण किया जाता है, इसलिये नहीं, कि आप पूर्व की भांति इसे दांव पर लगा कर द्यूत खेलें, न इसलिये कि आप मनुष्यों को पशु-पक्षी समझकर उनके जीवन और धन के साथ मनमानी करें, वरन् इसलिये कि आप इनकी निष्काम सेवा करते हुए अपने धर्म का पालन करें। इस अभागे देश में मनमानी करने वाले राजाओं के कारण बहुत से उपद्रव और रक्तपात हो चुके हैं, अब आवश्यकता है कि यहाँ धर्म-राज्य स्थापित करके जगत को दिखाया जाय कि भारत की राज्य-पद्धति

क्या सिखाती है ? इस देश में इससे पूर्व रामराज्य स्थापित हो चुका है, वह पुरातन कथा है; परन्तु राजा लोग श्री महाराज रामचन्द्र के चरण-चिन्हों पर चलने का यत्न करते रहे हैं। अब धर्मराज्य की स्थापना से यह दिखाना है कि जहाँ राजा दण्ड-धर का रूप धारण कर सकता है, वहाँ पर श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करता हुआ वह प्रजा का पिता भी बन सकता है। आशा है कि आप इस कामना की पूर्ति करके हम लोगों को कृतार्थ करेंगे।"

श्याम जी मौन हुये तो जनता ने महाराज को आसन से उठते देखा। उनके नेत्र अश्रु परिप्लुत थे, और स्वर रुद्ध था जब उन्होंने कहा—

युधिष्ठिर—श्याम जी ! ऋषिओ, मुनिओ ! विप्रगण ! और देश-वासिओ ! जो चेतावनी मुझे इस समय दी गई है, ऐसी नहीं कि मैं उसे भूल जाऊँ। मैं मनुष्य हूँ, और मनुष्यों से भूल हुआ करती हैं; मैंने भी भूल की, और महान् भूल की, जिसका परिणाम कुरुकुल का ध्वंस हुआ। मैं उस सम्पूर्ण हत्याकाण्ड के लिये अपने को उत्तरदायी समझता हूं और परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि वह भविष्य में मुझे ऐसी भूलों से बचने की शक्ति प्रदान करें, जिससे कि देश सुरक्षित रहे और देशवासी शान्ति का जीवन व्यतीत करें !

परन्तु युद्ध और उसके पश्चात् की बातों में एक बात दृष्टि के सम्मुख रहनी चाहिये, कि राज्य के स्वामी अब भी पूज्य महाराज धृतराष्ट्र हैं। यह राज-पाट और लक्ष्मी सर्वस्व उन्हीं का

है। मुझे जो भार आप लोगों ने सौंपा है, केवल राज्य प्रबन्ध का है, उसके लिए मैं और राज्यकर्मचारी सदैव आप लोगों तथा श्रीमहाराज के सम्मुख उत्तरदायी रहेंगे। वह मेरे पिता हैं, मेरे देवता हैं, मेरे स्वामी हैं, और आप लोगों के राजा हैं। राज्य के सब कार्य पूर्ववत उन्हीं की आज्ञा से होते रहेंगे।

धर्मराज की वक्तृता समाप्त हुई, तो चारों ओर से साधुः साधुः और करतल ध्वनि से सभामण्डप गूंज उठा। तत्पश्चात् अन्ध महाराज धृतराष्ट्र उठे। उस समय उन के अन्ध नेत्रों से जल प्रवाहित था। उन्होंने कहा "प्रजागणो! महात्माओ तथा श्याम जी! आप सब को ज्ञात है कि भारत देश में जो रक्त-पात हुआ, उसका पूर्ण उत्तरदायित्व यदि किसी पर है तो वह यह नेत्रहीन मनुष्य है, जिसने अपनी अन्ध बुद्धि से वह देखना अस्वीकार किया जिसे कोई साधारण बुद्धि मनुष्य भी देख सकता था। पूज्य भीष्म जी ने मुझे समझाया, द्रोण जी ने सम्मति दी, विदुर जी ने सिर पटका, गान्धारी ने माथा मारा, परन्तु भावी अटल है, प्रकृति की लीला विचित्र है, मुझे समझ न आई। यदि मैं भारत के पूज्य श्याम जी की सम्मति स्वीकार कर लेता, यदि उनके कथन का निरादर न करता, और सुयोधन को कुछ काल पर्य्यन्त कारागार में बन्द कर देता तो आज उसकी मृत्यु देखने का दुर्भाग्य न होता। पर ईश्वरीय नियम किसी के टाले नहीं टलता। दैव, भावी, होनी, जो असम्भव हो वह भी करवा सकती है और करवा लेती है। इस लिये जो हुआ उसके लिये दुखी

होना अब व्यर्थ है। स्यात इस में भी प्रजा का हित था; युद्ध न होता तो इस देश में धर्म-राज्य कैसे स्थापित हो सकता था? परमात्मा की इच्छा इस युग परिवर्त्तन में यह दीख पड़ती है कि संसार के सम्मुख राज्य का एक नवीन आदर्श रखा जाय जो भविष्य में लोक के लिये पथप्रदर्शक हो। मैं इस परिवर्तन का हार्दिक स्वागत करता हूं। धर्मराज युधिष्ठिर आप लोगों के लिये नवीन नहीं, उनकी शुभ कामनाएँ आप को विस्मरण नहीं, आशा है आप उन्हें प्रत्येक प्रकार से सहायता देंगे। उनकी पृष्ठ पर भारत के, नहीं-नहीं जगत के महानतम पुरुष नहीं देवता श्याम जी का हस्त है। श्याम जी का जन्म भारत में एक नवीन आदर्श की स्थापना के लिये हुआ है, उनकी इच्छा है, इच्छा ही नहीं वह अपने जीवन की एक एक घटना से यह सिद्ध कर रहे हैं कि जगत में फल की आकांक्षा त्याग कर कर्म करना चाहिये। राजा हो अथवा प्रजा सब को फल की आकांक्षा त्याग कर प्राणीमात्र को परमात्मा का स्वरूप समझ कर निज धर्म का पालन करना चाहिये। यदि उनकी यह इच्छा पूर्ण हो जाय, यदि विश्व के स्त्री-पुरुष उनके उपदेश को जीवन में धारण करलें, तो जगत में विचित्र परिवर्त्तन दृष्टिगोचर हो सकता है। धर्मराज युधिष्ठिर श्याम जी के उपदेश को जीवन में धारण कर के प्राणीमात्र में परमात्मा का रूप देखने का यत्न कर रहे हैं, परमात्मा करे उनकी छत्र-छाया आप लोगों के शिर पर चिरकाल पर्यन्त रहे जिससे सब लोग जीवन के आदर्श को प्राप्त कर

सकें, ताकि जगत में सुख और शान्ति का राज्य आये और यह अभागा देश पुनः संसार में अपना शिर ऊँचा कर सके।

महाराज धृतराष्ट्र के भाषण के पश्चात् धर्मराज ने महाराज और श्याम जी की सम्मति से घोषणा की कि भीम युवराज होंगे और महामंत्री विदुर जी। अर्थ-मन्त्री का कार्य विख्यात युद्ध संवाद-दाता संजय करेंगे। सेनापति का पद नकुल ग्रहण करेंगे और राज्य-रक्षा (Defence) का भार अर्जुन के कन्धों पर रहेगा। धर्म कार्य (Ecclesiastical Department) का प्रबन्ध राज-पुरोहित धौम्य के सुपुर्द होगा और सहदेव सम्राट् के अङ्गरक्षक होंगे।

राज्य सभा (Cabinet) की नियुक्ति और घोषणा के पश्चात् कुछ दिवस विश्राम कर चुकने पर श्याम जी ने महाराज धृतराष्ट्र और धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—"पितामह भीष्म शर-शैय्या पर पड़े हैं, मेरा हृदय कह रहा है कि उनके शरीर-त्याग का समय समीप आ रहा है, वह महात्मा हैं, राज्य-धर्म और अन्य सब धर्मों के ज्ञाता हैं, मेरी इच्छा उन के दर्शन की हो रही है।"

महाराज धृतराष्ट्र—हम भी साथ चलेंगे, जीवन में ऐसा अवसर पुनः कहां आयेगा ?

एक संक्षिप्त सी पार्टी का प्रबन्ध किया गया। जिस में धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, महारानी कृष्णा, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, महारानी कुन्ती, महारानी गान्धारी आदि सम्मिलित थे। कुरुक्षेत्र स्थल में पहुंच कर भीष्म जी के समीप जाकर श्याम जी ने कहा "कहिये

महात्मन् ! शरीर कैसा है ? कोई कष्ट हो तो कहिये।"

भीष्म नेत्र मूंदे ध्यानावस्थित पड़े थे, श्याम जी के वचन सुनकर प्रणाम करते हुये बोले "महान् अनुग्रह है जो आपने इस समय दर्शन दिये। मैं सूर्य के उत्तरायण होने की बाट जोह रहा हूं, परन्तु शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग में बाणों ने अग्नि फूंक रक्खी है।"

यह सुनकर श्याम जी ने सम्पूर्ण ध्यान-शक्ति उन पर केन्द्रित करते हुए उनके शरीर पर हाथ फेर कर कहा "अब शरीर कैसा है?"

भीष्म—आप की कृपा से सम्पूर्ण कष्ट जाता रहा।

श्याम—महाराज धृतराष्ट्र और धर्मराज युधिष्ठिर दर्शनों की इच्छा से पधारे हैं, पर धर्मराज आपके सम्मुख आते हुये लजाते हैं। मेरी प्रार्थना है कि आप उन्हें राज्य और अन्य धर्मों का उपदेश दें।

भीष्म—आपकी उपस्थिति में किसी विषय पर मेरा कुछ कहना नहीं बनता।

श्याम—आपके लिये सम्मान का जो भाव धर्मराज के मन में है उस के कारण आप जो कहेंगे उसे वह शिरोधार्य करेंगे, मैं उन्हें जो कहूंगा उसका प्रभाव वह नहीं होगा जो आपके कथन का हो सकता है। इस कारण यदि कष्ट न हो तो आप उनके संशय निवृत करने का यत्न कीजिये।

× × ×

श्याम जी की आज्ञा को शिरोधार्य्य करके भीष्म जी ने धर्मराज को राज्य-धर्म और अन्य कर्त्तव्यों से भली प्रकार परिचित कर दिया। यह भाषण कई दिन पर्य्यन्त होते रहे, इन में जीवन के प्रत्येक प्रश्न पर विचार प्रगट किये गये। महाभारत के शान्ति और अनुशासन पर्वों के यही विषय हैं। यद्यपि यह अत्यन्त मनोरञ्जक तथा लाभदायक हैं, तथापि पुस्तक बड़ी होती जा रही है और हमारे विषय से इसका इतना सम्बन्ध भी नहीं इसलिये हम ने उन्हें इस स्थान पर लेखबद्ध नहीं किया।

धर्म-राज्य (World Federation)

"नीतिमानों का कथन है कि "संघ में शक्ति है।" जो देश, जो कुल, जो जातियां एक सूत्र में पिरोई हुई नहीं हैं वह कितनी भी शक्तिशाली हों, किसी न किसी समय शत्रु के हाथों से नष्ट हो जायेंगी। इसलिये आज आप सब महानुभावों के सम्मुख जो इस शुभ अवसर पर हस्तिनापुर पधारे हैं कुछ एक विचार रखने चाहता हूं जिससे भारत देश, नहीं-नहीं समस्त विश्व, भविष्य में इस प्रकार के भयानक युद्ध से, जो अभी-अभी समाप्त हुआ है, सुरक्षित रह सके।"

महाराज युधिष्ठिर के राज्य-तिलक के अवसर पर एकत्र हुए देशों-देशों के प्रतिनिधियों को जो हस्तिनापुर के भव्य सभा-मण्डल में पधारे थे, सम्बोधन करके देश-भक्त श्याम ने कहा। परिस्थिति की मांग और विषय की गम्भीरता तथा वक्ता का अस्तित्व इस प्रकार का था कि प्रत्येक सभासद् दत्तचित्त हो गया, जब श्याम जी ने वक्तृता जारी रखते हुये कहा:—

"आपको भली प्रकार ज्ञात है कि यह युद्ध जो अभी-अभी समाप्त हुआ है, ऐसा नहीं था जो रोका न जा सकता था। वह रोका जा सकता था और सुगमता पूर्वक रोका जा सकता था, यदि उस समय कोई इस प्रकार का शक्तिशाली हाथ उपस्थित होता

जो महाराज सुयोधन के हठ को तोड़ कर उनके क्रोध को शान्त कर सकता। लोभ और क्रोध यह दो शक्तियां हैं जो मनुष्यों, देशों और जातियों का विनाश कर सकती हैं और उन्हीं शक्तियों ने महाराज सुयोधन के चित्त में उत्पन्न होकर वह कुछ किया जिसकी पुनरोक्ति की आवश्यकता नहीं।

नीतिज्ञ कहते हैं कि इतिहास स्वयं को दोहराया करता है। समय और परस्थितियां समान होने पर वही घटनाएँ उपस्थित हो जाती हैं जो उस से पूर्व हो चुकी हैं। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्यों का धर्म है कि इतिहास का अध्ययन करते हुए उन घटनाओं को भविष्य में रोकने का यत्न करें जो भयङ्कर युद्धों का आधार हैं।

इसलिये मेरी आप सब महानुभावों से यह प्रार्थना है कि आप इतिहास की इस घटना को जो अभी हमारी दृष्टि से पूर्णरूपेण ओझल नहीं हुई, सम्मुख रख कर उसकी पुनरावृत्ति को असम्भव बना दें।"

(कुछ काल मौन रहकर) "मैंने आपके सम्मुख प्रश्न रख दिया है। स्यात आप यह आशा भी करते होंगे कि इस का सुलझाव भी मैं ही आपके सम्मुख रक्खूं। इसलिये मैं अपने भाव इस सभा के सम्मुख वर्णन किये देता हूं। आप उस पर अपने-अपने विचार प्रकट करने की कृपा करें। युद्ध से प्रथम इस देश में दो भारी दल थे। वह किसी भी कारण हुये हों, परन्तु इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि दोनों दलों में विचार भेद था; परन्तु अब इतने रक्तपात के पश्चात् वह

परस्पर अत्यन्त निकट आ गये प्रतीत होते हैं। दोनों अपनी-अपनी शक्तियों को परीक्षा कर चुके हैं, दोनों के बड़े-बड़े नेता इस नरमेध यज्ञ में स्वयं की आहुति दे चुके हैं। इसलिए भावी आपत्तियों से रक्षा के लिये उन्हें सुगमता-पूर्वक एकत्र किया जा सकता है। मुझे यह देखकर हर्ष है कि आज दोनों ओर से युद्ध करने वाले राजाओं के प्रतिनिधि महाराज युधिष्ठिर को इस शुभ अवसर पर बधाई देने के लिए इस स्थान पर उपस्थित हैं। इस समय से लाभ उठाकर एक इस प्रकार की सार्वदेशिक सभा की नींव रक्खी जा सकती है जो सर्व जातियों के भले का विचार करती रहे और जब भी वह जातियाँ, किसी भी कारणवश, अपनी शक्तियाँ एक दूसरे के विरुद्ध प्रयोग करने की चेष्टा करें तो उनके मुखिया और नेताओं के द्वारा उनके झगड़ों के कारण दूर करने का यत्न करें। यह सभा किसी ऐसे व्यक्ति के आधीन कार्य करे जिस पर सब जातियों को विश्वास हो, जो लोभ और क्रोध से ऊपर उठकर सब का हित-चिन्तन करने की शक्ति रखता हो।"

योजना नवीन और लाभदायक थी तथा ऐसे समय पर रक्खी गई थी जब कि उपस्थितों में से प्रत्येक व्यक्ति युद्ध की भीषण अग्नि की ज्वाला का प्रभाव अनुभव कर चुका था। इसलिये जब श्याम जी अपनी वक्तृता की समाप्ति के पश्चात् आसन पर बैठे, तो चारों ओर से उसका समर्थन हुआ और कहा गया कि इस सभा का निर्वाचन इसी समय होना चाहिये और

श्याम जी ही इसके प्रथम सभापति हों।

सभा के विचार इस ओर झुकते देख श्याम जी पुनः अपने स्थान से उठे और चारों ओर निस्तब्धता छा गई जब उनके मुख से निकला—"संसार के मुकटधारियो और उनके प्रतिनिधि महानुभावो ! आप लोगों ने मेरा प्रस्ताव स्वीकार करके मुझे कृतज्ञ किया है; परन्तु इसके साथ इस सभा के सभापतित्व के लिये मेरे नाम का सुझाव देकर मेरे साथ न्याय नहीं किया। मैं उन महानुभावों का कृतज्ञ हूं जिन्होंने ऐसा करके मुझ पर विश्वास प्रगट किया है; परन्तु उनके कथन को स्वीकार करना इस नवजात सभा को जन्मते के साथ ही विष देने के समान होगा। मैं यह इसलिये नहीं कह रहा कि आपने श्याम को सभापति निर्वाचित करना चाहा है वरन् इसलिये कि इससे वही स्थिति उत्पन्न हो जायेगी जिसे रोकने के लिये इस सभा की स्थापना की आवश्यकता है।

आपको ज्ञात है कि महाराज सुयोधन को समझाया गया था। एक नहीं, अनेक लोगों ने (जिनमें से एक मैं भी था) उन्हें सन्मार्ग प्रदर्शन का यत्न किया; परन्तु उनकी हठ ने हमारी एक न चलने दी, कारण यह कि हममें से एक भी व्यक्ति के पास वह शक्ति न थी जो इस प्रकार के विकृत मस्तिष्कों को सीधा कर सकती। इसलिये आप सब लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि सम्पूर्ण विश्व एक सूत्र में पिरोया जा सके और समस्त राज्य एक विशाल राज्य का भाग बन जाएं। अपने-अपने देशों के भीतर वह राज्य-

धर्म और प्रजा-धर्म का पालन करते हुए स्वतन्त्र रहें; परन्तु जब भी किसी राज्य में प्रजा दुखी हो अथवा कोई जाति अन्य जाति से द्वेष करके उसे कष्ट पहुंचाने का यत्न करे, तो यह महान् राज्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति से कार्य लेकर उसे सन्मार्ग दर्शा सके। इस समय परमात्मा की कृपा से धर्मराज युधिष्ठिर सब लोगों में मान की दृष्टि से देखे जाते हैं, भारत देश का एक विस्तृत भाग उनकी छत्र-छाया के नीचे है, अन्य देशों के राज्य भी उनसे मित्रता करने में हर्ष मानते हैं, फिर कोई कारण नहीं कि विश्व में शान्ति स्थापन करने की सेवा उनके सुपुर्द न की जाय।"

"और यदि महाराज युधिष्ठिर लोभ और क्रोध-वश होकर कोई अनुचित कार्य करें?" एक ओर से प्रश्न किया गया।

श्याम—इसका प्रबन्ध किया जा सकता है। इस सभा के भीतर महात्मा व्यास सरीखे परिव्राजक उपस्थित हैं। ऐसे महात्माओं की एक छोटी सी सभा सम्राट् के, जो इस साम्राज्य के सभापति होंगे, कार्यों का निरीक्षण करती रहेगी। सम्राट् स्वयं भी जो कुछ करेंगे वह उनकी अपनी इच्छा से नहीं होगा वरन् सारे देशों द्वारा निर्वाचित सार्वदेशिक सभा के कथनानुसार, तथापि यह द्वितीय सभा उनके कार्य की देख-रेख करती रहेगी।"

चहों ओर से साधुः साधुः का घोष हुआ। उसके शान्त होने

पर श्याम जी ने पुनः कहा :—

श्याम—जो देश इस महान् राज्य का अंग बनेंगे उनकी ओर नेत्र उठाकर देखने की शक्ति किसी भी शत्रु को नहीं होगी क्योंकि वह अल्प-शक्तिशाली रियासतें नहीं रहेंगी वरन् एक विशाल राज्य का भाग बन जाएंगी, जिसके सम्पूर्ण अंग एक-दूसरे की सहायता करेंगे। उन राज्यों का व्यय भी अल्प हो जायगा, शत्रु न्यून होने से उन्हें अधिक युद्ध-सेना की आवश्यकता नहीं रहेगी। इस प्रकार प्रजा सुखी रहेगी और जगत में शान्ति का साम्राज्य स्थापित होगा।

साधुः साधुः और करतल-ध्वनि में श्याम जी ने पुनः कहा:—

श्याम—इस प्रस्ताव को स्वीकार करके आप लोगों ने जो कुछ किया है वह विश्व-इतिहास में अद्वितीय है। आज की सभा के विचारों को कार्यान्वित करने के उपरान्त मैं महाराज युधिष्ठिर को महर्षि व्यास जी की सम्मति के अनुसार, अश्वमेध यज्ञ का परामर्श दूंगा। यदि महाराज सहमत होंगे तो अश्वमेध का अश्व अल्प समय में ही छोड़ा जायेगा। वह भिन्न-भिन्न देशों का भ्रमण करेगा, महाराज की सेना का एक भाग उसकी रक्षा करता हुआ सर्व देशों को नव साम्राज्य में सम्मिलित होने का निमन्त्रण देगा और उनसे इस विषय पर वार्त्तालाप करके उनके संशय निवारण करेगा। समय पूर्ण हो चुकने के पश्चात् उन देशों के प्रतिनिधि जो इस महान् यज्ञ में भाग लेने के लिये यहाँ एकत्र होंगे शेष बातों पर विचार करेंगे; परन्तु इसके लिये उतावली की

आवश्यकता नहीं, इसलिये आप लोग अपने-अपने देशों में जाकर इस प्रश्न पर भली प्रकार विचार करें और अपने समीपवर्ती मित्रों को इस विषय पर कटिबद्ध करें कि वह जगत में सुख और शान्ति स्थापन करने के लिये इस योजना पर विचार करके उचित समझें तो, इसे अपनाने का यत्न करें।

परीक्षित-जन्म

"वत्स ! यह क्या हो गया" ?

रणवास में प्रवेश करते ही श्याम जी से महारानी कुन्ती ने कहा।

"बुआ जी क्या हुआ ?"

"हम लुट गये !!!"

श्याम जी आगे बढ़े तो सुभद्रा भ्राता के गले लिपट कर सिसकियां भरती हुई बोली :—

सुभद्रा—भ्राता ! यह क्या हुआ ? तुम्हारा तो कथन था कि उत्तरा के गर्भ से पाण्डवों का वंश चलेगा। तुमने तो कभी असत्य नहीं कहा था, यह हुआ क्या ?

श्याम—(कठिनतापूर्वक बहिन को अलग करके) कुछ कहो तो क्या हुआ ?

सुभद्रा—मैं लुट गई, मेरा अभिमन्यु आज मृत्यु को प्राप्त हुआ है !

श्याम—कुछ ज्ञात तो हो हुआ क्या ?

सुभद्रा—उत्तरा के बालक का जन्म हुआ है।

श्याम—तो रुदन काहे का ?

सुभद्रा के मुख से कोई शब्द न निकलता देखकर श्याम जी

आगे बढ़े तो उत्तरा रक्त से लथपथ यह कहती हुई चरणों में गिर पड़ी "पिता जी! लालसा थी कि बालक को गोदी में लेकर आपके चरण स्पर्श करूंगी, परन्तु हृदय की हृदय में ही रह गई!"

श्याम—(सुभद्रा की ओर देखकर) सुभद्रा! बालक को क्या हुआ?

सुभद्रा—(रोती हुई) इसमें प्राण नहीं! यह श्वास नहीं ले रहा! हाय पापी अश्वत्थामा का कथन सत्य हुआ।

श्याम—लाओ बालक मुझे दो, (शिशु को लेकर) अब रुदन बन्द करो। यदि ऐसा नहीं कर सकतीं तो बाहर चली जाओ।

आज्ञा का पालन हुआ और शीघ्र ही प्रासाद में, जहाँ चीत्कार हो रहा था, निस्तब्धता छा गई। श्याम जी शिशु को गोदी में लेकर बैठ गये और कुछ काल पश्चात् उनके मुख की दशा परिवर्त्तित दीख पड़ी, उस समय उनके मुख से गम्भीर स्वर में यह शब्द निकले—"उत्तरे! मैं असत्य भाषण नहीं किया करता, मैं जो कथन कर चुका हूं सत्य होकर रहेगा।" फिर सर्व विश्व को सुनाकर—

"नोक्तं पूर्वं मया मिथ्या स्वैरेश्वपि कदाचन,
नच यूद्धात्पराबृत्तस्तथा संजीवतामयम।
यथा मे दयितो धर्मो ब्राह्मणश्च विशेषतः,
अभिमन्योः सुतो जातो मृतो जीवत्वयं तथा।
यथाहं नाभिजानामि विजये न कदाचन,
विरोधं तेन सत्येन मृतो जीवत्वयं शिशुः।

यथा सत्यं च धर्मश्च मयि नित्यं प्रतिष्ठितौ,
तथा मृतः शिशुरयं जीवतादभिमन्युजः।
यथा कंसश्च केशी च धर्मेण निहतौ मया
तेन सत्येन बालोऽयं पुनः संजीवतामयम:।

अर्थ—मैंने हंसी-मजाक में भी कभी असत्य नहीं बोला, युद्ध में मैंने कभी पृष्ठ नहीं दिखाई। यदि यह सत्य है और धर्म और ब्राह्मण मुझे प्रिय हैं, तो अभिमन्यु का यह मृत पुत्र जीवित हो जाय!

विजयी होने पर भी यदि मैंने किसी की हिंसा नहीं की, तो उस सत्य के बल से यह बालक जी उठे!

यदि सत्य और धर्म मुझमें निवास करते हैं, तो अभिमन्यु का यह बालक जीवित हो जाय!

यदि कंस और केशी का भी मैंने धर्म से ही वध किया है तो सत्य की शक्ति इस बालक को जीवित कर दे!"

श्याम जी का हाथ इन शब्दों के साथ-साथ बालक के शिर से पांव तक सर्व शरीर पर फिर रहा था और उनके शरीर और हाथों से विद्युत-सी निकल कर उसके शरीर में प्रविष्ट हो रही थी। उस समय विश्व ने देखा कि वास्तव में सत्य और धर्म ने वह कर दिखाया जिसे श्रवण करके और निहार कर कोई विश्वास करने को तत्पर नहीं था और न ही है, क्योंकि शिशु के हाथ-पांव में चेतना उत्पन्न हो गई। उसका रुका हुआ श्वास शरीर में भ्रमण करने लगा और उसने धीमे-से स्वर में रुदन प्रारम्भ कर दिया।

प्रासाद में जहां अभी-अभी चीत्कार हो रहा था, हर्ष की लहर दौड़ गई। श्याम जी ने बालक को उत्तरा की गोदि में देते हुए कहा :—

श्याम—लो पुत्री! यह पाण्डवों के नाम को संसार में उज्ज्वल करेगा। कौन कहता था कि यह मृतक है? यह क्षय होते हुए पाण्डव-कुल की वृद्धि करेगा, इस का नाम परीक्षत रक्खो।

× × ×

राजकुमार परीक्षत के जन्म को अभी चालीस दिन नहीं हुए थे कि महाराज युधिष्ठिर और उनके राज्य-कर्मचारी जो व्यास जी के बताए हुए* धन के अन्वेषण में हिमाचल प्रदेश की ओर गये हुए थे स्वर्ण-भण्डार लिये हुए हस्तिनापुर में पहुँच गये।

---

* महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करते हुए घबराते थे क्योंकि कोष में धन नहीं था और वह प्रजा पर कर लगाने के विरुद्ध थे। इस दुविधा में व्यास जी ने उन्हें पता दिया कि हिमाचल में अमुक स्थान पर स्वर्ण की खान है उसे निकाल कर यज्ञ का व्यय कर लें। उस स्वर्ण की खोज में महाराज अपने कर्मचारियों सहित हिमाचल की ओर गये हुए थे।

अश्वमेध यज्ञ

उचित समय पर अश्वमेध का अश्व खुला छोड़ा गया। उसे छोड़ने से पूर्व धर्मराज युधिष्ठिर ने श्याम जी से अनुरोध किया कि वह यज्ञ के यजमान बनें, परन्तु उनकी न हां में परिणत न हुई। इस लिये महाराज ने दीक्षा ली और अर्जुन को अश्व की रक्षा का भार सौंप दिया। अनेक देशों का भ्रमण करता हुआ यह स्वतन्त्र अश्व अफगानिस्तान की सीमा पार करके ईरान के मार्ग से इराक अरब में से होता हुआ ह्रस्व एशिया को पार कर योरुपीय सीमा में प्रविष्ट हुआ। शूरवीर अर्जुन के लिये यह प्रदेश नितान्त नवीन थे परन्तु उस के नाम की महिमा उन दूर स्थित देशों में फैल चुकी थी, इस लिये विरोध न करके उन प्रदेशों ने श्याम जी की योजना के साथ सहयोग करने में अभूतपूर्व दूर-दर्शिता का परिचय दिया, क्योंकि प्रत्येक के मन में यह इच्छा थी कि वह शक्ति-शाली शत्रुओं के आक्रमण से सुरक्षित हो जाय। परिणाम यह हुआ कि यज्ञ के दिवस हस्तिनापुर दूर-दूर के देशों के राजाओं और उनकी सेनाओं के भड़कीले वस्त्रों से जगमगाने लगा। उस दिन के दृश्य ने महाराज के राजसूय यज्ञ की स्मृति पुनः नवीन कर दी। नगर के चारों ओर मीलों पर्य्यन्त डेरों का एक नवीन नगर बस गया। वेद मन्त्रों की ध्वनि और हवन की

सुगन्धि वायु-मण्डल को पवित्र करने लगी। ब्राह्मणों तथा दरिद्रों को दान मिलने लगा। वह खाली हाथ आते थे पर झोलियां भरपूर करके ले जाते थे।

उस समय महाराज युधिष्ठिर और महारानी कृष्णा का तेज अकथनीय था। उनके केश श्वेत हो रहे थे पर मुख-मण्डल हर्ष से देदीप्यमान था। देशों-देशों से दरिद्र लोग आते और महाराज की कृपा दृष्टि से सफल-मनोरथ होकर "महाराज की जय" तथा "महारानी जी की जय" के जयकारे बुलाते चले जाते थे। परन्तु उस महान् जन-समूह में एक व्यक्ति ऐसा था जिसके हर्ष का वारपार न था। वह देश-भक्त श्याम था। आज उसके जीवन का स्वप्न पूर्ण हो रहा था। आज जापान से स्पेन[1] पर्य्यन्त तथा साइबेरिया नहीं उत्तरीय अमेरिका से कन्याकुमारि पर्य्यन्त एशिया, अफ्रीका, यूरुप और अमेरिका के भूमि-खण्ड एक संगठन में पिरोये जा रहे थे। जगत में शान्ति स्थापन की नींव पड़ रही थी। जगत में धर्मराज्य स्थापन हो रहा था।

× × ×

यज्ञ समाप्त हुआ, भिन्न-भिन्न देशों और जातियों के प्रतिनिधि अपने-अपने देशों को लौट गए। एशिया, यूरोप, अमेरिका और अफ्रीका अब परस्पर एक थे। वह छोटे-छोटे राज्य जो सदैव एक

१—स्पेन देश में जबराल्टर, आज पर्य्यन्त (Rock of Hercules) अर्थात हरिकुलईश [भगवान श्याम] के पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है।

दूसरे के शत्रु रहा करते थे, महाराज युधिष्ठिर की छत्रछाया में परस्पर विश्वास करने लगे। देशों-देशों में व्यापार की वृद्धि हो गई। देशों-देशों के मार्ग एक दूसरे के लिये खुल गए। भिन्न-भिन्न संस्कृतियां परस्पर टकराने लगीं। उस समय शूरवीर दूर-दर्शियों को अन्य देशों में भ्रमण की सूझी और अल्पकाल में ही मगध से चलकर लोगों ने दूरस्थित मकदून्या (Macedonia) में जा गृह बनाए। अवन्ति (उज्जैन) के वासी यवन देश में जाकर, अबन्तीयस (Abantes) बन गए। महान्द अबुसीन (सिन्धु) तथा उसकी सहायक नदी नूबरा के समीपवर्ती व्यापारियों ने मकरान से होते हुए फारस खाड़ी से अम्मान, हज़रमूत तथा यमन से होकर कुल्ज़म (Red Sea—रक्तसागर) समुद्र को फांद कर नूब्या (Nubia), मिसर (महेश्वर) और अबीसीन्या (Abbysynia) के प्रदेशों को बसाकर नीलनदी को सिन्धु का नाम "नीलाब" दिया। सिन्ध प्रदेश और "कोरी" से प्रस्थान करने वालों ने यवन देश में कोरिन्थीयस (Corintheus) अर्थात् (Cori-Indus) कोरी-इण्डस की नींव डाली। भूपाल वासियों ने बाबल को अपना नाम दिया और पाली लोगों ने "पालीस्थान" (Palestine) को। परशुराम जी के नाम पर उनके अनुयायिओं ने आर्याना (Iran) को परश्या (Persia) में परिवर्तित कर दिया। अटक महानद के नाम पर यूनान के अटिका (Attica) प्रदेश का नाम हुआ। इसी भान्ति महाराज शल्य के देशवासियों के नाम पर थिसली (Thas-Salia) अथवा (Des-Salia) का

नाम पड़ा, जिसकी पर्वत श्रेणी को आद्रि (हिमाद्रि) के नाम पर "ओथरीस" और निकटवर्त्ती समुद्र को "आडरयाटक" (आद्रि-अटक) कहा गया। शूरवीर अर्जुन के नाम "विजय" पर यवन समुद्र का नाम ऐजीनयन (Aigenian) हुआ। उसके अन्य नाम "फाल्गुण" पर थिसली में "पालागोन्या" नाम नगर बसा और महाराज पंडु के नाम पर ऐड्रीयाटक समुद्र के तीर पर पएडोस्या तथा अङ्गराज कर्ण के नाम पर "अकर्णान्या' (Acaranania) प्रदेश का नाम हुआ।

श्रीराम जी के नाम पर इटली देश का विख्यात नगर रोमा (Roma) बसा और उसके सन्मुख दूसरे समुद्र के तट पर रावण के नाम पर रावणा (Ravenna) की नींव डाली गई। श्याम जी के नाम पर जबराल्टर को हरिकुलईश का पर्वत (Rock of Hercules) कहा गया।

इस भान्ति[1] अनेक नगरों और देशों में परस्पर आवागमन

१—बिहार का पुरातन नाम "पैलाश" है, क्योंकि इस स्थान में ढाक अथवा ढाक के वृक्ष बहुधा हुआ करते थे। वहां से प्रस्थान करने वाली जाति का नाम "पैलाशगी" था। इसी नाम से वह प्राचीन यूनानी साहित्य में विख्यात है। यूनानी देवमाला में प्रसिद्ध है कि राजा "पैलासगोस" गया (Gaiaa) से उत्पन्न हुआ था। यह सत्य है, क्योंकि गया बिहार का नगर है। इसी राजा को पालीस्थोन (Palecthon) का पुत्र कहा जाता है। पालीस्थोन केवल

प्रारम्भ हो गया। उत्तरीय और दक्षिणी अमेरिका के मार्ग ज्ञात हो गए। आर्यावर्त के धर्म और राज्य पद्धति के अध्ययन के लिये लोग भारत में आने लगे। मिसर देश के हकीम, यूनान देश

पालीस्थान का अपभ्रंश है। पाली मगध की प्राकृतिक भाषा का नाम है।

हाला पर्वत श्रेणी ने प्राचीन यूनानी जाति को "हैलेनीज़" (Hellenes) का नाम दिया। बिहित नदी (जेहलम) के नाम पर यूनान के ब्योत्या (Boeotia) प्रान्त का नाम हुआ।

अमेरिका के देश पीरू के वासी स्वयम को सूर्यवंशी कहा करते थे। उनके देश के प्राचीन दुर्गों में से एक कुज़को (Cuzco) नाम दुर्ग की बाबत लिखते हुए प्रैस्काट महोदय (Prescot) अपनी पुस्तक "पीरू" में लिखते हैं:—

"दुर्ग, प्राचीर तथा गैलरियां (Galleries) पर्वत शिला के बने थे। साधारण शिला नहीं वरन ऐसी जिन में से कुछ ३७ फीट लम्बी १७ फीट चौड़ी तथा ६ फीट मोटी थीं। बड़ी बड़ी शिलाओं के भीतर छोटी छोटी शिलाएं चुनी गई थीं।"

उस प्रदेश के एक पर्वतीय राज मार्ग का वर्णन करते हुए लिखा है:—"यह हिमाच्छादित पर्वतों पर से निकाली गई थी। कोसों पर्य्यन्त मार्ग खोद खोद कर बनाए गए थे। नदियों पर से वायु में बिना आश्रय लटकते हुए पुल डाले गए थे। चट्टानों में से काट काट कर सीढ़ियां बना कर उन्हें पार किया गया था। भयानक खड्डों को ठोस पत्थरों से पूर्ण कर दिया गया था। अथवा

के फिलासफर इटली के विद्वान् और नूब्या और हब्श के बुद्धिमान् भारत के नगरों का देशाटन करने लगे। श्याम जी के

उन सर्व अड़चनों को सफलता से विजय किया गया था जो पर्वतीय प्रदेश में शूरवीर से शूरवीर इंजीनियर के हृदय को कम्पायमान करदें। इस राजमार्ग के टूटे हुए भाग आज पर्य्यन्त कहीं कहीं दृष्टिगोचर होते हैं।

इन्हीं सूर्य्यवन्शी कलाकारों ने भारत से चलकर मिसर के मीनार बनाए। इटली देश में टाइबर नदी के सरोवर का जल निकालने को "क्लोका मौक्सीमा" (Cloaca Moxima) नाम महान नाली निकाल कर टाइबर के तट पर बंध बांधे। काश्मीर की वादी का जल बाहर निकाला। समुद्र पर सेतु बांध कर लङ्का में प्रविष्ट हुए और उस स्थान में कलाकारी दिखाई।

मैक्सीको (Maxico) का शब्द संस्कृत शब्द "मौक्षक" से निकला है जो स्वर्ण तथा चांदी की कच्ची धातु का नाम है। अमेरिका के इस देश को इन्हीं लोगों ने नाम दिया। उन्होंने ही वहां पर सूर्य के मन्दिर बनाए। इत्यादि इत्यादि . . ..."

भारतवासियों की दिग्विजय तथा जगत को बसाने की कथा इतनी रोचक और महान् है कि केवल इसी विषय पर एक महान् पुस्तक लिखी जा सकती है। पीछे जो कुछ लिखा गया है वह केवल यह दर्शाने के लिये है कि महाभारत युद्ध के पश्चात इस देश से विजय की एक तरङ्ग उठी, जिसने इसका नाम जगत के प्रत्येक कोने तक पहुंचा दिया। शोक से लिखना पड़ता है कि

उपदेशों की चरचा जगत् में होने लगी। मनु और याज्ञवल्क्य, कपिल और पातञ्जली का नाम यूरोप, अफ्रीका तथा अमेरिका में लिया जाने लगा।

महाभारत के विद्वान् लेखक ने अपनी कथा पाण्डव लोगों को हिमालय में गला कर और युधिष्ठिर को स्वर्ग में पहुँचा कर समाप्त करदी है, यद्यपि पाण्डवों के हिम में गलने का कोई साक्षी नहीं। न ही युधिष्ठिर के साथ कोई समाचार-दाता स्वर्ग-लोक की यात्रा के लिये गया था जिसने यह समाचार इस जगत में भेजा हो। इसके विपरीत इस बात की अकाट्य साक्षी मिलती है कि पाण्डव लोगों का नाम आज पर्य्यन्त इराक़, असीरया (असुरया) तथा मिसर, यूनान, आदि देशों के पर्वतों, नदियों, नगरों तथा समुद्रों के कारण जीवित है जो उच्च स्वर से कह रहे हैं कि वह स्थान उन्हें उनके नाम देने वाले लोगों के चरण से पवित्र हो चुके हैं।

इस सम्बन्ध में हम अपने पाठकों में से उनसे जो इङ्गलिश भाषा समझ सकते हैं, प्रार्थी होंगे कि वह ई. पोकोक (E. Pococke) महोदय की पुस्तक "इंडिया-इन-ग्रीस" (India-in-Greece) अर्थात् 'यूनान भारत में" को अवश्य पढ़ें, जिसमें विद्वान् लेखक ने भारी अनुसन्धान के पश्चात् यह सिद्ध किया है कि प्राचीन भारत के शूरवीर यूनानी देवमाला के देवता थे और उत्तर अफ्रीका, यूनान, इराक़ अरब, असीरया, ह्स्वएशिया इत्यादि भारत से प्रस्थान किये हुए लोगों की बस्ती के उपनिवेश थे।

उपसंहार

महाभारत युद्ध को हुए ३६ वर्ष व्यतीत हो गए। महाराज सुयोधन और कर्ण, भीष्म और द्रोण के नाम इतिहास के विषय हो गये। शूरवीर अर्जुन और भीम के साखे जगत्-विख्यात हो रहे हैं। धर्मराज युधिष्ठिर के नाम का डंका चहुँ ओर बज रहा है। नवीन विधान के कर्ता श्याम जी की पूजा देशों-देशों में हो रही है। परन्तु यह सत्य है कि पैग़म्बर का सम्मान उसके गृहजनों में नहीं होता। यादव लोग श्याम जी के उपदेशों से लाभ उठाने के स्थान में सुरापान में लग गये। श्याम जी ने उनके नाम को दूर देशों में पहुंचा दिया था। पाण्डवों से उनका घनिष्ट सम्बन्ध था, इसलिये उनका अभिमान सीमा का उल्लङ्घन कर गया। वारुणिसुरा के मद में एक दिवस कृतवर्मा और सात्यकि में बिगड़ गई। कृतवर्मा सुयोधन के वध को नहीं भूला था और वह यादव लोगों के पाण्डवी साम्राज्य में सम्मिलित होने के विरुद्ध था, परन्तु सहकारी गणना में अधिक नहीं थे इसलिये स्पष्ट में कुछ करने में असमर्थ था, पर सुरा के मद में एक दिन सब कुछ विस्मरण कर बैठा। दोनों ओर शस्त्र निकल पड़े और क्षण-मात्र में घायलों तथा मृतकों के ढेर लग गये। श्याम जी तक समाचार पहुंचा, परन्तु उनके आगमन से पूर्व ही शस्त्र चल चुके थे, नेत्र लाल हो

रहे थे, उभय ओर के पक्षपाती एकत्र हो चुके थे और घमासान रण पड़ चुका था।

परिणाम यह हुआ कि बड़े-बड़े यादव नेता कुछ तो घायल हो गये और कुछ लड़ते-लड़ते समाप्त हो गये।

× × ×

यह दृश्य देख कर श्याम जी का मन उचाट हो गया। वैसे भी उन्हें ज्ञात था कि जिस कार्य्य के लिये उनका जन्म भारत में हुआ था वह पूर्ण हो चुका है क्योंकि भारत ही नहीं सर्व जगत् एक नियम में पिरोया जा चुका था, बाह्य और अन्तरङ्ग झगड़े मिट चुके थे। देश में शान्ति का साम्राज्य था और समय आ पहुंचा था जब वह जाति तथा देश विशेष के प्रेम से ऊपर होकर शेष समय इस से भी अधिक लाभदायक कार्य्य में लगायें। इस कारण अर्जुन तथा धर्मराज को हृदय की बात बता कर वह राज-नीति (Politics) से पृथक् होकर बनों को चल दिये। सङ्कर्षण जी पूर्व ही वानप्रस्थ ले चुके थे। महाराज युधिष्ठिर को इस से दुःख हुआ, परन्तु धर्म के ज्ञाता थे, उस के मर्म को समझते थे इसलिये उन्होंने द्वारवति का प्रबन्ध नावध्यक्ष को सौंप कर श्याम जी के पौत्र वज्जर को इन्द्रप्रस्थ की गद्दी पर बिठा दिया।

राजकुमार परीक्षत भी युवा हो चुके थे। उन्हें हस्तिनापुर की गद्दी देकर धर्मराज ने भ्राताओं तथा महारानी कृष्णा सहित अपने दूरस्थ देशों मिसिर, यूनान इत्यादि की ओर प्रस्थान किया। क्योंकि आयु १०० वर्ष से अधिक हो चली थी

और वह जगत् त्याग से पूर्व अपने विस्तृत राज्य का भ्रमण करना चाहते थे।

× × ×

पाठक! आर्यावर्त अब उन्नति के शिखर पर है। उस के शत्रु सब के सब पराजित हो चुके हैं। इस नाटक के नायक श्याम जी योगी ही नहीं योगेश्वर बन चुके हैं। धर्मराज पश्चिमी देशों में घूम रहे हैं। इसलिये अब इस कथा में हमारे लिये अधिक मनोरञ्जन की सामग्री नहीं रही। इसलिये हम आप से विदा के प्रार्थी हैं।

× × ×

भगवान् करे कि इस देश में पुनः ऐसे व्यक्ति जन्म लें, जो जगत में सुख और शान्ति की वृद्धि का कारण हों, ताकि जगत् के वासी स्वयं को जानकर रक्तपात को त्यागें और इस जगत् में स्वर्ग लोक का दृश्य दीख पड़े॥ ओ३म् शम्॥

श्याम जी और काश्मीर नरेश

काश्मीर के इतिहास लेखक कल्हण पण्डित से प्रश्न किया गया कि महाभारत युद्ध में महाभारतकार के मतानुसार सर्व भारत के राजा उपस्थित थे परन्तु काश्मीर नरेश का नाम उन में नहीं मिलता, इस का कारण ? कल्हण पंडित ने इसका उत्तर "नीलमत पुराण" के शब्दों में देते हुए लिखा है कि शिशुपाल वध के पश्चात् गान्धार देश में स्वयम्बर के उत्सव से भगवान् श्याम लौट रहे थे तो काश्मीर नरेश गोनन्द ने, जो शिशुपाल का मित्र था, समय अनुकूल जान और भगवान् के साथ अल्प सेना समझ कर उन पर आक्रमण कर दिया। भगवान युद्ध के लिये तत्पर नहीं थे पर काश्मीर नरेश की ललकार सुनकर उन्हें युद्ध-क्षेत्र में आना पड़ा। अब एक ओर काश्मीर की महति सेना थी और दूसरी ओर भगवान् श्याम और उन के इने-गिने सेनानी। पर परिणाम वही हुआ जो करवीर युद्ध का हुआ था। राजा गोनन्द का शीश भगवान् के सुदर्शन चक्र ने काट दिया और उसकी सेना क्षेत्र छोड़ कर भाग गई। उस समय काश्मीर नरेश की रानी अपने अल्पायु राजकुमार को लेकर भगवान के चरणों में गिर गई, ठीक जैसे रानी पद्मावती उन के चरणों में गिरी थी। भगवान् ने छोटे से राजकुमार बाल गोनन्द को राजतिलक देकर अपनी शरण में ले लिया। महाभारत युद्ध के समय वह नरेश अभी बालक था। इस कारण युद्ध में भाग न ले सका।

योगेश्वर

योगीराज श्याम जी के उपदेश

योगेश्वर

योगिराज श्याम जी के उपदेश

सन्यास और योग

सन्यासी निरग्नि (अग्निहोत्र आदि त्यागने वाले) का नाम नहीं, न ही योगी क्रिया त्यागी को कहते हैं। यह उपाधियां उन के लिये हैं जो कर्मफल का आश्रय त्याग कर कर्म करें। सन्यास और योग का अर्थ एक ही है। संकल्प के त्याग के बिना योग कोई नहीं हो सकता। योग में आरूढ होने के लिए कर्म कारण है, आरूढ़ हो जाने पर शम (संकल्प का अभाव) कारण होता है। जब इन्द्रियों व भोगों और कर्मों में आसक्ति नहीं रहती तो सर्वसंकल्प सन्यासी योगारूढ़ कहाता है। आत्मा का आत्मा से उद्धार करो, आत्मा को मत गिराओ, आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का रिपु (शत्रु)। बन्धु आत्मा उस अवस्था में होता है जब उसे आत्मा से जीत लिया जाए, अनात्मन (जिस ने उसे नहीं जीता) का आत्मा शत्रु की भांति वर्तता है। शीतोष्ण, सुख, दुख, मानापमान में प्रशान्त, जितात्मा में परमात्मा समाहित है।

ज्ञान विज्ञान से तृप्त आत्मा, विकार रहित और विजितेन्द्रीय, मिट्टी, पत्थर, सुवर्ण को समान समझने वाले तथा सुहृद, मित्र

उदासीन, मध्यस्थ, द्वेषी, बन्धु, साधु और पापी को समान देखने वाले योगी को युक्त (भगवान् में मिला हुआ) कहते हैं।

योग साधन

चित्त और आत्मा को जीत कर निराशी और अपरिग्रह (संग्रह रहित)योगी अकेला एकान्त में स्थित होकर, शुद्ध स्थान में, जो न अति ऊँचा हो न अति नीचा हो, मृगछाला और वस्त्र तथा कुशा बिछाकर आसन जमाए और मन को एकाग्र करके, चित्त और इन्द्रियों को वश में करके, आत्मा की शुद्धि के लिये उसे परमात्मा से जोड़ दे। उस समय काया, सिर और ग्रीवा समान, अचल और स्थिर हो, नासिकाग्र पर दृष्टि हो, दिशाओं की ओर दृष्टि न हो। आत्मा शान्त, भय रहित हो तथा ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण किये हो, मन संयम में हो, चित्त भगवान् में लगा हो और उसी के परायण हो।

इस प्रकार आत्मा को सर्वदा लगाने वाला नियत मन योगी भगवान् में स्थित होकर परम निर्वाण और शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

योग न अति भोजन करने वाले के लिये है, न एकदम न खाने वाले के लिये, न अति स्वप्नशील के लिये है, न जागृत ही रहने वाले के लिये।

योगी युक्ताहार विहार, कर्मों में युक्त चेष्टा करने वाला, युक्त स्वप्न बोध ही हो सकता है। यतचित्त, ध्यान में लगे हुए योगी की उपमा निर्वात स्थान में स्थित दीपक से कही गई है। जब

योग-अभ्यास से निरुद्ध चित्त उपराम होकर आत्मा से आत्मा को देखकर आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है, जिस अवस्था में इन्द्रियों से परे केवल बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अत्यन्त आनन्द को अनुभव करता है, जिस में स्थित होकर भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता, उस दुःख संयोग-वियोग का नाम योग है।

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सर्व कामनाओं को अशेषतः त्याग कर मन द्वारा इन्द्रियों को सब ओर से रोक कर शनैः-शनैः उपरामता को प्राप्त करे तथा धैर्य-युक्त बुद्धि-द्वारा मन को आत्मा में स्थित करके कुछ भी चिन्तन न करे। यह अस्थिर चंचल मन जहाँ-जहाँ विचरने का यत्न करे, उसी-उसी ओर से इसे रोक कर आत्मा में ही वश में करे। रज शान्त हो जाने पर, मन की प्रशान्ति पर योगी को उत्तम सुख अनुभव होता है, वह पाप से रहित ब्रह्म हो जाता है। पाप रहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को जोड़ता हुआ सुख-पूर्वक ब्रह्म-संस्पर्श अत्यन्त सुख को अनुभव करता है।

योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शन होकर सर्व भूतों में स्थित आत्मा के और आत्मा में सर्व भूतों के दर्शन करता है। इस प्रकार जो सर्वत्र भगवान को सर्व भूतों में स्थित देखता है वह न भगवान् को भूलता है न भगवान् उसे विस्मरण करते हैं, वह सर्वथा वर्तमान होकर भी उन्हीं में वर्तता है।

× × ×

निःसन्देह मन चंचल और दुर्निग्रह है पर अभ्यास और

वैराग्य से वह वश में हो जाता है। असंयतात्मा के लिये योग दुष्प्राप्य है, मन वश में कर लेने से यह सहज हो जाता है।

परमात्म दर्शन

प्रकृति अष्ट प्रकार की है :—

(१) भूमि (२) आपः (जल) (३) अनल (अग्नि) (४) वायु (५) मन (६) बुद्धि (७) अहंकार (८) आकाश। इसे "अपरा" अर्थात् जड़ कहते हैं, इस से अन्य "परा" प्रकृति है जो जीव कहलाती और इस जगत् को धारण करती है। सर्व भूत इन दोनों योनियों (प्रकृतियों) से उत्पन्न होते हैं। सम्पूर्ण जगत् की उत्पत्ति और प्रलय रूप परमात्मा है, उस से परे कुछ नहीं, उसी ने इस सब को सूत्र में मणिगण की भांति पिरो रखा है। वह द्रवित होने वाली वस्तुओं में रस है, शशि सूर्य में प्रभा है, सर्व वेदों में प्रणव (ओंकार) है, आकाश में शब्द और पुरुषों में पौरुष है। पृथ्वी में वह पवित्र गन्ध, अग्नि में तेज, सम्पूर्ण भूतों में जीवन और तपस्वियों में तप है। सर्व भूतों का वह सनातन बीज, बुद्धिमानों की बुद्धि, तेजस्वियों का तेज, बलवानों का काम और राग से रहित बल, और सर्व भूतों में धर्माविरुद्ध (धर्मानुकूल) काम है।

सात्विक, राजस और तामस सर्व भाव उससे हैं, वह उनमें नहीं। यह सर्व जगत इन तीनों गुणमयी भावों से मोहित है, इनसे परे उस अविनाशी को नहीं जानता। यह गुणमयी दैवी माया दुस्तर है, इस माया को वह तरते हैं जो उसे प्राप्त होते हैं।

चार प्रकार के लोग उसे स्मरण करते हैं। (१) आर्त्त (दुखी) (२) अर्थार्थी (अर्थ के चाहने वाले) (३) जिज्ञासु (४) और ज्ञानी। यह सभी भले हैं पर इनमें नित्ययुक्त, एकभक्ति, ज्ञानी अति उत्तम हैं क्योंकि वह उसी में स्थित है। ज्ञानवान बहुत जन्मों के अन्त में यह अनुभव करता है कि यह जो कुछ है परमात्मा ही है।

अपनी प्रकृति से प्रेरे हुए, अपनी इच्छा-शक्ति से ज्ञान भ्रष्ट हुए लोग जिस जिस वस्तु को चाहते हैं उसे देने वाली शक्ति के नियमों को पालन करते हैं। उनकी श्रद्धा और इच्छा से उन्हें वह वस्तु प्राप्त हो जाती है; परन्तु वह फल अन्तवन्त (नाशवान) है। परमात्मा की इच्छा करने वाले ही उसे प्राप्त होते हैं। वह परमात्मा योगमाया से समावृत्त (छिपा हुआ) सब को प्रकाश नहीं, जो अनन्य चेतः निरन्तर उसे स्मरण करते हैं उन नित्ययुक्त योगियों के लिये वह सुलभ है। उसे प्राप्त करके दुःखालय और क्षणभंगुर पुनर्जन्म फिर प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावर्त वाले हैं, परमात्मा को प्राप्त करके पुनर्जन्म नहीं होता।

× × ×

उस अव्यक्त मूर्ति से सम्पूर्ण जगत तना गया है, सर्वभूत उसके अन्तर्गत स्थित हैं वह उनमें स्थित नहीं। उसके ऐश्वर्य को देखो ! सर्वभूत उसमें स्थित नहीं, उसका आत्मा भूतों में स्थित न होता हुआ भी सब का पालन-पोषण करने वाला और सब का उत्पादक है। जैसे सर्वत्र विचरने वाला वायु नित्य आकाश में

स्थित है वैसे ही सर्वभूत उसमें स्थित हैं। कल्पक्षय पर सर्वभूत उसकी प्रकृति में लीन हो जाते हैं, कल्पादि में वह उन्हें छोड़ देता है। अपनी प्रकृति का अधिष्ठाता होकर, वह प्रकृति-वश से अवश इस सम्पूर्ण भूत समुदाय को पुनः-पुनः रचता रहता है। यह कर्म उसे बन्धन में नहीं डालता, क्योंकि वह उदासीनवत् स्थित और असक्त है। उसके अध्यक्ष से प्रकृति चर और अचर जगत को रचती रहती है। इस हेतु से जगत परिवर्तित होता है।

× × ×

जगत का पिता, माता, धाता, पितामह, जानने योग्य, पवित्र ओंकार, ऋग, साम, यजु, गति, भर्त्ता, प्रभु, साक्षी, निवास स्थान, शरण, सुहृद, उत्पत्ति प्रलय रूप, सर्वाधार, अविनाशी बीज वही परमात्मा है। वही तपाता है, वर्षा को आकर्षण करता है, वर्षाता है, अमृत है, मृत्यु है, सत और असत है। जो अनन्य भाव से उसका चिन्तन करते और उसे उपासते हैं वह उन नित्ययुक्त जनों को योगक्षेम देता है। जो लोग श्रद्धा से अन्य देवताओं का पूजन करते हैं वह उसी को उपासते हैं पर अविधिपूर्वक। सर्व यज्ञों का भोक्ता और स्वामी वही है, तत्त्व से अनभिज्ञ ऐसा नहीं जानते इसलिये गिरते हैं। देवताओं के पुजारी देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों के पूजने वाले पितरों को, भूतों के पूजने वाले भूतों को और उसके भक्त उसको प्राप्त होते हैं।

पुष्प, फल, जल जो कुछ प्रेम से उसके अर्पण किया जावे, वह उसे स्वीकार कर लेता है। इसलिये जो कर्म करो, जो खाओ,

जो हवन करो, जो दान दो, जो तप करो उसके अर्पण करो। इस प्रकार सन्यास-योग युक्तात्मा शुभ-अशुभ फल रूप कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। वह सर्वभूतों में समान भाव से व्यापक है, न उसे किसी से द्वेष है न प्रेम, परन्तु जो भक्ति से उसे भजते हैं वह उनमें है और वह उनमें।❀

दुराचारी भी अनन्य भाव से उसे भजे तो उसे साधु ही समझो, वह शीघ्र ही धर्मात्मा बन जाएगा, परमात्मा का भक्त नष्ट नहीं हो सकता।

सदैव मन उसमें रखो, उसके सन्मुख सिर झुकाओ, इस प्रकार आत्मा उससे युक्त होकर उसे प्राप्त कर लेगा।

× × ×

सर्वभूतों के हृदय में स्थित वह आत्मा है। भूतों का आदि, मध्यम और अन्त वही है। आदित्यों में उसे विष्णु समझो, ज्योतियों में अंशुमान सूर्य, मरुतों में मरीचि और नक्षत्रों में चन्द्र, रुद्रों में शंकर, यक्ष राक्षसों में वित्तेश (कुबेर), वसुओं में अग्नि, शिखर वाले पर्वतों में मेरुः। वेदों में सामवेद, देवताओं

❀ एक फारसी का कवि कहता है :—

मन तो शुदम, तू मन शुदी, मन जां शुदम, तू तन शुदी,
ता कस ■ गोयद बाद अज़ीं मन दीग्रम तू देगरी।

अर्थ—मैं तू हो गया तू मैं हो गया, मैं जान हो गया तू शरीर हो गया,
कि फिर कोई यह न कहे कि मैं अन्य हूँ और तू अन्य है

में इन्द्र, इन्द्रियों में मन, भूतों में चेतना। परोहितों में मुख्य बृहस्पति, सेनानियों में स्कन्द और जलाशयों में सागर। महर्षियों में भृगु, वचनों में एक अक्षर, यज्ञों में जपयज्ञ, स्थावरों में हिमालय। वृक्षों में अश्वत्थ, देवर्षियों में नारद, गन्धर्वों में चित्ररथ, सिद्धों में कपिल मुनि। घोड़ों में उच्चैश्रवः जो अमृत से उत्पन्न हुआ था, गजेन्द्रों में ऐरावत, मनुष्यों में राजा। शस्त्रों में बज्र, गायों में कामधेनु, सन्तान उत्पत्ति का हेतु कामदेव, सर्पों में वासुकि। नागों में अनन्त, जलचरों में वरुण, पितरों में अर्यमा, शासकों में यम। दैत्यों में प्रह्लाद, गिनती करने वालों में काल, मृगों में मृगेन्द्र और पक्षियों में वह गरुड़ है। पवित्र करने वालों में पवन है, शस्त्रधारियों में राम है, मछलियों में मकर है, स्रोतों में गङ्गा है। सृष्टियों का आदि, अन्त और मध्य है, विद्याओं में अध्यात्म विद्या, विवादियों में वाद है। अक्षरों में अकार, समासों में द्वन्द्व, अक्षय काल और विराट स्वरूप सब का धारण पोषण करने वाला है। सर्वहर मृत्यु वह है, भविष्यतों में उत्पत्ति का कारण है। नारियों में कीर्ति, श्री, वाक, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा है।

सामों में बृहत्साम है, छन्दों में गायत्री है, महीनों में मार्गशीर्ष और ऋतुओं में कुसुमाकर (बसन्त) है। छलने वालों में द्यूत है, तेजस्वियों का तेज है, जीतने वालों की विजय है, व्यवसायियों का व्यवसाय है, सात्विक पुरुषों का सत्त्व है।

वृष्णियों में वासुदेव है, पाण्डवों में अर्जुन है, मुनियों में

व्यास और कवियों में शुक्राचार्य है। दमन करने वालों में दण्ड है, जीतने की इच्छा वालों में नीति है, गुप्त रखने योग्य भावों में मौन है, ज्ञानवानों का ज्ञान है।

सर्व भूतों का बीज वह है। चर और अचर कोई भूत ऐसा नहीं जो उससे रहित हो। उसकी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं, यह संक्षेप से कहा गया है। जो विभूतिमत, सत्त्व, श्रीमत और शक्तियुक्त वस्तु हैं, वह उसी के तेज के एक अंश से उत्पन्न हुई हैं। यह सम्पूर्ण जगत उसके एक अंश में धारण और स्थित है।

जो उसे देखने की इच्छा रखता है, वह उसके शतशः और सहस्रों नाना प्रकार और नाना वर्ण तथा आकृति वाले दिव्य रूपों को देखे वह आदित्यों को, रुद्रों को, अश्वनी मरुतों को देखे। उसके शरीर में स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देखे। उसे इन चक्षुओं से देखना असम्भव है, उसे देखने के लिये दिव्य चक्षु खोलने चाहियें।*

क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ

यह शरीर क्षेत्र है, इसके ज्ञाता को क्षेत्रज्ञ कहते हैं, सर्व क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ परमात्मा है। पांच महाभूत, अहंकार, बुद्धि,

---

* सम्राट् औरंगज़ेब की पुत्री ज़ेबुन्निसा ने कहा था:—

हर किदारद ख़्वाहिश दीदन—दर सख़ुन बीनद मरा

अर्थात् जिसे मुझे देखने की इच्छा हो मेरे वक्तव्य में मुझे देख ले। इसी प्रकार परमात्मा के दर्शन उसके रचे जगत में हो सकते हैं अन्यथा नहीं, क्योंकि वह अदृष्ट है।

अव्यक्त (मूल प्रकृति), दशैक इन्द्रियां, इन्द्रियों के विषय, इच्छा, द्वेष, सुख-दुःख, संघात (स्थूल देह का पिण्ड), चेतना, धृति, यह विकार सहित संक्षेप से क्षेत्र कहा जाता है।

ज्ञान और अज्ञान

अमानित्व (अभिमान का न होना), दम्भ का अभाव, अहिंसा, क्षमाभाव, मन वाणी की सरसता, आचार्य की उपासना (सेवा), शौच, अन्तःकरण की स्थिरता, आत्मनिग्रह, इन्द्रियों के अर्थों में वैराग्य, अहंकार का अभाव, जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि में दुःख-दोषों का विचार करना, पुत्रदारा गृहादि में आसक्ति और ममता का अभाव, प्रिय-अप्रिय की प्राप्ति में नित्य समचित्त रहना, परमात्मा में अनन्य भक्ति, एकान्तवास, विषयासक्त मनुष्यों के समुदाय से घृणा, अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति, तत्वज्ञान के अर्थ का दर्शन यह ज्ञान है, इससे अन्यथा अज्ञान।

आदि रहित परमात्मा न सत है न असत। उसके सब ओर हाथ-पैर हैं, सब ओर शिर और मुख हैं, वह सब को ढांप कर स्थित है। वह सर्वेन्द्रियों के विषयों का ज्ञाता है पर सर्वेन्द्रियों से रहित है। वह असक्त, निर्गुण, सब का पालन-पोषण करने वाला है।

वह चर और अचर भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है, सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप और दूर स्थित है। अविभक्त होता हुआ वह भूतों के भीतर विभक्त के सदृश स्थित है, वह भूतों का पोषणकर्ता, संहारकर्ता और उत्पन्न करने वाला है।

ज्योतियों की वह ज्योति है, तम से परे कहा जाता है, ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञानगम्य (ज्ञान से जानने योग्य) है, सब के हृदय में स्थित है।

× × ×

प्रकृति और पुरुष दोनों अनादि हैं, विकार और गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। कार्य और करण के उत्पन्न करने में हेतु प्रकृति है, सुख-दुःखों के भोगने में हेतु पुरुष कहा जाता है। प्रकृति में स्थित ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों को भोगता है, अच्छी-बुरी योनियों में जन्म लेने का कारण गुणों का संग ही है। इस देह में परम पुरुष सब कुछ देखने वाला, सम्मति देने वाला और भर्ता, भोक्ता महेश्वर परमात्मा है। जो इस प्रकार पुरुष को तथा गुणों सहित प्रकृति को जानता है, वह सर्वथा वर्तता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

कई लोग परमात्मा को ध्यान द्वारा आत्मा से आत्मा में देखते हैं, कई सांख्य योग से और अन्य कर्मयोग से उसे देखते हैं। अन्य उसे न जानते हुए सुन कर ही उसकी उपासना करते हैं, वह भी मृत्यु को तर जाते हैं। स्थावर-जङ्गम जो कोई वस्तु भी उत्पन्न होती है क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के संयोग से ही उत्पन्न होती है।

जो पुरुष नष्ट होते हुए सर्व भूतों में नाश रहित परमेश्वर को सम भाव से स्थित देखता है वही देखता है। वह सर्वत्र समभाव से स्थित परमेश्वर को समान देखता हुआ आत्मा से आत्मा का

हनन नहीं करता, इससे परम गति को प्राप्त होता है।

जो पुरुष कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किये जाते देखता है और आत्मा को अकर्त्ता देखता है वही ठीक देखता है। जब भूतों के पृथक् भाव को एकस्थ और उससे सम्पूर्ण भूतों का विस्तार देखता है तो ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

अविनाशी परमात्मा अनादि और निर्गुण होने से शरीरस्थ भी न कुछ करता है न लिपायमान होता है। जैसे आकाश सर्वत्र व्याप्त हुआ भी सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता, वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित आत्मा लिपायमान नहीं होता। जैसे एक ही सूर्य इस सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करता है, वैसे ही क्षेत्री सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रकाशित करता है। जो ज्ञान-चक्षु से क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के अन्तर को, तथा भूत प्रकृति से मोक्ष को जान लेते हैं वह परब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं।

गुण त्रयी विभाग

महत ब्रह्म (प्रकृति की अति सूक्ष्म अवस्था) योनि है। उस में परमात्मा गर्भ स्थापन करते हैं। सर्वभूतों की उत्पत्ति उस से होती है। सर्व योनियों में जो मूर्तियां उत्पन्न होती हैं उन सब की योनि महत ब्रह्म है और परमात्मा बीज स्थापन करने वाले पिता हैं। सत्त्व, रज, तम नामक गुण प्रकृति से उत्पन्न होकर देह में अविनाशी आत्मा को बाँधते हैं। इन में प्रकाशक, निर्विकार सत्त्व निर्मल होने के कारण सुख और ज्ञान के सङ्ग से बांधता है। रज रागात्मक है वह तृष्णा के सङ्ग से उत्पन्न होता है और कर्मसङ्ग से

देहि को बांधता है। अज्ञान से उत्पन्न तम सर्व देह वालों को मोहने वाला है। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा से उनको बांधता है। सत्त्व सुख में लगाता है, रज कर्म में और ज्ञान को ढक कर तम प्रमाद में लगाता है। सत्त्व रज और तम को दबाकर बढ़ता है, रज सत्त्व और तम को दबाकर और तम अन्य दोनों को दबाकर।

जिस समय देह में सर्व द्वारों में प्रकाश उत्पन्न हो जाए, ज्ञान और विद्यादि की वृद्धि हो, तो समझ लो सत्त्व गुण की वृद्धि है। रजोगुण की वृद्धि पर लोभ, कर्मों में प्रवृत्ति का आरम्भ, अशान्ति, लालसा की बढ़ती होती है। तम की वृद्धि से अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह उत्पन्न हो जाते हैं। सत्त्व की वृद्धि में जीवात्मा प्रलय को प्राप्त हो तो उत्तम कर्म करने वालों के मल रहित लोकों को प्राप्त होता है, रज में प्रलय होने पर कर्मसङ्गियों के यहां जन्म लेता है और तम की वृद्धि में प्रलय होने से मूढ़योनियां में जन्म होता है। सात्त्विक कर्म का फल सात्त्विक निर्मल कहा गया है, राजस कर्म का फल दुःख और तामस का अज्ञान। सत्त्व गुण ज्ञान उत्पन्न करता है, रजोगुण लोभ और तमोगुण प्रमाद और मोह को। सत्त्व में स्थित ऊपर चढ़ते हैं, राजस मध्य में ठहरते हैं, तामस अधोगति को प्राप्त होते हैं। देह के उत्पादक इन तीनों गुणों से जो अतीत्य हो जाए, वह जन्म, मृत्यु, जरा आदि दुःखों से मुक्त होकर अमृत पान करता है।

गुणातीत के लक्षण

प्रकाश, प्रवृत्ति, मोह में प्रवृत्त होने पर न द्वेष करे न निवृत्त होने पर उनकी आकांक्षा करे। दुःख-सुख को समान समझे, अपने आप में स्थित रहे, मिट्टी, पत्थर, सुवर्ण को एक समान समझे, धैर्यवान होकर प्रिय अप्रिय को बराबर जाने, निन्दा स्तुति को तुल्य समझे। मान अपमान में तुल्य, मित्र शत्रु से एक समान, कार्य आरम्भ में कर्तापन के अभिमान से रहित पुरुष गुणातीत कहाता है। ऐसा पुरुष जब अनन्य भक्ति से परमात्मा को भजता है तो गुणातीत होकर ब्रह्म होने के योग्य होता है। अविनाशी ब्रह्म का, अमृत का, नित्य धर्म का और अखण्ड एक रस सुख का आश्रय परमात्मा है।

ऊर्ध्व मूल अश्वत्थ

एक विचित्र अश्वत्थ वृक्ष की जड़ ऊपर को है, शाखा नीचे। उसके पत्ते छन्द (वेद ज्ञान) हैं। नीचे ऊपर फैली हुई गुणों से वृद्धि को प्राप्त होती हुई शाखाओं में विषय-रूपी कोंपल निकलती हैं। मनुष्य लोक में कर्मों से उसके साथ लोग बँध जाते हैं। (मनुष्य के शरीर में भी ज्ञान ऊपर से चलता है, शिर से ही (Nervous system) नाड़ियां शरीर में उतरती हैं, सत्व, रज, तम गुण उस ज्ञान द्वारा विषयों में लगाते हैं, विषय संग, रूप, कर्म से मनुष्य संसार वृक्ष से बँध जाता है) इस बंधन में फँसे हुए को न इसका रूप, न अन्त न आदि न संप्रतिष्ठा दीखती है। इस दृढ़-मूल अश्वत्थ को काटने के लिये केवल एक शस्त्र है—असङ्ग।

इस शास्त्र को बर्तने वाला उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जहां जाकर फिर लौटना नहीं, जिस से पुरातन प्रवृत्ति फैली है।

निर्मान, निर्मोह, संगदोष के विजयता, नित्य अध्यात्म स्थित, निवृत्त काम, सुख दुःख संज्ञक द्वन्द्वों से विमुक्त ज्ञानी उस अविनाशी पद को प्राप्त होते हैं। जहां न सूर्य चमकता है न चन्द्र, न अग्नि, जहां जाकर पीछे नहीं लौटते, वह परम धाम है। जीव-लोक में उसी परमात्मा का सनातन अंश जीव बनकर, मन सहित पांच इन्द्रियों को आकर्षण करके प्रकृति में स्थित होता है। शरीर को प्राप्त होने पर तथा उसे त्यागने पर वह इन (मन सहित इन्द्रियों) को इस प्रकार ले जाता है जैसे वायु गन्ध को। विषय सेवन के लिये श्रोत्र, चक्षु, स्पर्श, रसना, घ्राण और मन इसका अधिष्ठान हैं। शरीर त्यागते, शरीर में स्थित, विषयों को भोगते अथवा तीनों गुणों से युक्त हुए को मूढ़ नहीं जानते, केवल वही देखते हैं जिन के ज्ञान चक्षु खुले हैं। योगी यत्न करते हुए उसे आत्मा में स्थित देखते हैं, अज्ञानी आत्मा की अशुद्धि के कारण उसे नहीं देखते। जो तेज आदित्य में स्थित होकर सर्व जगत् को प्रकाशित करता है, जो चन्द्र को चमकाता है, जो अग्नि में हैं वह परमात्मा से है। वह पृथ्वी में प्रवेश करके ओज से भूतों को धारण करता है, रसात्मक सोम होकर औषधियों को पुष्ट करता है, वैश्वानर होकर प्राणियों के शरीर में प्राणापान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को पचाता है। सर्व के हृदय में

संनिविष्ट है, स्मृति ज्ञान और अपोहन उसी से है, सर्व वेदों में जानने योग्य वही है। इस लोक में दो प्रकार के पुरुष हैं, क्षर और अक्षर, सर्व भूत क्षर हैं, जीव अक्षर है, उत्तम पुरुष इन दोनों से अन्य है उसे परमात्मा कहा गया है, वह तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण-पोषण करता है। वह क्षर से तो अतीत है ही, अक्षर से भी उत्तम है, लोक और वेदों में वह पुरुषोत्तम प्रसिद्ध है।

देव और असुर

इस लोक में भूत सर्ग दो प्रकार के हैं, दैव और आसुर, इनके भिन्न-भिन्न स्वभाव ऐसे कहे हैं :—

दैव

अभय, अन्तःकरण की शुद्धि, ज्ञानयोग में दृढ़ स्थिति, दान, दम, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निन्दा न करना, भूतों पर दया, लोभ का न होना, कोमलता, लज्जा, चपलता का अभाव, तेज, क्षमा, धृति, शौच, अद्रोह, नीतिमानता, यह दैवी सम्पदा वाले के लक्षण हैं।

असुर

दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी, अज्ञान आसुरी सम्पदा वाले मनुष्य में होते हैं, वह प्रवृत्ति-निवृत्ति को नहीं जानते, शौच, आचार, सत्य उनमें नहीं होता। वह कहते हैं जगत असत्य, आश्रय रहित है, अनीश्वर है, स्त्री-पुरुष के संयोग

से उत्पन्न हुआ केवल कामवासना के लिये है। वह दुष्कर काम का आश्रय लेकर दम्भ और मान-मद से युक्त असत ग्रहों को ग्रहण करके भ्रष्टाचार से युक्त वर्तते हैं। सैंकड़ों आशापाश से बँधे हुए काम-क्रोधपरायण काम-भोग के लिये अन्याय से अर्थ-सञ्चन करते हैं। वह कहा करते हैं "मैंने आज यह पा लिया, इस मनोरथ को प्राप्त हूँगा, मेरे पास यह धन है पुनः भी यह होगा। उस शत्रु को मैंने मार दिया, दूसरों को भी मारूँगा, मैं ईश्वर हूं, भोगी हूं, सिद्ध हूं, बलवान् हूँ, सुखी हूँ, धनवान् हूं, बड़ा जनवान हूं, मेरे सदृश कौन है? मैं यज्ञ करूँगा, खुश हूँगा।"

इस प्रकार अनेक प्रकार से भ्रमित चित्त मोह-जाल में फँसे हुए कामभोगों में आसक्त वह महान् अपवित्र नरक में गिरते हैं। ऐसे लोग धनमान से युक्त, केवल नाम के लिये दम्भ से यज्ञ करते हैं जो अविधिपूर्वक होता है। अहंकार, बल, दर्प क्रोध के आश्रित दूसरों की निन्दा करने वाले अपने और दूसरे के शरीर में स्थित परमात्मा से द्वेष करते हैं। ऐसे द्वेषी नराधम बार-बार आसुरी योनियों में गिरते हैं। जन्म-जन्म में आसुरी योनियों में जन्मकर अधम गति को जाते हैं।

काम, क्रोध तथा लोभ यह तीन प्रकार के नरक द्वार आत्मा का नाश करने वाले हैं, इन्हें त्यागना चाहिये, इन तीनों नरक-द्वारों से छूटकर मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है और परम-गति को पाता है।

श्रद्धांजली

बन-महोत्सव के अवसर पर "देहोत्सर्ग" (काठियावाड़) के स्थान पर भाषण देते हुए श्री के. एम. मुन्शी ने भगवान् के चरणों में श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए कहा था—

"पृथ्वी के यह थोड़े-से पग विशाल जगत में पवित्रतम हैं। गो और वृक्ष 'गो सखा' के सखा थे। वृन्दावन उसका बन था। मथुरा के निकट गोवर्धन और इस स्थान में रैवतक पर्वत उसके पूजा-स्थान थे, गिरि-पूजा उसका मत था। वह पर्वतों और वृक्षों का प्रेमी था। उसने पारिजात और वैज्यन्ती तुलसी को लाकर यहाँ लगाया। वह 'बन-महोत्सव' का रक्षक-देव है, हम इस स्थान पर उसकी वन्दना करने को एकत्र हुए हैं।

इस स्थान के दर्शन करके प्रभास क्षेत्र की कई बातें चिन्तन होती हैं। मेरे नेत्र बलराम जी को देख रहे हैं, वह अपनी स्त्रियों के स्कन्धों पर हाथ रखे पश्चिम समुद्र से आते हुए पवन का आनन्द ले रहे हैं। मैं पाण्डवों के ज्येष्ठ भ्राता धर्मराज के दर्शन कर रहा हूं, जो सोमनाथ जी की यात्रा के लिये यहां पधारे थे। मेरी दृष्टि सुभद्रा के नेत्रों पर पड़ रही है। हिरण्य के इस तीर पर अर्जुन श्रीकृष्ण जी के हाथों में हाथ दिये जा रहे हैं और सुभद्रा चोर आंखों से उनके मुख को निहार रही है।

इसी स्थान पर मैं यादवों को परस्पर रक्त बहाते देखता हूं! शक्ति अधिक हो जाने से वह एक-दूसरे का गला काट रहे हैं।

भलक तीर्थ पर भगवान् स्वयं वृक्ष की छाया में सो रहे हैं। व्याध का बाण आता है, वह उनके चरण में चुभता है, भगवान् सहसा जागते हैं, पृथ्वी पर अपने कार्य्य की पूर्ति को स्मरण करके उनके मुख पर मुस्कान आ जाती है। समय है कि जगत के लोग उनकी आज्ञा का पालन करें।

उस ईश्वरीय बालक की स्मृति सदैव बनी रहेगी। उसे देख कर सब प्रसन्न हो जाते थे। जो लोग अपना सर्वस्व उसके अर्पण करके उसकी शरण आते, वह उन्हें सदैव आश्रय देने वाला मित्र था। वह चित्त-चोर प्रेमी था जिसके प्रेम की थाह न थी। वह देशभक्त था जिसने प्रजा को दासत्व से मुक्ति दी। वह योगेश्वर था, जो परस्पर विरोध और लड़ाइयों के समय में इतना ऊँचा उठा कि लोगों ने उसे न केवल अपना नेता और एकता का आदर्श समझा अपितु जगत-गुरु और स्वयं ईश्वर भी।

वह जीवन में महान् था, न केवल महान्, अपितु पूर्ण, सुन्दर और एकरस भी। सहस्रों वर्ष बीत गये और वह इस समय पर्य्यन्त हमारे हृदयों पर शासन करता है, किसी अन्य को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक माता अपने पुत्र का चिन्तन करती है तो 'बाल गोपाल' से बढ़कर नहीं सूझता। कोई गाता और नृत्य करता है तो उसका नाम लेकर वा उसकी रास-लीला का स्मरण करके।

जिस सत्य की शिक्षा वह दे गया, किसी अध्यापक ने उससे अधिक नहीं सिखाया। जो रहस्य वह जगत को बता गया, उससे अधिक किसी को नहीं सूझा। जो शिक्षा वह दे गया है, उससे बलहीन मनुष्य अपने आपको उसमें लीन करके, तद्रूप हो सकता है। उसकी गीता का संदेश सदैव के लिये है। अर्जुन से महात्मा गांधी पर्य्यन्त महान् से महान् और निकृष्ट से निकृष्ट मनुष्य जीवन की पूर्ति उसी को जीवन में धारण करने में समझते रहे हैं। 'भगवान् के हाथों में हथियार बनो', 'निमित्तमात्र भव'। उसका निमित्त बने बिना कोई मनुष्य अपने आत्मा को जान नहीं सकता।"